हिन्दी और बंगला उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की हिन्दी में डी०फिल्० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध
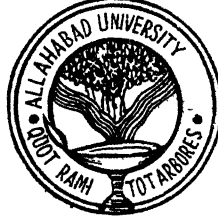
निर्देशिका
डॉ० (श्रीमती) गिरिजा राय
प्रवक्ता हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

शोधार्थी
श्रीमती सन्ध्या द्विवेदी
एम० ए० (हिन्दी)
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद - 211002
भा र त
1 9 9 3

समर्पण

ममतामयी माँ को

मेरा अध्ययन, जिनकी प्रेरणा का प्रतिफल है!

प्राक्कथन

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का विषय "हिन्दी और बंगला उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन" यों तो अपने आप में मौलिक है किन्तु इस विषय पर शोध कार्य असंभव नहीं तो दुरूह अवश्य था।

शोधात्री ने प्रारम्भ में ही जब प्रवेश के लिए प्रार्थनापत्र दिया था तभी 'साठोत्तरी' शब्द जोड़कर अपने विषय को सीमाबद्ध करना चाहा था परन्तु विद्वानों ने इस शब्द को हटाकर मेरी कार्य सीमा को असीमित कर दिया। शोधात्री ने विषय को असीमित होते हुए भी एक ठोस आकार देते हुए अपना कार्य प्रारम्भ किया और इस प्रकार प्रारम्भ हुआ भटकाव का दौर । इस भटकन में अनेक विद्वानों तथा सुविज्ञजनों से मिलने का अवसर मिला जिन्होंने साहस बंधाते हुए मार्गदर्शन का भार अपने कन्धों पर लिया ।

इस प्रकार शोधात्री अपने प्रयास को एक मूर्त रूप देने में जुट गयी। फलस्वरूप नित नये रत्न प्राप्त होते गये । यहाँ तक कि उन्हें समेटना मुश्किल होने लगा ।

साहित्य की सभी विधाओं में उपन्यास विधा सबसे सशक्त है । अपनी विविधता, शैली और शिल्पगत नवीन प्रयोग के कारण यह आज साहित्य की महत्वपूर्ण उपलब्धि सिद्ध हो रहा है । सांकेतिकता, संवेदनशीलता और सम्प्रेषण की कलात्मक अभिव्यक्ति ने इसे स्वतंत्र और पृथक पहचान दी है । शोधात्री अपने प्रयास में कहां तक सफल हुई है इसका निर्णय तो सुधीजन ही करेंगे।

शोध ग्रन्थ के प्रथम और द्वितीय अध्याय में हिन्दी और बंगला उपन्यासों का परिचयात्मक विवरण दिया गया है । जिसमें उपन्यास विधा के आरम्भ और तत्कालीन परिवेश का परिचय है ।

तृतीय और चतुर्थ अध्याय में हिन्दी और बंगला के प्रमुख उपन्यासों का विवरण दिया गया है ।

पंचम और षष्ठम अध्याय में हिन्दी और बंगला के उपन्यासकारों का विवेचन दिया गया है ।

सप्तम और अष्टम अध्याय में हिन्दी और बंगला उपन्यासों का शिल्पगत विवेचन है ।

नवम् एवं दशम् अध्याय में हिन्दी और बंगला उपन्यासों का भाषागत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है ।

एकादश और द्वादश अध्याय ः हिन्दी और बंगला उपन्यासों में वर्णित पात्रों एवं उनके चरित्र चित्रण का है।

अन्त में सबसे कठिन कार्य जो शेष रह जाता है आभार व्यक्त करने का -जो

सर्वप्रथम मैं आभारी हूँ अपनी निर्देशिका डॉ0 (श्रीमती)गिरिजा राय की जिनके निर्देशन में मैंने यह शोध कार्य पूर्ण किया। उनका मार्ग-दर्शन और प्रोत्साहन सदैव मेरे साथ रहा।

सुश्री कल्याणी दास गुप्ता जिन्होंने मुझे पुत्रीवत स्नेह दिया है, के निर्देशन और सहायता के बिना यह गुरूतर कार्य निस्सन्देह सम्भव नहीं था। उनके प्रति मेरा

रोम-रोम कृतज्ञ है । उनकी कृपा को यदि मैं भूल जाऊँ तो मेरा मानव जीवन व्यर्थ है। शब्दों में बांधकर कृतज्ञता तथा स्वयं को मैं लज्जा का पात्र सिद्ध करना नहीं चाहूँगी। उनके प्रति मैं श्रद्धाविनत हूँ।

अपने मूल्यवान समय और बहुमूल्य परामर्श से गुरूवर डॉ0 जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव ने मुझ पर जो उपकार किया है उसके लिए मेरा हृदय सदैव कृतज्ञ रहेगा।

निराशा के क्षणों में मुझे सम्बल देने वाले तथा कर्मक्षेत्र में डटे रहने की प्रेरणा देने वाले अपने पापा श्री कृष्ण नारायण उपाध्याय के आर्शीवाद और स्नेह की मैं सदैव अधिकारिणी रही हूँ और उनकी छत्रछाया चिरकाल तक बनी रहे यही मेरी कामना है। उनके आर्शीवाद के बिना तो इस स्थान तक पहुँचना मेरे लिए सर्वथा असंभव था।

श्रद्धेय ज्येष्ठ श्री राधेश्याम जायसवाल जी के प्रति आभार प्रकट करने के लिए प्रयुक्त होने वाले शब्द अतिलघु प्रतीत होते हैं । उनका स्नेहमय प्रोत्साहन जीवन समर में सदैव आगे बढ़ने की प्रेरणा देता रहा है और देता रहेगा ।

आदरणीय चन्द्र प्रकाश श्रीवास्तव जी का आभार प्रकट न करना मेरी क्षुद्रता होगी। इस शोधग्रन्थ की परिणति के मार्ग में उनके सहयोग के बिना मैं शायद कुछ पग भी चलने में असमर्थ होती । उनकी सहायता और प्रयास के बिना यह कार्य असंभव ही था।

मैं अपने पति श्री ब्रजभूषण दुबे का भी उल्लेख करना चाहूँगी जिनके असीम सहयोग और प्रोत्साहन ने मुझे इस शोधग्रन्थ को पूर्ण करने का साहस प्रदान किया।

अपनी पांच वर्षीया बिटिया शुभि के प्रति मैं ममत्व से भर जाती हूँ यह सोचकर कि मेरे द्वारा उसे मिलने वाले समय का कितना भाग मैंने उसे न देकर इस शोध कार्य को पूर्ण करने में लगाया । इस नन्हीं सी जान का यह सहयोग चिरस्मरणीय है।

उन सभी लेखकों तथा विद्वानों के प्रति मैं आभारी हूँ जिनकी रचनाओं से मुझे परोक्ष-अपरोक्ष रूप से इस शोध ग्रन्थ को पूर्ण करने में सहायता मिली ।

यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी के श्री रामखेलावन यादव जी की भी सदैव आभारी रहूँगी जिन्होंने विषय सामग्री से सम्बन्धित पुस्तकों के चयन में मेरी भरपूर सहायता की।

श्री अनिल कुमार जी का धन्यवाद करना चाहूँगी जिन्होंने इलेक्ट्रानिक्स टाइपिंग का कार्य बड़ी लगन और श्रम के साथ करके शोधग्रन्थ को यह आकर्षक रूप प्रदान किया ।

सन्ध्या द्विवेदी

18 दिसम्बर शनिवार, 1993 (सन्ध्या द्विवेदी)

403,मधवापुर,इलाहाबाद ।

अनुक्रम

हिन्दी उपन्यासों का परिचयात्मक विवरण

हिन्दी के अधिकांश समीक्षकों के अनुसार लाला श्रीनिवासदासकृत 'परीक्षागुरू' हिन्दी का प्रथम उपन्यास माना गया है । किन्तु हिन्दी साहित्य में उपन्यास का वास्तविक स्वरूप पहले-पहल प्रेमचन्द के उपन्यासों में ही दिखाई पड़ता है बल्कि उपन्यासों का वास्तविक विकास प्रेमचन्द से ही मानना चाहिए क्योंकि उपन्यास की वास्तविक शक्ति और स्वरूप को सही रूप में पहले पहल प्रेमचन्द ने ही पहचाना तथा उपन्यास साहित्य को एक नई दिशा दी । दिशा ही नहीं दी बल्कि उसे उत्कर्ष पर पहुंचा दिया ।

'परीक्षागुरू' में दिल्ली के एक सेठ का पुत्र बुरीसंगत में पड़कर बाहरी तड़क-भड़क और दिखावे में समस्त पैतृक सम्पत्ति नष्ट कर डालता है । परिस्थितिवश उसे जेल भी जाना पड़ता है। इस विपत्ति में अपने एक सज्जन मित्र के दिखाए मार्ग पर चलकर वह पुनः अपनी स्थिति को सम्हाल लेता है । इस उपन्यास में उपदेशवृत्ति की ही अधिकता है ।[1] प्रेमचन्द से पूर्व देवकी नन्द खत्री की 'चन्द्रकान्ता' और चन्द्रकान्ता सन्तति ' अपनी लोकप्रियता के कारण सबसे अधिक महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं । इन उपन्यासों को पढ़ने के लिए बहुत से लोगों ने हिन्दी सीखी । मनोरंजन के दृष्टिकोण से ये दोनो उपन्यास बड़े ही सशक्त हैं । प्रेमचन्द के पूर्व बालकृष्ण भट्ट, रत्नचन्द्र प्लीडर, राधा चरण गोस्वामी, देवकी नन्दनखत्री,

---

1. हिन्दी उपन्यास - एक अन्तर्यात्रा

लज्जाराम मेहता, आदि अनेक विद्वानों ने उपन्यास लेखन का कार्य किया ।[1] अनेक अनुवाद भी हुए परन्तु उपन्यासों में प्राणारोपण का कार्य प्रेमचन्द द्वारा ही निष्पन्न हुआ ।

सेवा सदन, निर्मला, कर्मभूमि, रंगभूमि, गबन, गोदान, प्रेमाश्रम, आदि कई उपन्यासों की रचना प्रेमचन्द ने की जो उस समय समाज में व्याप्त समस्याओं को सूचित करते हैं। यह वह समय था जब अंग्रेजों से मुक्त होने के लिए पराधीन देश संघर्ष कर रहा था और उसके समक्ष दो ही समस्याएं मुख्य रूप से थीं । (1) देश की स्वतंत्रता (2) समाज का सुधार । देश परतंत्रता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था । देशवासियों की कोई प्रतिष्ठा न थी और यह प्रतिष्ठा प्राप्त करने का केवल एक ही मार्ग था । देश की आजादी का । दूसरे देश भारतवासियों को असभ्य, जंगली, पिछड़े हुए की संज्ञा देते थे । इसलिए आजादी प्राप्त करने के साथ साथ अपने समाज का पुनः निर्माण आवश्यक था ।

प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में तत्कालीन भारत के प्रायः सभी वर्गो की सभी प्रकार की समस्याएं उठायीं । प्रेमचन्द ने समाज की विभीषिकाओं को स्वयं भोगा था । वे जानते थे कि गरीबी क्या होती है? दुःख क्या चीज है ? और संघर्ष क्या होता है? गरीब किसान किस तरह से जमींदारों के अधीन है और उनकी ही दया पर निर्भर है । किसान अपनी नादानी के कारण अत्याचार को बर्ददाश्त कर लेते थे (प्रेमाश्रम) । अच्छे

---

1. अभिनव हिन्दी निबन्ध -- डॉ0 जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव ।

परिवारों की स्त्रियाँ गुमराह होकर वेश्यावृत्ति अपना लेती थीं । (सेवासदन) । दहेज की कुप्रथा के फलस्वरूप बेमेल विवाह हो जाते थे । एक कम उम्र की कन्या को पिता की उम्र वाले व्यक्ति से विवाह करना पड़ जाता था (निर्मला)। जिसका दुष्परिणाम वैधव्य के रूप में सामने आता था । जो समाज में कंलक समझा जाता था । हरिजनों की समस्या किसानों, मजदूरों तथा जमींदारों, महाजनों के तनावपूर्ण सम्बन्ध, नारियों का आभूषण प्रेम, भोग-विलास की प्रवृत्ति ऊँचे समाज की नारियों में मिलने-जुलने और उनसे स्पर्धा करने की इच्छा यानि ऊपरी चमक-दमक को ही जीवन मूल्य मान लेने की आसक्ति आदि बहुत सी समस्याएं थी। प्रेमचन्द ने इन सभी समस्याओं को पूरी जागरूकता के साथ उद्घाटित किया । उन्होंने सामाजिक यथार्थ की कठोर भूमि पर खड़े होकर अपने युग का प्रतिनिधित्व किया । सच्चे अर्थों में उन्होंने रचनाकारिता के दायित्व का निर्वाह किया ।

प्रेमचन्द के समकालीन तथा परवर्ती लेखकों ने उनके द्वारा दिखाए गये मार्ग का अनुसरण करके उपन्यास लेखन को समृद्धि प्रदान की । जयशंकर प्रसाद, विश्वम्भर नाथ 'कौशिक', बेचनशर्मा 'उग्र', चतुरसेन शास्त्री, उपेन्द्रनाथ 'अश्क' जैसे रचनाकारों ने प्रेमचन्द की ही तरह भारतीय समाज में व्याप्त समस्याओं को अपने लेखन में स्थान दिया । जयशंकर प्रसादका'कंकाल' एक व्यंग्य प्रधान उपन्यास है यह शुद्ध यथार्थवादी रचना है । इसमें नारी जीवन की अधोगति को चित्रित किया गया है । 'तितली' में

नारी की उदारता को उभेरा गया है । 'तितली' भारतीय नारी का प्रतिनिधित्व करती है बेचन शर्मा 'उग्र' ने 'दिल्ली का दलाल' तथा'बुधुवा की बेटी' जैसे उपन्यासों में सभ्य कहे जाने वाले समाज की अनैतिकता, घिनौनेपन आदि कमियों को उद्‌घाटित किया है । 'दिल्ली का दलाल' तत्कालीन हिन्दू समाज की कुरीतियों पर प्रहार करता है । 'बुधुवा की बेटी' समकालीन राष्ट्रीय और सामाजिक परिवेश में अछूतोद्धार और नारी जागरण की समस्या का उद्‌घाटन हुआ है । उग्र की अपनी फक्कड़ शैली है । उनकी शैली में खुलापन है जो अन्यत्र देखने को नहीं मिलता ।

चतुर्थसेन शास्त्री ने'हृदय की प्यास' में विधवाओं से सम्बद्ध व्यक्तियों का असली रहस्य प्रकट किया है । इनके अधिकांश उपन्यास प्रकृतिवादी एवं ऐतिहासिक है। 'खग्रास' इनकी श्रेष्ठ कृति हैं । 'गिरती दिवारें,' 'गर्म राख,' 'बड़ी बड़ी आँखें,' 'पत्थर अल पत्थर,' 'सितारों के खेल,' 'शहर में घूमता आइना' उनकी औपन्यासकि रचनाएं हैं । 'गिरती दिवारें' यथार्थवादी उपन्यास हैं । इसमें मध्यवर्ग की भीतरी और बाहरी परिस्थितियों का चित्रण किया गया है । चेतन के माध्यम से आधुनिकता के रंग में रंगे हुए युवक-युवतियों के प्रणय की असफलताओं को चित्रित किया गया है । इस प्रकार ये सभी उपन्यास जीवन की समस्याओं की अभिव्यक्ति गहराई से करती हैं ।

जैनेन्द्र कुमार, इलाचन्द्र जोशी, भगवती चरण वर्मा, तथा अज्ञेय ने दर्शन एवं मनोविज्ञान के धरातल पर चरित्रों का विश्लेषण किया । उपन्यासों में यह चरित्र विकास

मनोविज्ञान के सूत्रपात से और अधिक परिष्कृत और पूर्ण हो गया ।[1] जैनेन्द्र के उपन्यासों में 'सुनीता,' 'परख,' 'सुखदा,' 'त्यागपत्र,' 'कल्याणी,' 'विवर्त, व्यतीत,' 'तपोभूमि,' 'जयवर्द्धने' आदि हैं । इनके उपन्यासों में विवाहित दम्पति के मध्य कोई प्रभावशाली अपर पुरूष कबाब की हड्डी हुआ करता है । व्यक्तिगत कुण्ठा के फलस्वरूप नायिका दूसरे पुरूष की ओर आकर्षित और झुकाव दिखाती है । पति सब कुछ देख सुनकर भी पत्नी की कुप्रवृत्ति को नजर अन्दाज करता है । स्वयं अन्दर ही अन्दर सब कुछ झेलता सहता है । कथा क्रमशः उस बिन्दु की ओर बढ़ती है जब लगेगा कि पत्नी पति का त्यागकर इतर पुरूष का वरण कर लेगी किन्तु होता इसके विपरीत है । जैनेन्द्र सम्भवतः यह कहना चाहते हैं कि स्त्री पर बहुत अधिक अकुंश लगाना, उसकी स्वतन्त्रता पर अर्गला डालना है । स्त्री को थोड़ी छूट देने से उसके चरित्र में अपेक्षया निखार आता है । व्यक्तिगत चरित्रों के रेखाकंन में जैनेन्द्र अप्रतिम हैं।[1]

कलात्मक दृष्टि से जोशी जी के उपन्यासों का मूलाधार चरित्र हैं । वे व्यक्तियों का चरित्र चित्रण करके ही सन्तुष्ट नहीं होते बल्कि चरित्रानुसार विविध रंगों से उन्हें सराबोर करके सौन्दर्यमण्डित करते हैं। इनके उपन्यासों में कथा वस्तु की सम्पन्नता के साथ-साथ नवीनता भी है । इनके उपन्यासों की रचना के मूल में पात्रों की अपनी विकृतियों के आधार पर उन्हें विकास देने का उद्देश्य दिखायी पड़ता है । जोशी में

---

1. अभिनव हिन्दी निबन्ध - डॉ0 जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव ।

अनुभूति की प्रचुरता और कल्पना की उर्वरता है । इनके कथानक के मुख्य पात्र एक तरह से केन्द्र के रूप में विकसित होते हैं इनके उपन्यासों में आकस्मिकता या संयोग के तत्व उसी तरह पाए जाते हैं जिस तरह प्रेमचन्द्र कालीन या रोमैण्टिक उपन्यासों में । जोशी जी की रचनाओं में शिल्प अभिव्यक्ति और भाषा का जो सुन्दर समन्वय दिखाई देता है वह उनकी विशिष्टता को बढ़ा देता है । चरित्र के अन्तरतम में प्रविष्ट होकर उसकी वृत्तियों का विश्लेषण करते हुए उसकी दुर्बलताओं और सबलताओं का रहस्योद्घाटन इनके उपन्यासों की आधारशिला है । आत्मविश्लेषण शैली जोशी जी की प्रिय और प्रमुख शैली है । 'मुक्तिपथ' 'सुबह के भूलें, 'जिप्सी' और 'जहाज का पंछी' जोशी जी की उपन्यास कला में एक तीव्र, सजग सामाजिक भावना का प्रतिनिधित्व करते हैं ।

भगवती चरण वर्मा को साहित्य जगत में प्रतिष्ठित करने के लिए उनकी रचना 'चित्रलेखा' ही काफी है। यह उनका सर्वप्रथम समस्या प्रधान उपन्यास है जिसकी प्रधान समस्या है नैतिक मूल्यों का निर्धारण। 'चित्रलेखा' की वर्णन प्रणाली उत्कृष्ट कोटि की है भाषा पात्रों के अनुकूल एवं सरस है । संवादों में सजीवता एवं चुस्ती है । उनकी यह कृति अपने आप में एक उपलब्धि है । इसकी पृष्ठभूमि ऐतिहासिक है । तथा इसका सवाक् चित्र भी बना जिसे दर्शक आज भी पसन्द करते हैं । इनकी रचनाओं में जो बात सर्वाधिक प्रभावित करती है वह है इनका अत्यधिक यथार्थवादी दृष्टिकोण। 'तीन वर्ष', 'टेढ़े मेढ़े रास्ते', 'आखिरी दाँव', 'भूले बिसरे चित्र', 'रेखा' आदि इनकी श्रेष्ठ और रोचक कृतियाँ हैं । अपने उपन्यासों में इन्होंने सामाजिक राजनीतिक समस्याओं

को विषयाधार बनाया है । प्रेमचन्द की कथाशैली इनके उपन्यासों में विकसित होकर आगे बढ़ी है । व्यक्ति स्वातन्त्र्य के आदर्श की स्थापना भगवती चरण वर्मा के उपन्यासों का मूल उद्देश्य है । अतएव चरित्र विकास की दृष्टि से उनकी उपन्यास कला उतना महत्व नहीं रखती जितनी व्यक्तिवादी चेतना को व्यंजित करने रखती है । इनके उपन्यासों की प्रथम शिल्प विशेषता यह है कि इनके कथानक प्राय:तभी अपने विकास का मार्ग खोज पाते हैं जब उनमें उलझाव सा आ गया प्रतीत होता है और ज्यों-ज्यों कथा सूत्रों में जटिलता आती जाती है त्यों-त्यो उनके भावी विकास के मार्ग भी स्पष्ट होने लगते हैं । सहज रोचक ढंग से कथा को आगे बढ़ाना पात्रों को परिस्थितियों की सापेक्षता में विकसित करना वर्मा जी की विशेषता है ।

अज्ञेय प्रेमचन्दोत्तर युग के विशिष्ट उपन्यासकारों में से हैं । हिन्दी में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों को प्रौढ़ रूप देने का श्रेय अज्ञेय को ही है 'शेखर: एक जीवनी' 'नदी के द्वीप ' 'अपने अपने अजनबी' कथानक की नवीनता से सम्पन्न कथाकृतियाँ हैं[1] ।

इनके उपन्यास सर्वत्र और सभी रूपों में सृजन की चेतना से सम्पन्न हैं । मनोवैज्ञानिक सत्यों की प्रतीति कराने के लिए इनके पात्र गढ़े हुए नही मालूम होते । जैनेन्द्र और इलाचन्द्र जोशी अपने पात्रों में स्वयं नहीं होते बल्कि उनके पात्र एक विशेष प्रकार के प्रयोजन की पूर्ति के लिए गढ़े गये होते हैं। लेकिन अज्ञेय के उपन्यासों के बारे में यह नहीं कहा जा सकता क्योंकि इनके उपन्यास इनके व्यक्तित्व के माध्यम से फूटे हैं। ऐसा लगता है कि जैसे अपने सारे उपन्यासों में वे स्वयं हों । व्यक्तित्व की प्रखरता के कारण इनके पात्र जीवन्त लगते हैं । इनकी लेखनी सशक्त है जिसमें एक

---

1. हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा

खुलापन दिखाई देता है । अज्ञेय के उपन्यासों का असाधारण महत्व उनके उपन्यासों के अनोखे शिल्प के कारण है । फ्रायड, एडलर, युंग, इलियट आदि अनेक चिन्तकों का इन पर प्रभाव है किन्तु वे सब मिलाकर 'अज्ञेय' हैं ।

मार्क्स के दर्शन से प्रभावित होकर भी कुछ उपन्यास हिन्दी में लिखे गये । मार्क्सवाद के वैज्ञानिक विचार दर्शन को उपन्यास कला में ढालने का पहला सफल प्रयास करते हुए यशपाल ने हिन्दी को दादा कामरेड, देशद्रोही, मनुष्य के रूप, बारह घण्टे, पार्टीकामरेड आदि कथाइ कृतियां दी हैं । अपने उपन्यासों और कहानियों में उन्होंने युग जीवन और संघर्षो को चित्रित करने का प्रयास किया । इनका उद्देश्य वर्तमान समाज में व्याप्त मान्यताओं के खोखलेपन को उघाड़ कर लोगों के सामने प्रस्तुत करना था ।

ऐतिहासिकता के दायरे में भी कुछ उपन्यासों का सृजन किया गया । आचार्य चतुरसेन की 'वैशाली की नगर वधू' की परम्परा में डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'बाणभट्ट की आत्मकथा' तथा चारूचन्द लेख जैसी कृतियाँ देकर हिन्दी साहित्य का किया ।[1] इन उपन्यासों में लेखक की भावुकता, कल्पना और अलंकारों की झनकारों के बीच से निकलती हुई भाषा का सौन्दर्य देखते ही बनता है। वर्णन इतने सजीव हैं कि पाठक का हृदय हर्ष, वेदना, उत्साह, करूणा और पुलक से प्लावित हो उठता है। प्रसाद के समकक्ष इतिहास के पृष्ठो को सजीवता प्रदान करने वाली शैली द्विवेदी जी की है । वैसे ऐतिहासिक उपन्यास लेखन को सर्वोच्च शिखर पर विराजमान करने का श्रेय वृन्दावन लाल वर्मा को ही प्राप्त है ।

---

1 अभिनव हिन्दी निबन्ध - डॉ0 जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव

हिन्दी में उच्चकोटि के ऐतिहासिक उपन्यास, जिनमें अतीत कालीन घटनाओं को जीवन से और जीवन को मनुष्य के मनोरोगों से जोड़ा गया हो, सर्वप्रथम इन्ही के द्वारा प्रणीत हुए । गढ़ कुण्डार, विराटा की पद्‌मिनी, झाँसी की रानी, मृगनयनी आदि वर्मा जी की अद्वितीय रचनाएं हैं । ये उपन्यास पाठक के मन को बाँध लेते हैं । रांगेय राघव द्वारा रचित 'सीधा सादा रास्ता','कब तक पुकारूँ','मुर्दों का टीला' तथा कुछ अन्य उपन्यास 'छोटी सी बात', 'राई ओर पर्वत','मोहन जोन्दड़ों','भगवान एकलिंग,भी इस वर्ग के उपन्यासों के मील के पत्थर हैं ।

प्रेमचन्द के आँचलिक उपन्यासों की परम्परा को नवीन मूल्यों की परम्परा में बदलने का महत्वपूर्ण कार्य फणीश्वर नाथ रेणु के उपन्यासों 'मैला आंचल,' 'जुलूस,' 'दीर्घतपा' तथा 'परती: परिकथा ' द्वारा सम्पन्न हुआ । हिन्दी के किसी भी कथाकार को किसी एक कृति पर ऐसी ख्याति नहीं मिली । रेणु के उपन्यासों की विशेषता है उनकी सशक्त, सांकेतिक सूक्ष्म व्यंग्यात्मक शैली । श्यामू सन्यासी का उत्थान बलभद्र ठाकुरद्वारा रचित आदित्यनाथ, उदयशंकर भट्‌ट विरचित लोक- परलौक , तरन-तारन का 'हिमालय के आँचल' आदि कथाकृतियों ने एक नवीन औपन्यासिक विधा का प्रवर्तन किया ।

उपन्यासों का लोकप्रिय होना स्वातन्त्र्योत्तर काल की विचित्र वस्तु है। रचनाकारों की एक लम्बी कतार उपन्यास रचना में लगी हुई है । स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद के हिन्दी उपन्यासों में नये शिल्पों, नये विचारों एवं नई उत्क्रान्ति ने अभिव्यक्ति पाई है । भारतीय जीवन के अनेक अछूते अंग वर्णन के विषय बने हैं और नवीन सामाजिक

सन्दर्भ में उठते उभरते हुए नये मानव की आशा आकांक्षा एवं जीवन संघर्षों को स्वर मिल रहे हैं । कुछ महत्वपूर्ण रचनाओं की सूची इस प्रकार है -

1.	यक्षदत्त	-	इन्सान, अन्तिम चरण
2.	अँचल	-	चढ़ती धूप
3.	धर्मवीर भारती	-	गुनाहों का देवता, सूरज का सातवाँ घोड़ा
4.	राजेन्द्र यादव	-	प्रेत बोलते हैं, टूटे हुए लोग
5.	सत्येकतु	-	मैंने होटल चलाया
6.	अमृत लाल नागर	-	बूँद और समुद्र, शतरंज के मोहरे
7.	शैलेश मटियानी	-	दो बूँद जल
8.	निर्मल वर्मा	-	लालटीन की छत: अकेलेपन के द्वीप, वे दिन ।
9.	लक्ष्मी नारायण लाल	-	बया का घोंसला और साँप, मन वृन्दावन
10.	कृष्णचन्द शर्मा	-	नागफनी
11.	सत्यकाम विद्यालंकार	-	बड़ी मछली और छोटी मछली
12.	यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र	-	अनावृत
13.	अनन्त गोपाल शेबड़े	-	भग्नमन्दिर
14.	देवराज	-	अजय की डायरी, पथ की खोज बाहर भीतर, रोड़े और पत्थर

15.	जीवन प्रकाश जोशी	-	विवाह की मंजिलें
16.	मोहन राकेश	-	अंधेरे बन्द कमरे, नीली रोशनी की बाहों में
17.	कमलेश्वर	-	एक सड़क सत्तावन गलियाँ
18.	श्रीलाल शुक्ल	-	राग दरबारी
19.	जगदीशचन्द्र पाण्डेय	-	संज्ञा से पहले
20.	मन्नू भण्डारी	-	आपका बंटी
21.	अमृतराय	-	बीज, नागफनी का देश, हाथी के दाँत
22.	राजकमल चौधरी	-	मछली मरी हुई
23.	शिव प्रसाद सिंह	-	अलग-2 वैतरणी, गली मुड़ती है ।

आजकल के उपन्यासों में कथानक, पात्र, चरित्र चित्रण, कथावस्तु, देशकाल, वातावरण आदि परम्परा से चले आ रहे प्रतिमानों की अवहेलना की जा रही है। इन उपन्यासों में कथ्य की समय बद्धता और पारिवारिक पृष्ठभूमि को बहुत महत्व नहीं दिया जाता । एक विशेष वातावरण में जीवन यापन करते हुए व्यक्ति के मन की भंगिमाओं को अभिव्यक्ति मिल रही है । इन उपन्यासों की विलक्षणता अभिव्यक्तिगत है । आज का पाठक पात्रों का साथी बनना चाहता है । उनके साथ जीवन बाँटना चाहता है उनसे साझेदारी चाहता है । यह साझेदारी ही आज के उपन्यासों की विशेषता है। आज

की कथा कहानी को कहा-सुना नहीं जाता बल्कि जिया जाता है । इनमें उपलब्धियों के स्थान पर सम्भावनाएं रहती हैं क्योंकि यह युग ही सम्भावनाओं का है । एक विशेष परिवेश में रमा-बसा मन, व्यक्ति, स्थान आह उनसे जुड़ी हुई स्मृतियों की प्रामाणिकता में ही लेखक की सफलता समझी जाती है । पहले के उपन्यासो में एक विशिष्ट पात्र को निर्मित कर उसी का चित्रण लेखक करता था किन्तु आज कल के उपन्यासों में चरित्र प्रधान न होकर परिवेश प्रधान हो गया है । पात्र उस परिवेश का अभिन्न अंग होता है। वह उपन्यास को एक व्यापक मन्दर्भ में अर्थ प्रदान करता है । आज के उपन्यास में नये जीवन की खोज है उसमें सूक्ष्मता और गहराई के साथ विस्तार है, परिवेश की मुखरता है, मोहभंग की अनुभूति है, जीवन की दुरुहता है और उससे उबरने का प्रयास है । ये उपन्यास मनुष्य के टूटने और बनने की गाथा है । उपन्यासों में अब कथानक के स्थान पर 'लय' रूप के स्थान पर रूपायन और नायक की जगह अनाम नायक दिखाई देता है । रचनाकार अपनी अन्तर्दृष्टि का सम्प्रेषण रचना में करता है

शिल्प की दृष्टि से दो विधियां ग्रहण की जाती हैं । एक विधि में रचनाकार घटनाओं और पात्रों को पाठकों से परिचित कराकर अलग हट जाता है और पाठक स्थूल दृष्टि से सब देखते हैं। दूसरी विधि में पाठक कोसूक्ष्म दृष्टि प्रदान की जाती है जिससे वह घटनाओं व पात्रों की आंतरिकता में प्रेवश कर बारीकी से उनकी परख कर सके। आज के उपन्यासो में दूसरी विधि पर बल दिया जाता है । उपन्यासों में नाटकीय तथा काव्यात्मक तत्वों का समावेश कर उसे सौन्दर्य मण्डित करने की चेष्टा की जा रही है ।

नाटक के सूत्रधार की तरह रचना कार किसी एक पात्र के रूप में नैरेटर के माध्यम से उपन्यास में स्वयं घुस आता है और कथा को विकास और विस्तार देता है। वह अपने चारों ओर के व्यक्तियों की व्याख्या और विश्लेषण करता चलता है । नैरेटर स्वगत चिन्तन करता है और चेतना प्रवाह विधि से अतीत और आगत के सन्दर्भों द्वारा कथा में परिवर्तन करता है।इस पद्धति में मनुष्य एक साथ ही चेतना के कई स्तरों पर सोचता है और विम्ब तथा **प्रभावों** की सृष्टि करता चलता है।यहविधि मानव की आन्तरिक गहराई में प्रवेश करने की विधि है । जब नैरेटर वर्तमान से पीछे अतीत में लौटता है तो फ्लैश बेक का उपयोग करताहै तो इसे पूर्व दीप्ति पद्धति कहते है । इसमें पात्रों की स्मृति से विगत के अन्धकार की घटनाएं प्रदीप्त होती हैं । अतीत की घटनाएं अपनी स्थूलता से दूर होकर मानवीयता और मनोवैज्ञानिकता को अपने में समाहित कर लेती हैं । यह घटनाएं सूक्ष्म होती हैं । इसमें पात्र स्वयं दर्शक बन जाता है घटनाओं को जीने वाला नहीं । यह पद्धति मानसिक तनाव की अभिव्यक्ति के लिए उपयोगी होती है। व्यक्ति अपने मस्तिष्क में विगत को फिर से जीवित और प्रकाशित करता हुआ अपने से सम्बद्ध क्षणों को समेटता है । इन क्षणों की संवेदनशीलता उसे खुश-नाखुश करती हैं । यह पद्धति व्यक्ति के अहं के रहस्यमय क्षेत्रों को आवरण रहित करके विचारों को उनके प्रवाह में ही पकड़ लेने का आश्चर्यजनक प्रयत्न है । फ्रांस में इस चेतना-प्रवाह पद्धति को 'मोनोलॉग इन्टीरियर' नाम दिया गया है । मानव मन की उथल-पुथल को ज्ञात करने का प्रयत्न फ्लैश बैंक और चेतना प्रवाह जैसी सूक्ष्म पद्धतियों के द्वारा किया जाता है ।

मनुष्य की मानसिकता और आन्तरिकता को उजागर करने की यह पद्धति सफल और उपयोगी दोनो ही है ।

एक तीसरी पद्धति है जिसे 'टाइमशिफ्ट' या 'कॉनोलॉजिकल लूपिंग मेथड' अथवा तुमोच्छेदक पद्धति के नाम से जाना जाता है । इसके अन्तर्गत पात्रों के चरित्र और घटनाओं के सहज विकास क्रम को पकड़ना कठिन कार्य है । काल को नकार दिया जाता है और अन्तराल को महत्व दिया जाता है इस विधि में रचना स्पष्ट नही होती उसमें कुछ उलझापन सा रहता है । उपन्यास में सब कुछ अनियोजित सा रहता है । रेणु के 'मैला ऑचल' में क्रमोच्छेदक पद्धति का उपयोग परिलक्षित होता है। चलचित्रों से प्रेरित होकर 'शहर में घूमता आइना' में डाक्युमेन्टरी शिल्प का उपयोग किया गया है । डाक्यूमेन्टरी शिल्प में 'यथातथ्य वर्णन' होता है । 'अलग-अलग वैतरणी' (शिवप्रसाद सिंह) में ट्रेलरशिल्प का प्रयोग किया गया है । 'ट्रेलरशिल्प' में थोड़े में सम्पूर्णता को व्यजित किया जाता है। 'नदी के द्वीप' (अज्ञेय) में 'क्लोज अप अथवा स्लोअप शिल्प का प्रयोग हुआ है । क्लोजप शिल्प में'लघु क्षण' का विकास किया जाता है । ये समस्त लेखकीय प्रयोग रचनाकार की कलात्मक प्रतिभा पर निर्भर करते हैं । आज के उपन्यासों में परिदृश्यात्मक शैली की अपेक्षा दृश्यात्मक शैली पर बल दिया जाता है । पाठक कथा सुनता देखता जैसा है । आज के समय में शिल्प का रूप लेखक की अन्तर्दिष्ट पर निर्भर है ।

कुछ समय से पाठक के समयाभाव को ध्यान में रखते हुए लघु उपन्यासों की रचना करने की प्रथा चल पड़ी है । लेखक जीवन को व्यापक रूप में न देखकर एक विशेष दृष्टिकोण से केवल कुछ जीजों को देखता है और वर्णन करता है । जीवन को वह बड़े मापदण्ड पर नही परखता । सफल लघु उपन्यास की अलग तकनीक है।

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में व्यापक लोच है । वह आधुनिक के भाव का विविध दिशाओं और कोणों से पकड़ने के लिए प्रयत्नशील है तथा जो व्यक्त नही है, जिसे व्यंजित नही किया जा सकता उसे शब्द देना चाहता है । नैतिकता आदर्श और मर्यादा जैसे शब्दों को निरर्थक मानता है । मानव मन के हर कोने में लगे जाले को दिखाना चाहता है । क्योंकि ऐसी मनस्थितियाँ सदैव चलने वाली रहती है । समकालीन उपन्यास मानव मन की परख करने में अधिक प्रयत्नशील है ।

स्वातन्त्र्योत्तर उपन्यासों की सामान्यतया तीन कोटियाँ बनाई जा सकती है । (क) सामयिक (ख) अतीतोन्मुख तथा (ग) मनोविश्लेषणात्मक (व्यक्ति प्रयत्न)।

सामयिक उपन्यासों में रेणु का 'मैना आँचल' विशिष्ट स्थान रखता है । यह आँचलिक उपन्यास कहलाता है। इसी आँचलिक उपन्यास की परम्परा में ही रेणु ने 'परती परिकथा' लिखा जो उतना सफल नही हो सका । रेणु के 'मैला आँचल'

के बाद उदय शंकर भट्ट का 'सागर लहरे और मनुष्य', रांगेय राघव का 'कब तक पुकारूँ', देवेन्द्र सत्यार्थी का 'ब्रहम पुत्र' , 'कथा कहो उर्वशी', शैलेश मटियानी का 'हौलदार', राम दरश मिश्र का 'पानी के प्राचीर' आनन्द प्रकाश जैन का 'आठवीं भाँवर' नागार्जुन के 'उग्रतारा' आदि अनेक उपन्यास लिखे गये। गाँव के नव्यतर जीवन के चित्र राही मासुम रजा के 'आधा गाँव', शिव प्रसाद सिंह के 'अलग अलग वैतरणी', श्रीलाल शुक्ल के 'रागदरबारी', रामदरश मिश्र के 'जल टूटता हुआ', विवेक राय के 'बबूल'में दृष्टव्य है।

इन सामयिक उपन्यासो में'अलग अलग वैतरणी' 'रागदरबारी', तथा 'टूटता हुआ जल', के कथ्य लगभग एक ही तरह के हैं । केवग ग्राम्य जीवन की परख अलग अलग दृष्टिकोणों से की गयी है । शिवप्रसाद सिंह गाँव के क्रूर यथार्थ को लक्ष्य करते हैं । श्रीलाल शुक्ल नाटकीय जीवन का मजाक उड़ाते हैं । रामदरश मिश्र ने सहानुभूति और आशावादिता का स्वस्थ्य रूप परिलक्षित होता है ।

भगवती चरण वर्मा,यशपाल और उपेन्द्र नाथ अश्क स्वतंत्रता के पहले ही प्रतिष्ठा पा चुके थे । भगवती चरण वर्मा के 'भूले-बिसरे चित्र', सामर्थ्य और सीमा, 'रेखा', 'सीधी सच्ची बाते' 'सबहि नचावत राम गोसाई' आदि स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय इतिहास का वर्णन करते हैं । इन उपन्यासों में परिवारों के बिखरने-टूटने, राष्ट्रीय चेतना,राजनेताओं के पतन तथा पूंजीशाहों का बोलबाला होने की कथा है। झूठा सच()यशपाल()विभाजन

के बाद की साम्प्रदायिक चेतना का प्रारम्भिक दस्तावेज है तथा हिन्दी साहित्य का विलक्षण उपन्यास है । अश्क के महत्वपूर्ण स्वातन्त्र्योत्तर उपन्यासों में 'बड़ी-बडी आँखों' 'पत्थर - अल-पत्थर,' 'शहर में घूमता आइना' और 'एक नन्हीं केदील' में मध्य वर्गीय जीवन की झाँकी है ।

अन्य उल्लेखनीय उपन्यासों में नरेश मेहता का 'यह पथ बन्धु था', 'नदी यशस्वी है' 'प्रथम फाल्गुन' गिरीश अस्थाना का 'धूप छांही रंग' आदि हैं ।

व्यक्तिवादी उपन्यास लेखकों में अज्ञेय को उच्चतम स्थान पर रखा जा सकता है । उनके उपन्यास 'नदी केद्वीप' तथा ' अपने-अपने अजनबी' बहुचर्चित उपन्यास हैं । इसी प्रकार जैनेन्द्र का 'जयबर्द्धन' तथा 'मुक्बिोध', इलाचन्द्र जोशी का 'जिप्सी' 'ऋतुचक्र' आदि नवीन उपन्यासों में निर्मल वर्मा का 'वे दिन' मोहन राकेश कृत' अँधेरे बन्द कमरे', 'न आने वाला कल' तथा 'अन्तराल,' ऊषा प्रियवंदा का 'पचपन खम्भे लाल दीवारें,' 'रुकोगी नहीं राधिका,' कृष्णा सोबती का 'मित्रों मरजानी,' 'सूरजमुखी अंधेरे में,' ममता कालिया का ' बेघर' , मन्नू भण्डारी का ' आपका बंटी' , हजारी प्रसाद द्विवेदी का ' चारु चन्द्र लेख', 'बाणभट्ट की आत्मकथा' , अमृत लाल नागर का 'एकदा नैमिषारण्ये' तथा मानस का हंस इत्यादि श्रेष्ठ उपन्यास हैं ।

नारी-पुरुष के उभरते हुए सम्बन्धों और उनसे उत्पन्न हुए मानसिक तनावों,

समस्याओं को नदी के द्वीप में उभारा गया है । अपने - 2 अजनवी में मनुष्य के अजनवी पन तथा मृत्यु बोध को अभिव्यक्त किया गया है । अज्ञेय के उपन्यासों में शिल्प तथा भाषा की व्यंजनापूर्ण अभिव्यक्त है । निर्मल वर्मा कृत ' वे दिन ' में व्यक्ति केन्द्रित दृष्टिकोण सबसे अधिक उभरा है । इस उपन्यास में विदेशी परिवेश में घिरे व्यक्ति के अकेलेपन तथा अवसाद का अंकन किया गया है । मोहन राकेश कृत अंधेरे बन्द कमरे में', स्त्री पुरुष सम्बन्धों विशेष रूप से दाम्पत्य जीवन में पड़ने वाली दरारों का चित्रण है।आज के युग में पति- पत्नी के बीच स्पर्धा की भावना बढ़ गयी है आपस में सामंजस्य तथा समर्पण की भावना का कोई स्थान नहीं रहा गया है। पति पत्नी दोनो ही स्वतंत्र व्यक्तित्व के मोह से बंधे रहते हैं इसलिए आपसी क्षोभ, घुटन, ईर्ष्या आदि बढ़ते ही जा रहे हैं।'न आने वाला कल' में इसी का चित्रण है । इसकी कथा ' वे दिन' से मिलती जुलती है केवल अन्तर परिवेशगत है। 'अन्तराल' में घुटन महसूस करते हुए स्त्री पुरूषों की मनः स्थितियों का चित्रण है । वे जीवन जीते नहीं बल्कि ढोते हैं। इस उपन्यास में मानसिक द्वन्द का अच्छा चित्रण किया गया है । भाषा और कला की दृष्टि से यह उपन्यास मोहन राकेश के उपन्यासों से अलग है ।

उषा प्रियवंदा के उपन्यास व्यक्तिवादी चिन्तन पर आधारित दृष्टिकोण लिए हुए हैं इनके उपन्यास आधुनिक नारी की **मानसिकता** को उजागर करते हैं । ' रुकोगी नहीं राधिका' में नारी को पारिवारिक संदर्भ में प्रस्तुतकर परम्परागत मूल्यों से जूलते दिखाया गया

है। वह अपना स्वतंत्र्य व्यक्तित्व स्थापित करना चाहती है । कृष्णा सोबती यौन सम्बन्धों का पूर्ण साहसिकता से चित्रांकन करती हैं ।'मित्रों मरजानी' में उन्होने एक नारी की असन्तुष्ट कामेच्छा का चित्रण किया है । किन्तु यह उपन्यास सुन्दर चरित्र प्रधान उपन्यास बन पड़ा है । ममता कालिया का 'बेघर' में स्त्री पुरुष की वही चिर समस्या है नायक रूढ़िगत संस्कारों से ग्रस्त है । उसके मानसिक द्वन्द्व की परिणति मृत्यु में होती है । इस उपन्यास में सामान्य मानव का सामान्य चित्रण किया गया है। आधुनिक उपन्यासों की तरह ' बेघर' में भी भाषा का आधुनिक और नवीन प्रयोग हुआ है । यह बिम्बों, प्रतीकों, मुहावरों आदि से पूर्ण और संममित उपन्यास है । मन्नू भण्डारी कृत 'आपका बंटी ' में स्त्री पुरुष के तनाव पूर्ण सम्बन्धों की छाया में एक अबोध बालक के मानसिक जगत का चित्रण किया गया है । बंटी दम्पत्ति को टूटकर भी टूटने नहीं देता ।

द्विवेदी जी तथा नागर जी स्वातंत्र्योत्तर काल के श्रेष्ठ रचनाकार सिद्ध हो सकते हैं ।

आधुनिक उपन्यासों में व्यक्ति के सूक्ष्म मन को टटोलना , उसे खोजना, उसके मन की व्यथा की गाथा कहना एक विशेषता है । यदि आधुनिक उपन्यासों को मानव के व्यथित मन की गाथा कहें तो अधिक समीचीन होगा। इन उपन्यासों में जीवन का सम्प्रेक्षण अपेक्षाकृत ईमानदारी के साथ किया गया है । सभी उपन्यासकारों ने अपनें को श्रेष्ठ रूप में अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया है ।

बंगला उपन्यासों का परिचयात्मक विवरण

उपन्यास के उद्‌भव से पूर्व बंगाल में लोक-कथा कहानियों का प्रचार था। वह सब पद्यबद्ध था । मंगल काव्य जैसे अनेक लौकिक देवी-देवता विषयक साहित्य कथा-कहानी का ही भण्डार था । इन्ही में से कुछ सामान्य लोक कहानियाँ सम्मिलित होकर धार्मिक उपयोग में आती रही हैं । आगे जाकर वही सब कथायें 'लोक' प्रेम काव्य में परिणित हो गयीं ।

भारत चन्द्र ने 'विद्यासुन्दर' को परिनिष्ठित कलासिक का रूप दिया। इसी परम्परा के अन्तर्गत एक लोक कहानी 'कामिनी कुमार' पद्य में लिखी गयी इसके बीच बीच में गद्य का भी प्रयोग हुआ । इन उपन्यासों में आधुनिक उपन्यास के जन्म की सूचना होने पर भी इस परम्परा से उपन्यास का जन्म नहीं हो सका । यह केवल संकेत भर करती है कि उपन्यास शैली में कहानी की प्रवृत्ति पहले से ही विद्यमान थी ।[1]

मनुष्य में गल्प कहने की प्रवृत्ति सनातन है । बंगला साहित्य के प्रारम्भिक काल में गल्प लिखा गया होगा, किन्तु चाहे जो भी कारण रहा हो उसकी कोई सुनियोजित एवं परिनिष्ठित सूचना नहीं प्राप्त होती । उपन्यास लेखन के द्वारा साहित्य सृष्टि की चेष्टा वर्तमान युग में ही विशेषतया प्रचलित हुई है ।

---

1. बंग साहित्ये उपन्यासेर धारा - श्रीकुमार बन्धोपाध्याय

बंगला के उपन्यासों में तीन स्वतंत्र धाराएं दृष्टिगोचर होती हैं -

1. लोकरंजक तथा शिक्षात्मक स्वरूप - इनमें व्यक्ति विशेष का रूप नहीं मिलता केवल 'टाइप' चरित्र मिलता है ।

2. अद्भुत रसात्मक कथा - आदि रसात्मक रोमांटिक आख्यायिका और शिक्षात्मक कहानियाँ।

3. साहित्य के प्रभाव से ऐतिहासिक रोमांटिक कहानियाँ ।

इसके पश्चात् एक नवीन धारा का प्रादुर्भाव हुआ । विवाहित नारी पुरुष के हृदय द्वन्द्व का चित्रण करना इसकी विशिष्टता रही । इस धारा ने साहित्य जगत में उपन्यास के माध्यम से आधुनिकता का प्रवेश सम्भव किया । उपन्यास की कल्पना में एक नये आलोड़न तथा नये दिग्दर्शन ने जन्म लिया ।

बंगला में उपन्यास का आर्विभाव मुख्यतः समाचार पत्रों के द्वारा हुआ । लेखकों ने तत्कालीन समाज के विशेष स्तर के व्यक्तियों के व्यक्तिगत जीवन तथा भ्रष्टाचार का विवरण लिखा ।

1800-1818 ई0 तक समाचार पत्र प्रतिष्ठित रहा और अभिव्यक्ति का क्षेत्र उन्मुक्त हुआ । समाचार पत्र के साथ उपन्यास का बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसीलिए उपन्यास के सम्बन्ध में आलोचना करते समय समाचार पत्र का उल्लेख करना

आवश्यक हो जाता है । 1821 ई0 में समाचार दर्पण के बाबू चरित्र की आलोचना उसका श्रेष्ठ उदाहरण है । उस समय के बाबू समाज का जीवन कैसा था? उनके विलासपूर्ण, व्यसनपूर्ण, आलसी, जीवन का विवरण 'बाबू चरित्र' में मिलता है । इसके दो वर्ष पश्चात् 'प्रमथ नाथ शर्मा' (भवानी चरण बन्द्योपाध्याय) कृत नवबाबू बिलास, प्रकाशित हुआ । इसके लगभग 35 वर्ष पश्चात् 'आलालेर घरेर दुलाल' (1858) प्रकाशित हुआ । इसके लेखक प्यारी चाँद मित्र (टेक चाँद ठाकुर) हैं । इसके चार वर्ष पश्चात् 'काली प्रसन्न सिंह' का का हुतुम पेंचार नक्शा' (1862) ईस्वी प्रकाशित हुआ ।

कुछ विद्वानों का अभिमत है कि प्यारी चाँद मित्र कृत 'आलालेर घरेर दुलाल' बंगला साहित्य का प्रथम उपन्यास है । इसमें कहानी है, सामाजिक चित्र है और वास्तविकता भी है किन्तु उपन्यास का मौलिक उपादान मानव हृदय के गोपन प्रदेश का चित्र नहीं है । इसका विषय नीति, शिक्षा, व्यंग्य और विद्रूप पर आधारित है । यह शिथिल औपन्यासिक शैली में गूँथा हुआ है । औपन्यासिक मर्यादा की श्रेणी में इसे रखना उचित प्रतीत नहीं होता ।

बंगला उपन्यास का उद्भव ऐतिहासिक कहानी के आधार पर ही हुआ है । भूदेव मुखोपाध्याय का 'एतिहासिक उपन्यास' शीर्षक ग्रन्थ के अन्तर्गत अँगुरीय विनिमय (1862) प्रथम उपन्यास की मर्यादा प्राप्त कर सकता है । बंकिम चन्द्र पर इसका प्रभाव

स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है ।

वस्तुतः बंगला साहित्य में उपन्यास के प्रथम प्रवर्तक बंकिम चन्द्र हैं । इनका प्रथम उपन्यास 'दुर्गेश नन्दिनी' (1865) प्रकाशित हुआ । औपन्यासिक परिभाषा की दृष्टि से बंगला का यह प्रथम उपन्यास है । बंकिम काल में ही उपन्यास पूर्ण यौवन की शक्ति तथा उससे उत्पन्न महिमा से मण्डित हुआ । उन्होंने उपन्यास लिखा और लिखते ही क्लासिक बना दिया । उस समय की भाषा समाचार पत्र की भापा थी और इसलिए बंकिम को भाषा रचना भी करनी पड़ी । वे ही बंगला साहित्य के प्रथम सार्थक उपन्यासकार हैं । बंगला साहित्य उन्हीं की प्रतिभा से समृद्ध हुआ । इनके उपन्यासों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है - (1) प्रथमवर्ग में वे उपन्यास आते हैं जो सम्पूर्ण वास्तविक हैं और जिनमें पारिवारिक और सामाजिक जीवन की वर्णना तथा व्याख्या है । इस कोटि के उपन्यास हैं - 'रजनी', 'विषवृक्ष', 'इंदिरा' तथा 'कृष्ण कान्तेर उइल' । इन उपन्यासों में भी रोमांस का लक्षण मिलता है । (2) दूसरे वर्ग में वे उपन्यास आते हैं जो ऐतिहासिक और असाधारण घटना के चित्रण पर आधारित हैं - 'दुर्गेश नन्दिनी' (1865), 'कपाल कुण्डला' (1866), 'मुणालिनी' (1869), युगलांगुरीय' (1874), 'चन्द्रशेखर' (1875), 'राजसिंह'(1881), 'आनन्दमठ' (1882), 'देवी चौधुरानी' (1888), तथा 'सीताराम' (1887), ऐतिहासिक रोमांस हैं।

किन्तु यदि किसी एक श्रेणी में उनके सम्पूर्ण उपन्यासों को रखकर परखने की चेष्टा की जाय तो यह स्पष्ट ज्ञात होगा कि उनका प्रत्येक उपन्यास ही अतिशय कल्पना समृद्ध है । वे प्रधानतः रोमांस रचयिता हैं और यही रोमांस कभी इतिहास और कभी सामाजिक जीवन के चित्रण में अपना अपरूप आलोक फैला रहा है।

अंग्रेजी रोमांस का अनुसरण करते हुए बंकिम ने बंगला साहित्य में उपन्यास रचना का युग प्रर्वतन किया । आज वही गति परिर्वतन करता हुआ आगे बढ़ रहा है। इनका उपन्यास पूर्णतया देशीय वस्तु है । पात्र, देशकाल, वातावरण, सभी कुछ भारतीय हैं। इनके उपन्यासों में नित्य परिचित व्यक्ति अपूर्व भाव से रूपान्तरित होकर रोमांटिक स्वप्न लोक में दिखाई देते हैं । इन्होंने जिन चरित्रों का अंकन किया है उन पर रोमांस के असाधारणत्व की छाप है । बंगला गद्य की भाषा भी बंकिम के हाथों सरल व व्यवहार योग्य हो गयी । समाचार पत्र की स्थापना के समय से लेकर बंकिम ने बोलचाल की भाषा के ढंग को मिलाकर और वाक्यों के विस्तार को घटाकर उनको छोटा करके भाषा को सरल और अधिक सहज बोध कर दिया । यह बंकिम चन्द्र की प्रमुख देन है ।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अंग्रेजी शिक्षकों के प्रमुख प्रतिनिधि बंकिम ही थे । शिक्षित वर्ग में इस समय भारतीय शास्त्र, पुराण तथा दर्शन के प्रति एक आकर्षण

उत्पन्न हुआ जिससे इस वर्ग में शास्त्रीय सत्य को उजागर करने की इच्छा तीव्र हुई। बंकिम हिन्दू धर्म के प्रति आस्थावान थे । हिन्दू समाज में श्रद्धायुक्त रहकर धर्मान्धता रहित होकर वैज्ञानिक चित्तवृत्ति द्वारा हिन्दू शास्त्रों की सार्थक आलोचना की जा सकती है यह बात बंकिम चन्द्र ने अपने धर्मतत्व, अनुशीलन तत्व आदि ग्रन्थों तथा दूसरे निबन्धों में सिद्ध कर दिया है । भारत सभ्यता की श्रेष्ठता संसार के समक्ष सिद्ध करने में बंकिम अत्यन्त प्रयत्नशील थे ।

बंकिम दर्शन (समाचार-पत्र) के प्रकाशन के पूर्व अल्पावस्था में ही ईश्वर चन्द्र गुप्त की प्रेरणा से काव्य रचना करके बंकिम बंगला साहित्य के क्षेत्र में अवतीर्ण हुए । बंगला गद्य के प्रति उनका प्रबल आकर्षण था । अन्ततः ये श्रेष्ठ गद्यकार सिद्ध हुए । यह निर्विवाद सत्य है कि बंकिम चन्द्र बंगला भाषा के शक्तिशाली स्तम्भ हैं । उन्होंने बंगला साहित्य की श्रीवृद्धि की है । भगीरथ की तरह अपनी साधना से उन्होंने बंगला साहित्य में भाव मन्दाकिनी प्रवाहित की है जिसके पूर्ण स्पर्श ने हमारी जड़ता को दूर कर प्राचीन भस्म राशि को सजीव किया है । यह कोई सामयिक मत नहीं है, न इस पर कोई तर्क अथवा रूचि भेद की ही आवश्यकता है । यह तो एक ऐतिहासिक सत्य है ।[1]

---

1. दृष्टव्यः रवीन्द्र की दृष्टि में बंकिम : विमल बोस, 'आजकल' नवम्बर 1961, पृष्ठ 18.

बंकिमचन्द्र की प्रतिभा से बंगला साहित्य ने जो निरन्तर प्रगति की यह उनकी रचनाओं से ही स्पष्ट है । बंगला साहित्य के अभ्युदय से कई लेखकों ने जन्म लिया। किन्तु सभी की रचनाएं साहित्य को समृद्धशाली न बना सकीं । तत्कालीन साधारण लेखक बंकिमचन्द्र की समालोचना से संशकित थे । बंकिम ने स्पष्ट रूप से क्षमताविहीन लेखकों तथा क्षमतावान लेखकों की आलोचना की । इसलिए उस युग में बंगाल का साहित्य संयमित था।

बंकिम सूक्ष्मदर्शी समालोचक थे । इसलिए बंगला साहित्य विशिष्ट, श्रेष्ठ और सजीव रचनाओं से निरन्तर समृद्ध होने लगा । समाचार पत्र के जन्म से लेकर अवसान तक बंकिम चन्द्र बंगला साहित्य के समालोचक के रूप में आसनारूढ़ होकर राजदण्ड का परिचालन करते रहे । बंकिम की धारा को समसामयिक तथा परवर्ती लेखकों ने गद्य साहित्य में भी ग्रहण किया ।

बंकिमचन्द्र ने विभिन्न धाराओं के अनेकानेक उपन्यासों की रचना की जिनमें 'सीताराम', 'देवी चौधुरानी', 'आनन्दमठ', विशिष्ट है । इनके उपन्यासों में कल्पना की अतिशयता दृष्टिगोचर होती है । क्योंकि रोमांस में कल्पना की उड़ान होती है और प्रेम तथा साहसिकता की प्रधानता होती है । इन्होंने अपने उपन्यासें में आदर्श कल्पना की सार्थक सृष्टि की है इसीलिए उसमें कल्पना की अतिशयता स्वाभाविक ही है ।

इनके समसामयिक लेखकों में अनेक ऐतिहासिक उपन्यास रचयिताओं का जन्म हुआ । जिनमें से कई उपन्यासकार अपने वैशिष्ट्य के साथ साहित्य के क्षेत्र में चिरस्थायी

स्थान ग्रहण किये हुए हैं । इसके पश्चात् 1848 से 1969 तक रमेशचन्द्र दत्त और राखालदास वन्द्योपाध्याय उल्लेखनीय रहे ।

रमेश चन्द्र दत्त विशेषतः ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में सफल रहे । इन्होंने सामाजिक उपन्यासों की भी रचना की । इन्होंने कल्पना की अतिशयता अथवा आदर्शवाद के सहारे ही इतिहास को रूपान्तरित नहीं करना चाहा, वे यथासाध्य सत्य-चित्रण के ही प्रयासी रहे हैं । उनके ऐतिहासिक उपन्यास दो वर्गों में विभाजित किये जा सकते हैं - (1) 'बंगविजेता', 'माधवी कंकण', इनमें कल्पना का आधिपत्य है। (2) 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' 'राजपूत जीवन सन्ध्या,' इसमें सत्य-निष्ठा का आग्रह अधिक है तथा कल्पना ऐतिहासिक सत्य की अनुगामिनी है । रमेशचन्द्र के एतिहासिक उपन्यासों की विशेषता है जातीय अभिज्ञता। यह उनके उपन्यासों में यथेष्ट मात्रा में प्राप्य है। अविमिश्र ऐतिहासिक उपन्यासों का निदर्शन बंग-साहित्य में केवल रमेशचन्द्र के ही उपन्यासों में पाया जाता है ।

इनके सामाजिक उपन्यास हैं 'संसार' और 'समाज' । इन उपन्यासों का वर्ण्य विषय है इतिहास के शोर-गुल से दूर, शान्त ग्रामीण सुन्दरता के बीच पारिवारिक और सामाजिक सुख-दुःख की कहानी । सहज सरल और दरिद्र ग्रामीणों के प्रति करूणा

और गम्भीर सहानुभूति इन उपन्यासों की भावगत एकता है । 'संसार' उपन्यास का विशेष उद्देश्य है विधवा - विवाह का समर्थन। ग्रामीण किसान के गृहस्थ जीवन का पारिवारिक वातावरण कहानी को पाठक तक सरस ढंग से पहुँचा देता है । 'समाज' उपन्यास में पूर्ववर्ती उपन्यास संसार में वर्णित पात्रों के परवर्ती जीवन की कहानी का वर्णन है । गृहस्थ जीवन का सफल चित्रण तारकनाथ गंगोपाध्याय के स्वर्णलता उपन्यास के अलावा और किसी सामयिक उपन्यास में नहीं प्राप्त होता । रमेश चन्द्र दत्त के उपन्यासों के रोमांस में नवीनता है । ऐतिहासिक परिवेश के साथ उपन्यास कहानी का सम्पर्क उनकी रचना में दृढ़तर है तथा ऐतिहासिक चरित्र मर्यादित तथा स्थायी हैं । उनके उपन्यास में उनका स्वदेश प्रेम तथा स्वाजाति गर्व सजीव आडम्बरहीन हैं । इनके चरित्र सजीव और वास्तविक हैं । इसी कारण इसकी रचना लोकप्रिय हो सकी । ऋग्वेद के अनुवाद की तरह विशाल कार्य की प्रेरणा के मूल में भी सही स्वदेश प्रेम था। दो खण्ड 'हिन्दू शास्त्र' उनकी कीर्ति है।

ऐतिहासिक उपन्यासों के क्षेत्र में पुरा तत्वविद् राखालदास वन्द्योपाध्याय ने विशेष कृतित्व रूपायित किया। इतिहास के परम पण्डित और नवीन से नवीन गवेषणाओं से इतिहास की कड़ियों को जोड़ने वाले राखालदास ने कुद अच्छे उपन्यासों की रचना की थी। इनके ऐतिहासिक उपन्यासों में केवल वृत्त मात्र ही ऐतिहासिक नहीं है । उन्होंने

वस्तुतः ऐतिहासिक युगों को उपन्यास में सजीव कर दिया है । इतिहास की जीवन्तता उनकी रचना में अनायास प्रकट होती है । उनकी रचनाओं में शशांक, धर्मपाल मयूख, असीम, आदि उल्लेखनीय हैं ।

बंकिम के पश्चात् उपन्यास साहित्य में एक नवीन अध्याय की अवतारणा हुई। उपन्यास रचना के क्षेत्र में ऐतिहासिक और सामाजिक धाराएं अपने वेग से प्रवाहित हो रही थीं । परवर्ती लेखक समुदाय अपने आपको बंकिम के प्रभाव से मुक्त नहीं कर सका । रवीन्द्र नाथ के प्रारम्भिक उपन्यास अस्पष्टतः बंकिम से प्रभावित थे । 'बऊ ठकुरानीर हाट', 'राजर्षि' आदि इनका श्रेष्ठ निदर्शन है । आगे चलकर जैसे-जैसे उनकी बहुमुखी प्रतिभा का विकास हुआ वैसे-वैसे बहुमुखी साहित्य सृष्टि भी बंगला साहित्य ने प्राप्त किया। रवीन्द्र नाथ अपने पूर्ववर्ती साहित्यकारों तथा उनकी वैचारिक परम्परा से भली भांति परिचित थे । जिस समय उन्होंने साहित्यिक क्षेत्र में पदार्पण किया उस समय बंग भूमि पर विद्यमान राजनीतिक, सामाजिक एवं साहित्यिक आन्दोलनों के प्रति वे पूर्ण रूपेण सजग थे ।

रवीन्द्र नाथ ने अत्यन्त तीक्ष्ण दृष्टि से पारिवारिक और सामाजिक जीवन का निरीक्षण किया । उनके उपन्यासों में उनका सूक्ष्म समाकलन है । रवीन्द्र नाथ अपने

सम्पूर्ण अस्तित्व के साथ कवि हैं । परन्तु उनकी साहित्यिक प्रतिभा ने उपन्यास के क्षेत्र में भी संचरण किया है । उनके कई उपन्यास विषयगत और शिल्पगत दोनों दृष्टियों से अतिशय महत्व के सिद्ध हुए हैं ।

बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय का सशक्त प्रभाव दीर्घकाल तक बंगला साहित्य के क्षेत्र को प्रभावित करता रहा । बंकिम और शरत् के बीच में कुछ ऐसे उपन्यासकारों का अभ्युदय हुआ जिनमें बंकिम चन्द्र का प्रभाव तो था ही कुछ साधारण सामाजिक जीवन का प्रभाव भी उनमें मिलता है । रमेशचन्द्र का 'संसार' तथा 'समाज' दोनों उपन्यास साधारण मनुष्य के सुख-दुःख से युक्त जीवन का आलेख्य है । इसी आलेख्य से बंगला उपन्यास पुनः समृद्ध हुआ ।

तारक नाथ गंगोपाध्याय का नाम इसी प्रंसग के अन्तर्गत उल्लेखनीय है । बंकिम प्रभावित परिवेश में तारकनाथ स्वतंत्र उपन्यासकार थे । साहित्य के पाठक नवीन रसास्वादन करने के लिए उत्सुक हुए । बंकिम के उपन्यासों में मानव के सुख-दुःख का क्षेत्र बृहत्तर था तथा तारकनाथ के उपन्यासों का क्षेत्र चिरपरिचित बंगाल के ग्राम्य जीवन पर कोई उल्लेख बंकिम की रचनाओं में नहीं मिलता। इस कमी को पूरा किया तारकनाथ रचित 'स्वर्णलता' ने। इससे पूर्व वास्तविक जीवन पर आधरित उपन्यास की रचना नहीं हुई थी । इनकी लोकप्रियता अतुलनीय थी । 'स्वर्णलता' की भाषा सरल, सहज और

बोधगम्य है । इसलिए इसमें काव्यात्मकता का आभाव महसूस नहीं होता। तारक नाथ के 'हरिशोविशाद' अदृष्ट और 'तीन टी गल्प' जनप्रिय नहीं हो सके । फिर भी उनमें स्वाभाविकता अथवा वास्तविकता प्रचुर मात्रा में है । इनकी अन्तिम रचना विधि लिपि असमाप्त ही रह गई ।

बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय के बड़े भाई संजीव चन्द्र चट्टोपाध्याय (1835-1889) ने गल्प उपन्यास तथा भ्रमण कहानी स्वतन्त्र रूप से लिखा । इनकी रचनाएँ बंकिम के प्रभाव से विमुक्त थी । इन्होंने 'भ्रमर' नामक मासिक पत्रिका का सम्पादन किया । जिसमें इनकी दो कहानियाँ प्रकाशित हुई । इसके पश्चात इनका 'कण्ठमाला' नामक उपन्यास प्रकाशित होने लगा । दूसरा उपन्यास 'माधवीलता' बंगदर्शन में प्रकाशित हुआ । इनकी दूसरी उल्लेखनीय रचना 'जाल प्रताप चाँद' है। इसके अलावा 'पालामऊ' एक भ्रमण वृत्तान्त है । इसमें उपन्यास की सीसरसता होने के कारण पाठक को अपार आनन्द की प्राप्ति होती है । संजीव चन्द्र की रचना में एक कौतुकमय लघुता दिखाई देती है । किन्तु प्रतिभा सम्पन्न होने पर भी साधना का अभाव होने के कारण ये प्रथम श्रेणी न हो सके । जबकि एक श्रेष्ठ साहित्यकार के गुण इनमें विद्यमान थे । इसलिए समालोचक खेद के साथ कहते हैं कि उनके ग्रन्थों का आनन्द जितना आनन्द देने वाला था उतना अन्त नहीं ।

बंगला उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में महिला उपन्यासकारों का आविर्भाव एक

विशिष्ट स्थान रखता है । इनकी रचनाओं में बंग समाज का चित्र नारी के दृष्टिकोण से अंकित हुआ है । उपन्यासोंका प्रधान उपजीव्य विषय है - प्रेम, नर-नारी का परस्पर एक दूसरे के प्रति निगूढ़ आकर्षण-रहस्य ।

बंगला साहित्य क्या यूरोपीय उपन्यास साहित्य के प्रथम युग में भी नारी की वाणी मूक व नीरव थी । रचना की उत्कृष्टता की दृष्टि से स्वर्ण कुमारी देवी (1855-1932) का नाम उल्लेखनीय है । उनके उपन्यासों को प्रधानतः दो भागों में विभाजित किया जा सकता है । ऐतिहासिक और सामाजिक । ऐतिहासिक उपन्यास में प्रधानतः 'दीपनिर्वाण', 'फूलेरमाला', 'मिवार राज्य', 'विद्रोह' उल्लेखनीय हैं । सामाजिक और पारिवारिक उपन्यासों में 'छिन्नमुकुल', और 'स्नेहलता' श्रेष्ठ हैं। ऐतिहासिक उपन्यासों का उत्कर्ष लेखक के इतिहास ज्ञान और कल्पनामूलक पुनर्गठन शक्ति के ऊपर निर्भर करता है । इनकी रचनाओं में विशेष मौलिकता भी नहीं मिलती । बंकिम चन्द्र की अपेक्षा उनकी रचनाओं में रमेशचन्द्र दत्त के दृष्टान्तों का अधिक प्रभाव दिखाई देता है । स्वर्णकुमारी रवीन्द्रनाथ की बड़ी बहन थीं । रमेशचन्द्र दत्त का प्रभाव रहने के कारण इनकी रचना में सत्य निष्ठा के साथ-साथ तथ्यों का विवरण मिलता है ।

'दीपनिर्वाण' (1879ई0) स्वर्ण कुमारी की कम उम्र की रचना है इसलिए इसमें त्रुटियाँ प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं।

'स्वर्ण कुमारी का समाजिक व पारिवारिक उपन्यास 'काहा के' सर्वोत्कृष्ट उपन्यास है । इसमें नारीचित्त की सूक्ष्मदर्शिता और भावप्रवणता सर्वत्र अनुभव की जा सकती है । इन्होंने कुछ छोटी कहानियों की रचना भी की तथा दीर्घकाल तक 'भारती' पत्रिका का सम्पादन कार्य भी किया और अनेक उपन्यासकारों से परिचय भी प्राप्त किया । जोड़ा साँको ठाकुर परिवार के अवदानों में से स्वर्ण कुमारी देवी अन्यतम है ।

स्वर्ण कुमारी देवी के परवर्ती महिला उपन्यासकारों में प्रधान हैं,निरूपमादेवी और अनुरूपा देवी । इनके उपन्यासों में स्वार्थ, त्याग, भगवत् प्रेम और लोकहित का चित्रण बहुत ही सहानुभूति के साथ चित्रित किया गया है । 'हिन्दू समाज के आदर्श और प्रेरणा पाश्चात्य भावों के कीचड़मय प्रवाह से मलिन हो रहे है।" इस विश्वास की चेतना से भारतीय मूल्य बोधों की प्रतिष्ठा करने की इच्छा इनमें प्रकट होती है । शांति और आत्मविर्सजन मूलक सन्तोष के ऊपर प्रतिष्ठित हमारा पारिवारिक जीवन भ्रष्ट हो रहा है, यही इनका तत्कालीन नवीन शिक्षा संस्कार के विरूद्ध लगाया गया सबसे बड़ा अभियोग है । सनातन हिन्दू धर्म का विचार और मूल भूत आदेश का समर्थन करके इन्होंने उपन्यास लिखा है ।

अनुरूपा देवी के एकाधिक उपन्यासों में एक आदर्श समाज नेता और एक धर्मनिष्ठ ब्राह्मण पण्डित का चित्र प्राप्त होता है जो सांसारिक दुःख कष्ट, सामाजिक

अत्याचार और उत्पीड़न के बीच भी सबकुछ सहता हुआ अपनी महिमा सहित खड़ा रहता है । इस तरह के चरित्र एक विशेष श्रेणी के प्रतिनिधि बन जाते हैं और चरित्र का व्यक्तिसूचक गुण निजी स्वतंत्रता उन सब के मध्य साधारणतः अस्पष्ट ही रह जाता है । धर्मानुष्ठान प्राचीन प्रथानुरक्त बंगाली परिवार जो कुछ प्रभाव विस्तार करता है इन सभी उपन्यासों में हम उसका परिचय पाते है । शंख, घन्टा,आरती, नैवेद्य, धूप, द्वीप की सुगन्ध, मंत्रोच्चारण की मधुर गम्भीर ध्वनि जैसे इन उपन्यासों के पन्नों में मिला हुआ है । यह धर्मानुष्ठान केवल दृष्टि सौन्दर्य अथवा वाह्याडम्बर के रूप में वर्णित है ऐसा नहीं, हृदय पर इसके गम्भीर प्रभाव से ही यह विशेषता आई है । सांसारिक सुख से रहित नारी अपने हृदय के अभाव को पूर्ण करने की इच्छा से देव मन्दिर में आश्रय लेती है । देवता के साथ एक मधुर स्नेह-भक्ति का सम्पर्क स्थापित करके अपनी अतृप्त इच्छाओं को पूर्ण करने का उपाय खोज लेती है । निरूपमा देवी का 'दीदी' उपन्यास और अनुरूपा देवी का 'मन्त्र शक्ति' उपन्यास इसका अनुपम उदाहरण है ।[1]

अनुरूपा देवी के उपन्यासों में 'मन्त्र शक्ति' , 'वाग्दत्ता', 'महानिशा', आदि उल्लेखनीय हैं । अनुरूपा देवी का मन्तव्य पाण्डित्य से बोझिल होने के कारण साधारण पाठक को पीड़ित करता है परन्तु सृजन शीलता के दृष्टिकोण से इनकी रचना श्रेष्ठ है । निरूपमा देवी का कला कौशल संयम द्वारा नियंत्रित है । इनका हृदय विश्लेषण सूक्ष्म भी है । बंगाल के वैचित्र्य रहित साधारण जीवन से उन्होंने संघर्ष का

---

1. बंग साहित्ये उपन्यासेर धारा-श्रीकुमारबन्द्योपाध्याय

उपादान ग्रहण किया है । उनकी चिन्तनशीलता और जीवन समालोचना में एक करूण कोमल स्वर है । इनके 'उच्श्रृंखल' , 'अन्नपूर्णा मन्दिर', 'विधि लिपि', तथा 'दीदी' आदि उपन्यास उल्लेखनीय हैं ।[1]

सीतादेवी और शान्ता देवी के उपन्यासो में विशेषकर नारी समाज में आधुनिक मनोवृत्ति का प्रभाव प्रतिफलित हुआ है । सीतादेवी और शान्ता देवी के उपन्यासों में महिला रचित उपन्यासकार का एक नवीन स्तर सूचित होता है । जहाँ नारी का एक स्वतंत्र अस्तित्व है । नारी मुक्ति का आभास इनकी रचनाओं में सुस्पष्ट है । यह उस युग के लिए एक नवीन बात थी ।

सीता देवी के उपन्यासो में - 'पथिक बन्धु', 'रजनी गन्धा', परभृतिका, और 'वन्या' उल्लेखनीय है । इन्होंने कुछ अच्छी लघु कहानियाँ भी लिखीं। उद्यानलता उपन्यास सीता और शान्ता देवी का युग्म उपन्यास है । शांता देवी की छोटी कहानियों में 'शिथिर सिन्दूर', 'वधुवरन', आदि उल्लेखनीय हैं ।

बंकिमचन्द्र के पश्चात बंगला उपन्यास साहित्य में एक सम्पूर्ण नूतन अध्याय की अवतारणा हुई। जिसे हम आधुनिक या अति आधुनिक युग के नाम से अभिहित करते हैं वह हैं बंकिम परवर्ती युग। 19वीं शताब्दी के अन्तिम भाग से लेकर 20वीं

---

1. बंगलासाहित्य का इतिहास - कल्याणीदास गुप्ता ।

शताब्दी के मध्य भाग तक साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों का अध्ययन रवीन्द्र नाथ के स्वरूप को न जानने से अधूरा रह जाता है । उपन्यास, नाटक, प्रहसन, रूपकनाट्य, भिन्न-भिनन तरह के काव्य, चित्रकथा, छोटी कहानियाँ काव्यमय नाटक, गद्यमय नाटक आदि असंख्य विधाओं में रवीन्द्र प्रतिभा का विकास होता है और बंगला साहित्य में एकाएक नवीनता और परिपूर्णता आ जाती है । साहित्य के क्षेत्र में असंख्य विधायें जन्म लेती हैं - रवीन्द्र प्रतिभा के स्पर्श से उसका उत्कर्ष केवल भारत को ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व को भी चमत्कृत कर देता है ।

जिस समय रवीन्द्र नाथ का जन्म (1861) हुआ उस समय भारत के नव जागरण का विकास चारो ओर आरम्भ हो गया था । देशात्मकता मंत्र प्रतिध्वनित हो रहा था । 19वीं शताब्दी के प्रथम भाम में जोड़ा साकों का ठाकुर परिवार शिक्षा-दीक्षा, धन-दौलत, दान-दया, आदि के लिए कलकत्ते के संभ्रान्त समाज में विख्यात था। इस परिवार के प्रतिष्ठापरक द्वारिकानाथ ठाकुर दोनों हाथों से धन लुटाने वाले व्यक्ति थे । इसी से इनकी समस्त चल-अचल, सम्पत्ति नीलामी के कगार पर थी । परन्तु इनके सुपुत्र देवेन्द्र नाथ ठाकुर ने अपने त्याग एवं निष्ठा के बल-बूते पर समस्त सम्पत्ति को नष्ट होने से बचा लिया । ये असाधारण पुरुष थे । लोग श्रद्धा से इन्हें महर्षि कहते थे । देवेन्द्र नाथ ठाकुर के पुत्र तथा कन्या सभी असाधारण गुण सम्पन्न थे । ज्येष्ठ पुत्र द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न थे । इन्होंने दर्शन के तत्व कथा को

सरल तथा सरस भाषा में व्यक्त करके बंगला साहित्य को समृद्धशील बनाया । मध्यम पुत्र सत्येन्द्र नाथ ठाकुर सुसाहित्यक तथा समाज संस्कारक थे । बंगाल में स्त्री शिक्षा तथा नारी मुक्ति में सत्येनद्रनाथ अग्रणी थे । पुत्र ज्योतिरिन्द्र नाथ काव्य, संगीत, नाटक, चित्रकला, आदि विभिन्न विषयों में दक्ष थे तथा इनके प्रति अनुरक्त थे । देवेन्द्र नाथ की कन्या स्वर्ण कुमारी देवी 19वीं शताब्दी की महिला साहित्यकारों में प्रमुख थी । ऐसे ही परिवार में देवेन्द्र नाथ ठाकुर के कनिष्ठ पुत्र के रूप में रवीन्द्र नाथ ने जन्म ग्रहण किया ।

रवीन्द्र नाथ की प्रतिभा के स्पर्श से, बंगला साहित्य के सभी क्षेत्र समृद्ध हुए । बंकिम युग के बाद उपन्यास में एक गम्भीर वास्तविकता परिलच्छित होती है । इसकी प्रथम सूचना रवीन्द्र नाथ के द्वितीय स्तर के उपन्यासों में प्राप्त होती है । प्रतिदिन की ग्लानि तथा विरोध का रवीन्द्र ने सविस्तार वर्णन किया है । इसलिए चित्रित विषय पूर्णागं प्रतीत होते हैं। इनके प्रारम्भिक उपन्यास समूहों में बंकिम का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है । 'बहुठकुरानीरहाट' (1885) तथा 'राजर्षि' (1887) इनके ऐतिहासिक उपन्यास हैं । 'चोखेर बालि' (1903) तथा 'नौका डूबी' (1906) उपन्यासों में से 'चोखेर बालि' वास्तविकता पर आधारित है । 'गोरा' एक अनन्य साधारण उपन्यास है। 'घरे बाइरे' (1916) 'चतुरंग' (1916), 'योगायोग', (1929), 'शेषेर कविता' (1930), 'दुईबोन' (1933), 'चार अध्याय' (1934), तथा 'मालंच' (1934), में रवीन्द्र नाथ ने मनस्ततत्व की सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि का परिचय दिया है ।

इसके पश्चात बंग साहित्य में प्रभात कुमार मुखोपाध्याय का नाम आता है । ये प्रथम श्रेणी के उपन्यासकार न होते हुए भी लोकप्रियता की दृष्टि से श्रेष्ठ के जीवन के ऊपरी भाग की छोटी सी चंचलता तथा लघु हास्य-परिहास का जो रंगीन चित्र इन्होंने बनाया हमारे संकीर्ण जीवन की परिधि में उसका प्राधान्य है । इनके उपन्यासों में मानव जवीन की जटिल समस्याएं नहीं हैं बल्कि सरल हास्य रस से पूर्ण है । ये कहानीकार के रूप में अधिक सफल रहे ।[1]

शरत् का अपूर्व आविर्भाव उस समय होता है जब रवीन्द्र नाथ की बहुमुखी प्रतिभा बंगाल साहित्य के समस्त क्षेत्रों को प्रदीप्त किये हुए थी । उनकी साहित्यिक सृष्टि असाधारण मौलिकता पर प्रतिष्ठित है । शरत ने बंगाल के सामाजिक और पारिवारिक जीवन के जिन समस्त उपादानों के प्रति अपनी दृष्टि निबद्ध की है उससे सभी परिचित हैं । परन्तु दृष्टि विश्लेषण तथा मतामत व्यक्त करने की जिस प्रणाली को उन्होंने अपनाया वह बिल्कुल नवीन है ।

इनकी साहित्यिक सृष्टि असाधारण मौलिकता पर प्रतिष्ठित है । सामाजिक रीति-रिवाज तथा रूढ़ संस्कारों की नारी-परुष के सम्पर्क के निर्भीक पुनर्विचार में तीक्ष्ण आलोचना उन्होंने जिस साहसिकता,अकुण्ठित सहानुभूति तथा उदारमनोवृत्ति का परिचय दिया है वह विरल है ।

---

1. बंगला साहित्य का इतिहास - कल्याणी दास गुप्ता ।

उनके अनेक उपन्यासों का विषय समाज विरोधी प्रेम को स्वाभाविक सहानुभूति के साथ चित्रित करना है । बंगला उपन्यास साहित्य में शरत् ने नूतन भावों की उत्तेजना से तथा नवीन दृष्टि की अवतारण से नवजीवन का संचार किया है।

'चरित्रहीन','श्रीकान्त' तथा 'गृहदाह' उपन्यास के अतिरिक्त शरत् ने और सभी उपन्यासों में पुरातन धारा का अनवर्तन किया है । 1913-14 ई० में 'यमुना पत्रिका' में नवीन रचना 'रामेर सुमति,' 'पथ निदेश' तथा 'विन्दुर छेले' प्रकाशित हुए और उनकी ख्याति फैल गयी । इन्होंने अत्यन्त सरल भाषा का प्रयोग किया है । बंगला साहित्य के क्षेत्र में इनके आविर्भाव से उपन्यास की गति तथा प्रकृति का परिवर्तन हो जाता है । इनके उपन्यासों में घरेलूपन है । 1914 में 'भारतवर्ष' पत्रिका में 'बिराज बहू', 'पण्डित मशाई','पल्ली समाज' आदि के प्रकाशन से इनका समादर बढ़ गया ।

शरत के उपन्यासों की विशेषता है नारी का ममत्व बोध। इनके उपन्यासों में नारी चरित्रों के व्यक्ति स्वातन्त्र्य अत्यन्त स्पष्ट रूप से अंकित हैं । प्रेम शरत् की दृष्टि में सदैव स्वच्छ तथा सहानुभूति पूर्ण रहा है । 'बामुनेरमेये' तथा 'पल्ली समाज' इन दोनों उपन्यासों में सामाजिक अत्याचार तथा उत्पीड़न के विरूद्ध प्रतिवाद का सर ऊँचा हो गया है । 'चरित्रहीन', 'गृहदाह', तथा 'श्रीकान्त' में विक्षोभ तथा आन्दोलन की भावना मुखर हुई है ।

इस युग की महिला उपन्यास कारों के दृष्टि की परिधि व्यापक हो गयी थी । शिक्षा व्यवस्था में समानता, सामजिक मेलजोल की सुविधा तथा जीवन पद्धति का रूपान्तर होने के कारण आज के स्त्री तथा पुरुष उपन्यास रचयिताओं में विभेद रेखा मिटने लगी है इस युग में पारिवारिक जीवन में जिस नवीन समस्या का जन्म हुआ है, पारिवारिक आदर्शवाद समाप्त होने के साथ ही साथ तीव्र व्यक्ति स्वातंत्र्य की चेतना का अभ्युदय तथा इसके अतिरिक्त परिवार के सदस्यों के बीच संघर्ष, ईर्ष्या, क्षोभ, उदासीनता, आदि का चित्रण करना ही इन महिला उपन्यासकारों का विषय रहा ।[1]

आशा लता सिंह के उपन्यासों में सूक्ष्म तथा सुकुमार अनुभूति का प्राधान्य है। आधुनिक युग की अतिवास्तविकता, नग्न वीभत्सता उनकें सौन्दर्य और परिमित बोध को पीड़ित करती है । उनके उपन्यास 'सर्मपण' और कहानी संग्रह 'अन्तर्यामी, में साहित्यिक स्थायित्व है । सब तरह की अतिशयता का विरोध उनकी रचनाओं में मिलता है ।

ज्योतिर्मयी देवी द्वारा रचित 'छाया पथ', 'वैशाखेर निरूद्देश्य मेघ', 'सुधार प्रेम', आदि कई उपन्यास हैं जिसमें 'छायापथ' विशेष रूप से उल्लेख योग्य है । नारी पुरुष का यथार्थ सम्बन्ध निर्णय, पुत्र के प्रति मातृस्नेह की उलाहना, अधिकार खोने के क्षोभ के साथ मुक्दिान करने का उदार आनन्द, वर्तमान दाम्पत्य जीवन में नारी का

---

1. बंगला साहित्य का इतिहास - कल्याणी दास गुप्ता ।

गौरवहीन अस्तित्व आदि इन सभी विषयों की आलोचना में लेखिका की चिन्तनशीलता का परिचय मिलता है । इनकी दूरदृष्टि समाज की आने वाली वास्तविकता की ओर संकेत करती है ।[1]

शरत्चन्द्र के पश्चात् बंगाल के संयुक्त परिवार के रस साहित्य के उपादान में अपनी मर्यादा को खोकर समाज तत्व की आलोचना का क्षेत्र विस्तृत कर दिया है । आज के परिवार के पति-पत्नी अथवा माता-पिता के साथ पुत्र-पुत्री के मानसिक द्वन्द्व के विवरण विश्लेषण के माध्यम से मानव चरित्र की दुरूहता की कौतूहलोद्दीपक कहानी रचित हो रही है । इस समय की महिला उपन्यासकारों में आशापूर्ण देवी, महाश्वेता (भट्टाचार्य) देवी, प्रतिभा बसु, वाणी राय, आदि मुख्य हैं । आशापूर्णा देवी तथा प्रतिभा बसु दोनो बंगाल के जीवन की इस नवीन प्रतिष्ठित पारिवारिकता के चित्रकार रूप में प्रतिनिधि स्वरूप हैं ।

आशापूर्णा देवी ने असंख्य उपन्यासों की रचना की। अधिकांश उपन्यास पारिवारिक जीवन की हृदय शून्यता को प्रकट करते हैं । 'मित्तिर बाड़ी' (1947) 'वलयग्रास', 'अग्नि परीक्षा' (1952) 'नेपथ्य नायिका' (1958), 'योग-वियोग' 'नवजन्म' (1960) आदि उपन्यास पारिवारिक जीवन की विभिन्न समस्याओं की छवि हैं । लेखिका की निरीक्षण करने की क्षमता तथा विचार करने का ऐतिहासिक दृष्टिकोण

---

1. बंगला साहित्य का इतिहास - कल्याणी दास गुप्ता ।

गृहस्थ जीवन में नारी के अस्तित्व का स्वरूप उद्घाटित करने में समर्थ है । वर्तमान युग के पारिवारिक जीवन के परिवर्तन का जो चित्र अंकित किया है उसी में उनकी प्रतिभा प्रकाशति हुई है । 'प्रथम प्रतिश्रुति', 'सुवर्णलता' तथा 'बकुल कथा' उसके साम्प्रतिक काल के उपन्यास हैं ।

प्रतिभा बसु के 'मनेर मयूर' (1952) 'विवाहिता स्त्री' (1954), 'मध्य रातेर तारा' (1958), 'मघेर ऊपर मेघ' (1958), 'समुद्र हृदय' (1957), आदि उपन्यासों ने इन्हें उपन्यासकार के रूप में प्रतिष्ठित किया। प्रथम तीन उपन्यासों में पारिवारिकता के साथ-साथ प्रेम कहानी को भी पिरोया गया है । मनस्तत्व की सूक्ष्माभिव्यक्ति तथा हृदय की समस्या की गंभीरता के कारण इनके उपन्यासों ने ख्यातिलब्धि की है । परवर्ती उपन्यासों में इस तरह के उत्कर्षता की कमी है ।

महाश्वेता भट्टाचार्य ने उपन्यास क्षेत्र में नवागता होने पर भी नारी रचित उपन्यासों की परिधि और विषय वैचित्र्य को आश्चर्यजनक रूप से बढ़ा दिया है । साधारणतया जीवन के प्रति महिला उपन्यासकारों के दृष्टि की जो संकीर्ण सीमावद्धता दिखाई देती है, पारिवारिक जीवन के छोटे-छोटे परिचित घात-प्रतिघात के प्रति नितान्त आग्रह दिखाई देता है, महाश्वेता(भट्टाचार्य) देवी उन प्रसंगों का अतिक्रमण करके नवीन मार्ग पर बड़ी निपुणता के साथ आगे बढ़ रही है ।

महाश्वेता देवी की प्रथम रचना 'नटी' तथा 'मधुरेमधुर' ने आश्चर्यजनक रूप से पाठकों को चमत्कृत कर दिया । इनके उपन्यासों में दलित तथा अवहेलित समाज के प्राण-स्पन्दन की वार्ता मिलती है । इनके 'प्रेमतारा' (1959), 'एतटुकु आशा' (1959), 'तिमिरलगन', (1959), 'तारार आँधार' (1960) आदि उपन्यास उल्लेखनीय हैं ।

वाणीराय के उपन्यासोंमें व्यंग्यात्मक रूप से त्रुटि भ्रांति पर कटाक्षपात किया गया है । 'प्रेम' (1946), 'श्रीलता ओशम्पा' (1948) 'कने देखा आलो' (1957), 'सुन्दरी मंजुलेखा' (1961), आदि उल्लेख योग्य उपन्यास हैं ।

लीला मजुमदार के 'चीने लंठन' (1958), 'श्रीमती' (1958), 'जोनाकि' (1958), आदि उपन्यासों में बंगाल विशेषकर कलकत्ता के नारी शाषित समाज के उपभोग्य चित्रों को उपन्यास क्षेत्र में वर्धित किया है । यह नारी समूह अंग्रेजो की नकल करने में ही लगा रहता था । इनका सामाजिक परिवेश सर्वथा भिन्न था। सभा सोसाइटी में ये स्वतन्त्र विचरण करती थीं तथा अपने ऐश्वर्य एवं मर्यादा के श्रेष्ठत्व के सम्बन्ध में तीक्ष्णभाव से सचेत रहती थीं । लीला मजूमदार के तीनों उपन्यासों में एक ही तरह के सामाजिक परिवेश तथा एक ही तरह के चरित्रों की पुनरावृत्ति हुई हुई । ये शिशु अथवा किशोर साहित्य में कुशल लेखिका के रूप में प्रतिष्ठि है । भाषा सरल है और शब्द प्रयोग से लघु तथा निर्मल हास्य की अवतारणा होती है ।

उपन्यास साहित्य में नवीन परिकल्पना तथा उद्देश्य प्रवर्तन के लिए जिन्होंने प्रयत्न किया है उनमें श्री नरेश चन्द्र सेन गुप्त तथा चारूचन्द्र बन्द्योपाध्याय का नाम उल्लेखनीय है । नरेश चन्द्र ने अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा के प्रयोग से विशेष उद्देश्य को सफल बनाने का प्रयास किया है । अपने प्राथमिक उपन्यासों में उन्होंने यौन अपराध तत्व विश्लेषण को ही मुख्य उद्देश्य बनाया । अवैध आचरण तथा दैहिक क्षुधा के तथ्यों को खोज निकालने में लेखक जितना अधिक खो गया (व्यस्त हो गया) कि चरित्र सृष्टि उसके समक्ष गौण हो गयी । उद्देश्यात्मक आदर्श से मुक्त उपन्यास समूह सफल उपन्यास के द्योतक होते हैं । 'लुप्त शिखा' उसका अच्छा निदर्शन है । इनके उपन्यास हैं - 'अभयेर बिये', 'तारपर' '(1931) 'सर्वहारा' (1929), 'अग्नि संस्कार', 'विपर्यय' आदि।

उल्लिखित उपन्यासों में'अग्नि संस्कार' तथा 'विपर्यय' को श्रेष्ठ कहा जा सकता है क्योंकि कल्पना की दीनता तथा भाव गम्भीरता की कमी को लेखक ने अंशतः दूर किया है । यदि उनके चिन्तनशील विश्लेषण निपुणता के साथ अनुरूप भाव गंभीरता तथा रसानुभूति का समन्वय होता तो नरेश चन्द्र नूतन औपन्यासिक क्षेत्र को प्रतिस्थापित करने में सफल हो सकते थे ।

अति आधुनिक उपन्यासकारों के मध्य बुद्धदेव वसु तथा अचिन्त्य कुमार सेनगुप्त सर्वप्रथम उल्लेखनीय हैं । ये दोनों अपनी विशिष्ट शैली के लिए प्रसिद्ध है।

इन्होने 20वीं शताब्दी के तीसरे अथवा चौथे दशक में रवीन्द्र नाथ के प्रभाव से एक स्वतन्त्र धारा का प्रवर्तन किया ।

इन्होंने प्रचलित शैली को न अपनाकर अपने उपन्यासों को एक नवीन स्वरूप दिया और स्वतंत्र शैली के प्र्वतक के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त की । इनके उपन्यासों की परिकल्पना नवीनता तथा रचना शैली की मौलिकता इन्हे पूर्ववर्ती उपन्यासकारों के प्रभाव से मुक्त रखती है ।

बंकितचन्द्र से शरत् चन्द्र तक उपन्यास साहित्य के क्रम विकास ने जिस मुख्य धारा को प्रवाहित किया . इनकी रचनाएं उस स्रोत से विच्छिन्न होकर एक नये शाखा मार्ग पर प्रवाहित हुई । बुद्धदेव वसु के प्रारम्भिक उपन्यासों की सूची 'अकर्मण्य' (1933), 'रैडोडेनड्रन गुच्छ' (1932), 'सानन्दा' (1933), 'अ दिन फुटले कमल' (1933) 'असूर्यम्‌ पश्या', (1933) 'एकदा तुमि प्रिये' (1934) तथा बासर घर (1935) से उनकी क्रम परिणति की धारा का अनुमान लगाया जा सकता है ।

द्वितीय स्तर के उपन्यासों - 'तिथिडोर', (1949), 'निर्जन स्वाक्षर' (1958), 'शेषपाण्ड्रलिपि' (1956), 'दुई ढेउ एक नदी' (1958) 'सोन पांशु' (1959), 'हृदयेर जागरण', '(1961) में नवीन जीवन समीक्षा रीति का परिचय मिलता है ।

इन्होंने काव्यात्मकता को छोड़कर यथार्थ वास्तविकता को ग्रहण किया है ।

अचिन्त्य कुमार सेन गुप्त के परिणति की धारा 'बेदे' 'उर्णनाभ' (1933) 'आसमुद्र', उपन्यासों में प्रवाहित हुई है । 'बेदे' में इन्होंने जीवन के कुत्सित, वीभत्स दारिद्र्य क्लिष्ट तथा पाप के कीचड़युक्त मार्ग के प्रति एक तरह की अस्वस्थ प्रवणता दिखाई है । 'आकस्मिक (1930) 'प्रच्छदपट' (1934), 'रूपसी रात्रि' (1958) आदि उनकी उल्लेख योग्य रचनाएं हैं । अचिन्त्य कुमार का 'उर्णनाभ' उपन्यास मौलिक दृष्टिकोण पर आधारित होने के कारण इसमें काव्य और जीवन के सम्बन्ध में एक गम्भीर चिन्तनशील मतामत व्यक्त होता है । यही उनका विशेष कृतित्व है । 'आसमुद्र' उपन्यास में अतीन्द्रिय रहस्यमयता की खोज है ।

भाषा,वर्णनशैली तथा जीवन समालोचना में बुद्धदेव तथा अचिन्ता कुमार में आश्चर्यजनक साम्य है । 'विसर्पिल' (1934) नामक उपन्यास तीन उपन्यासकारों ने मिलकर लिखा । कल्लोल युग के तीन साहित्यकार अचिन्त्य कुमार सेन गुप्त, बुद्धदेव वसु तथा प्रेमेन्द्र मित्र इन तीनों के सत्प्रयास में एक अपूर्व समन्वय है । इसकी वास्तविकता तथा शुष्क संयत व्यंग्य की प्रचुरता प्रेमेन्द्र मित्र का अवदान है । बुद्धदेव बसु का अचिन्त्य कुमार सेन गुप्त के साथ प्रेमेन्द्र मित्र की आलोचना स्वाभाविक है । प्रेमेन्द्र की प्रणाली सब प्रकार से भिन्न पद्धति की हैं । उनके उपन्यास 'कुयास' में उनकी प्रतिमा की संभावना की खोज का मार्ग मिलता है ।

प्रबोध कुमार सान्याल के 'महाप्रस्थानेर पथे' उपन्यास मुख्यतः भ्रमण कहानी है । उपन्यास की जनप्रियता के युग में साहित्यकार प्रबोध कुमार ने एक विशिष्ट क्षेत्र तथा दृष्टिकोण का परिचय दिया है । कुछ उपन्यासकार जीवनके सम्बन्ध में एक विशिष्ट सिद्धान्त की रचना कर लेते हैं और उसी से समाज विन्यास के एक अभूतपूर्व रूप कल्पना की प्रेरणा से ये मानव जीवन की पर्यालोचना करना चाहते है। ये जीवन को देखते तो हैं पर कुद तिरछी दृष्टि से अर्थात् इन उपन्यासकारों का दृष्किोण परिचित तथा प्रचलित न होकर थोड़ा भिन्न होता है ।[1]

अपने उपन्यास 'प्रिय बान्धवी' तथा 'अग्रगामी' में प्रबोध कुमार नारी - पुरुष में एक नूतन सम्पर्क की परिकल्पनाकी घोषणा करना चाहते हैं । 'तुच्छ' तथा 'बन हंसी' उपन्यासों में लेखक विचित्र जीवन अनुभवों का उल्लेख है ।

उपन्यास तथा कहानी में सांकेतिकता तथा अद्भुत समस्या के आरोपण से माणिक वन्द्योपाध्याय ने अपनी रचना में नवीनता ला दी है । 'दिवा रात्रिरकाव्य' तथा पुतुल नाचेर इतिकथा' (1936) उपन्यास में अवास्तविकता के साथ परिपक्व चिन्तन शीलता तथा विश्लेषण की निपुणता का परिचय मिलता है । कहा जाता है कि इनके चरित्र समूह परिपूर्ण मानव नहीं हैं । बल्कि मनुष्य का एक-एक टुकड़ा मानसिक अंश है । विश्लेषण के बीच-बीच में चरित्रों के ऊपर एक-एक सांकेतिक संज्ञा भी आरोपित

---

1. बंगसाहित्ये उपन्यासेर धारा - श्रीकुमार बन्द्योपाध्याय ।

हुई है । 'दिनेर कविता' 'पद्यमानदीरमाँझि' 'जननी', 'सहरतली' 'चतुस्कोण', 'प्रतिबिम्ब' आदि उनके उल्लेखनीय उपन्यास हैं ।[1] इनके अनेक उपन्यासों में फ्रायड के अनुमान सिद्धान्त की छाया मिलती है ।

प्रधान में प्रधान युग में रोमांस के प्रति अनुराग कुछ ही लेखकों के बीच सीमाबद्ध रहता है । ताराशंकर बन्द्योपाध्याय तथा विभूतिभूषण बन्द्योपाध्याय दोनों के उपन्यासों में रोमांस प्रमुख स्थान ग्रहण किये हुए है । बंकिम के पश्चात ऐतिहासिक रोमांस का सिंह द्वार अवरूद्ध हो गया था । रवीन्द्र नाथ ने अपने उपन्यासों में जिस रोमांस का प्रवर्तन किया है वे सब प्रधान रूप से काव्य धर्मी हैं तथा प्रकृति के रहस्यों का अनुभव कराते हैं । आधुनिक युग में लेखकों ने रवीन्द्रनाथ द्वारा प्रवर्तित मार्ग का अनुसरण किया है ।

ताराशंकर के उपन्यासों में बनावटी पन नहीं है । भाव की पूर्णता तथा भाषा का वैभव है । 'नीलकण्ठ' (1933) 'राई कमल' (1934), 'नीलाजन (1957), 'नागरि'(1962) 'नील आगुन'(1964) 'धात्रीदेवता'(1939), 'कालिन्दी (1940), 'गणदेवता' (1942), 'प्रचग्राम' (1944), आदि अनेक उपन्यासों की रचना इनके द्वारा हुई है । जिसमें 'गणदेवता' पर इन्हें 'ज्ञानपीठ' पुरस्कार दिया गया है । 'मन्वन्तर' (1944) इनकी परवर्ती रचना है । इसमें महायुद्ध के आतंक से विमूढ़

---

1. बंगसाहित्ये उपन्यासेर धारा - श्रीकुमार बन्द्योपाध्याय ।

कलकत्ता की विभीषिका का वर्णन किया गया है । आरोग्य-निकेतन इनका उत्कृष्ट उपन्यास है तथा इनका 'राधा', उपन्यास प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास माना जाता है ।

कल्पनाधर्मी उपन्यास रचयिताओं में विभूतिभूषण बन्द्योपाध्याय प्रमुख स्थान रखते हैं । 'पथेर पांचाली' (1929), 'अपराजित' (1982) विभूति भूषण के श्रेष्ठ ग्रन्थ हैं । दृष्टि प्रदीप (1935) 'आख्यक' (1939), 'आदर्श हिन्दू होटल', (1940), 'विपिनेर संसार' (1941), आदि विभूतिभूषण की उल्लेख योग्य रचनाएं हैं।

नारायण गंगोपाध्याय की प्रथम रचना 'उपनिवेश' (1944) है। यह तीन खण्डों में है । इसमें उपन्यास के नवीन जीवन दृष्टि की अभिव्यक्ति हुई है । बंगाल जीवन के प्रखर सीमान्त प्रदेश में आधुनिक युग के जिन उपन्यासकारों में तीव्र कौतूहल तथा ऐतिहासिक अनुसन्धान की प्रवृत्ति जागृत की है उनमें नारायण गंगोपाध्याय श्रेष्ठ हैं।

'सम्राट ओ श्रेष्ठि' (1945), 'मन्दमुखर' (1946) 'स्वर्णसीता' (1947), 'लालमाटी' (1952) आदि उपन्यासों ने उन्हें प्रतिष्ठा के मजबूत आसन पर विराजमान किया । लगभग सभी उपन्यासों में उनकी इतिहास चेतना तथा राजनैतिक बोध की प्रखरता में उनकी औपन्यासिक जीवन दृष्टि को प्रभावित किया है । इनके उपन्यासों में सहज जीवन बोध की स्फूर्ति विकसित हुई है ।

मनोज बसु की रचनाओं में 'वन मरमर' तथा 'नरबाँध' (1933) कहानी संग्रह में उनके कृतित्व का निदर्शन मिलता है । अति प्राकृत्य की सूक्ष्म अनुभूति तथा अतीन्द्रिय जगत में सिहरन जगाने की असाधारण क्षमता - इसी में उनकी विशेशता है।

मनोजबसु ने परवर्ती काल में अनेक उपन्यासों की रचना की उनमें 'जलजंगल' (1957), 'वृष्टि-वृष्टि' (1957) 'आमार फाँसी हल' (1959) 'रक्तेर बदले रक्त' (1959) 'मानुष गड़ार कारीगर' (1959) 'रूपवती' (1950), तथा 'वनकेटे बसत' (1961) उल्लेखनीय कृतियाँ है ।

प्रमथनाथ विशी की रचनाओं में प्रथम श्रेणी के उपन्यासकारों के अनेक उपादान वर्तमान हैं । प्रकृति वर्णन का अत्यन्त सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति और रहस्यबोध, उसका वाह्य रूप और आन्तरिक आवदेन, सुकुमार कवित्वपूर्ण उपलब्धि, भाषा का इन्दजाल, अर्थगौरवपूर्ण संक्षिप्त रेखाविन्यास के द्वारा विशाल पृष्ठभूमि का मर्मोद्घाटन स्थान-स्थान पर मन्तव्यों की गम्भीरता और हृदयवृत्ति विश्लेषण की कुशलता - ये समस्त गुण ही औपन्यासिक उत्कर्ष की नींव स्थली हैं । किन्तु उनके तीन उपन्यास पद्मा (1953), 'जोड़ादीघिर चौधरी परिवार' (1938) तथा 'कोपवती' (1941) सम्भावना तथा प्रत्याशा को चरितार्थ न कर सके । दीर्घकाल परीक्षा के बाद 'केरी साहेबेर मुन्शी' (1958) उपन्यास में प्रमथ नाथ की औपन्यासिक सम्भावना एक नूतन दिगन्त उन्मोचित करती है ।

बंगला साहित्य के क्षेत्र में कहानी का निरन्तर अग्रगति विकास [illegible] है यह बात दृढ़ता से कही जा सकती है । सुबोध घोष के कहानी संग्रह ने कहानी कला को नवीन अभिव्यक्ति प्रदान की । 'तिलांजलि' (1944) इनका प्रथम पूर्णांगं उपन्यास है। 'गंगोत्री', 'त्रियामा' 'श्रेयसी' (1954), 'शतक्रिया' (1928) आदि उनके उल्लेखनीय उपन्यास हैं ।

20वीं शताब्दी के चौथे तथा पांचवे दशक में शरदिन्दु बन्द्योपाध्याय ने कहानीकार तथा उपन्यास रचयिता के रूप में लोकप्रियता प्राप्त की। उनके उपन्यास 'चुयाचन्दन' (1936) 'विषेरधोंया' (1945) 'छाया पथिक' (1950) 'कानू कहे राइ' (1955) 'जातिस्मर' (1957) आदि में इसी तरह के गम्भीर जीवन का निदर्शन प्राप्त नही होता है । 'तुमिसन्धयार मेघ' इनका प्रतिनिधित्व मूलक ऐतिहासिक उपन्यास है।

अब उपन्यास रचना के क्षेत्र में अभिनत्व का मोह संचारित होता है । आने वाली नवीन प्रतिभाओं की प्रतीक्षा रहती है । इस युग सन्धि क्षण के प्रयास का परिचय अनेक लेखकों में मिलता है । शैलजा नन्द मुखोपाध्याय, सजनी कान्त दास, प्रफुल्ल कुमार सरकार, सुबोध बसु, संचय भट्टाचार्य, गोपाल हालदार, आदि इसी तरह के युग संधि के उपन्यासकार हैं ।

रचना प्रचुरता की द्रृष्टि से शैलजा नन्द उल्लेख योग्य हैं । प्रफुल्ल कुमार सरकार के 'विद्युत लेखा' तथा 'लोकारण्य उद्‌देश्यमूलक उपन्यास हैं । इन्होंने 'आनन्द

बाजार' पत्रिका की प्रतिष्ठा की । सजनी कान्तदास ने 'शनिवारेर चिठि' पत्रिका का सम्पादनकिया । 'अजय' उपन्यास भाषा तथा भाव की दृष्टि से कवित्व के साथ मनस्तत्व के शोभन सामंजस्य के लिए प्रशंसित है । परन्तु इसमें ऐक्यसूत्र की दृढ़ता न होने से शिथिलता है । सुबोध बसु के उपन्यासों में 'नटी' (1937), 'स्वर्ग' (1938) तथा 'वन्दिनी' (1937) का उल्लेख किया जा सकता है ।

'एकदा' गोपाल हालदार का श्रेष्ठ उपन्यास है । अनेक उपन्यासकारों में अपनी प्रतिभा के अनुसार संयोजन करके आलोच्य युग में उपन्यास साहित्य की धारा को अक्षुण रखा । इसके पश्चात् उपन्यास के क्षेत्र में महान परिवर्तन आया । नये परिप्रेक्ष्य में मानव जीवनधारा का नया रूपायण।

साम्प्रतिक काल में उपन्यास का विकेन्द्रीकृत रूप प्रकट हो रहा है । इस युग में मानव जीवन के सम्बन्ध में निरपेक्ष सत्य अनुसंधान की प्रेरणा का अतिक्रम्रण करके एतद् विषयक नाना प्रकार के नये मतवाद इस प्रवृत्ति समूह की उद्भट व्याख्या तथा द्रुत परिवर्तनशील समाजिक प्रतिवेश में सम्भावित समाजिक विन्यास का काल्पनिक रूपान्तर कहानी तथा उपन्यास में मुख्य हो रहा है । इस परिवेश में श्रृंखलित मानवसत्ता के सम्बन्ध में लेखक का कौतूहल क्रमशः गौण हो रहा है । आज का मानव जीवन समर से पलायन कर रहा है । उसका स्वयं को छिपाने और आत्मरक्षा तथा पलायन की त्रस्तता का मूढ़ प्रयास और बार-बार प्रकम्पित भूमि पर स्थिर खड़े हो सकने का व्यर्थ

प्रयास ही आधुनिक उपन्यासों का मुख्य विषय है ।

इस नव रूपायण के प्रथम यज्ञकर्ता श्री बलाईचाँद मुखोपाध्याय (1899-1971) उर्फ बनफूल हैं । इन्होंने लगभग सौ, गन्थों की रचना की । 'स्थावर', 'जंगम', 'मन्त्रमुग्ध', 'हाटे बाजारे', 'किछुक्षण', बिन्दुविसर्ग','द्वैरथ' 'भीमपलासी', 'श्री मधुसूदन' 'विद्यासागर' 'निर्मोक-केंचुल' आदि उनकी उल्लेखनीय रचनाएं हैं।

'तृणखण्ड' (1936), 'वैतरणी तीरे' (1937), 'किछुक्षण' (1938) तथा 'से ओ आमि' (1944) इनके प्रथम पर्व के उपन्यास है । परवर्ती पर्व के उपन्यासों में 'द्वैरथ' 'मृगया' तथा 'निर्मोक', उल्लेख योग्य हैं ।

तृतीय पर्व के उपन्यासों में 'मानदण्ड' (1949) 'नवदिगन्त' (1950) कष्टिपाथर' (1944) पंचपर्व (1955) तथा 'लक्ष्मीर आगमन' सम्मिलित है । इनमें घटना तथा मनस्तत्व की प्रमुखता है । अपने उपन्यासों में इन्होंने उदार दृष्टि का विस्तार करके जीवन की वक्र गति को लक्ष्य किया है । किसी तरह की हृदय जटिलता के बन्धन ने उनकी रचना को निबद्ध नहीं किया है ।

हिन्दी के प्रमुख उपन्यास

सूरज का सातवाँ घोड़ा, गुनाहों का देवता (धर्मवीर भारती), मैला आँचल, परती:परिकथा, कितने चौराहे (फणीश्वर नाथ रेणु) अन्धेरे बन्द कमरे, न आने वाला कल, अन्तराल (मोहन राकेश), प्रेत बोलते हैं, उखड़े हुए लोग, शह और मात, अनदेखे अनजान पुल, कुलटा (राजेन्द्र यादव), आपका बंटी, महाभोज, (मन्नू भण्डारी), बयाँ का घोंसला और साँप, मन वृन्दावन, (लक्ष्मीनारायण लाल), वे दिन (निर्मल वर्मा), एक सड़क सत्तावन गलियाँ, काली आँधी, आगामी अतीत (कमलेश्वर), राग दरबारी (श्रीलाल शुक्ल), अलग-अलग वैतरणी (शिवप्रसाद सिंह), तमस (भीष्म साहनी), रूकोगी नहीं ---- राधिका (उषाप्रियंवदा), डार से बिछुड़ी, मित्रो मरजानी (कृष्णा सोबती) आदि हिन्दी के प्रमुख उपन्यास हैं।

गुनाहों का देवता

'गुनाहों का देवता' (1949) धर्मवीर भारती का प्रथम उपन्यास है। यह एक प्रेम कथा है । उपन्यास का नायक नायिका का विवाह अन्य व्यक्ति से करवा देता है । नायक आदर्श चरित्र वाला है । वह प्रेम को एक उच्च स्तर पर रखना चाहता है । लेकिन नायिका सुधा का विवाह कराकर वह अन्दर कहीं टूट जाता है और अन्तर्मन की यही टूटन सुधा से मिलने पर उसे विपरीत आचरण करने पर विवश कर देती है । जो सुधा उसकी सब कुछ थी उसके चले जाने पर वह व्यथित हो उठता है । उर उसकी वेदना जान लेने के बाद वह उससे कहता है कि मैं तुम्हारे सहारे ही अपने

व्यक्तित्व को ऊँचा रख सकता था । सुधा उसे विश्वास दिलाती है कि मैं तुम्हारे साथ हूँ, तुमसे अलग ही कब थी । पर एक दिन डॉ0 शुक्ला (सुधा के पिता) का तार पाकर वह दिल्ली पहुँचता है और देखता है कि उसकी प्रेरणा जीवन की अन्तिम साँसे ले रही है ।

भारती का यह उपन्यास प्रेम के उदात्त रूप को चित्रित करता है। सभी पात्रों के चरित्र का सहज विकास हुआ है । उपन्यास की कथन शैली रोचक और प्रभावमयी है । भाषा में रोचकता और रमणीयता है । यह प्रेमकथा शुद्ध भावभूमि पर टिकी है । इसकी अधिकांश कथा संवादों के द्वारा अभिव्यंजित हुई है । इस उपन्यास में सीमित अभिरूचि, सीमित दृष्टिकोण, सीमित स्थान और सीमित समय का अकंन हुआ है तथा नाटकीय शिल्पविधि का प्रयोग किया गया है । इस शिल्प विधि में 'गुनाहों का देवता' का योगदान अविस्मरणीय है । आधुनिक युग चेतना के बहुस्तरीय जटिल यथार्थ को प्रेम और वासना के परिप्रेक्ष्य में नाटकीय प्रभाव के साथ संप्रेषित करने में भारती सिद्धहस्त हैं ।

सूरज का सातवाँ घोड़ा

हिन्दी साहित्य में विशिष्ट कृतिकारों में अपना स्थान बनाये रखने वाले धर्मवीर भारती का 'सूरज का सातवाँ धोड़ा' एक लघु उपन्यास है । हिन्दी उपन्यास क्षेत्र में यह ऐसे बिन्दु पर स्थित है जिसे किसी भीकोण से देखने पर वह अपने स्वरूप को विशिष्ट बनाये हुए है । विषय तथा शिल्प की सामयिकता और नवीनता ने इसका

स्वरूप रोचक तथा मोहक बनाया है । 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' कथात्मक उपन्यास है। एक ही व्यक्ति माणिक मुल्ला द्वारा कहीं गयी छः स्वतन्त्र सी लगने वाली कहानियों में बड़े कौशल से सम्बन्ध सूत्र स्थापित करके उपन्यास का रूप दे दिया गया है । कहानी कहने की रीति पुरानी किस्सा गोई वाली है जिसमें कहानी में से कहानी निकलती है । उपन्यासकार ने बड़े कौशल से अपने कथ्य के अनुरूप इसे नया रूप दिया है । जिससे इसमें अभिनव आकर्षण आ गया है । इस कथा के मूल में है प्रेम सम्बन्ध । उन प्रेम सम्बन्धों के माध्यम से ही लेखक ने निम्न मध्य वर्ग के अप्रीतिकर, टूटे हुए विश्रंखलित जीवन का सही चित्र उपस्थित किया है ।

माणिक मुल्ला शहर के प्रसिद्ध व्यक्ति हैं। उनके घर रोज मित्रों की महफिल जमती है और माणिक सात दोपहरों में अपने मित्रों को सात कहानियाँ सुनाते हैं। ये माणिक स्वयं उन कहानियों के पात्र भी हैं जिन्होंने यह सब कुछ भोगा है । परन्तु वे ये सभी कहानियाँ इतने तटस्थ भाव से सुनाते हैं कि कहानियों के पात्र माणिक और कथावक्ता माणिक दो अलग व्यक्ति लगते हैं । लेखक की सबसे बड़ी सफलता इसी में है कि कथा-वक्ता माणिक कहीं भी पात्र माणिक के सुख दुःख से अनुभूति के धरातल पर विचलित नहीं होते और अनासक्त भाव से एक के बाद एक कहानी ही नहीं सुनाते बल्कि कि कहानी के अन्त में हास्य व्यंग्यपूर्ण मनोरंजक निस्कर्ष भी देते चलते हैं । "सूरज का सातवाँ घोड़ा एक कहानी में अनेक कहानियाँ नहीं : अनेक कहानियों में एक कहानी

है।"[1]

'सूरज का सातवाँ घोड़ा' प्रतीकात्मक शिल्पविधि की रचना है । उपन्यास में विचारों की बहुलता है । कहानी पर अधिकार रखना भारतीय विशेषता है । पुराने ढंग में शिल्प के माध्यम से मौलिकता पैदा करना ही लेखक की मौलिकता है । धर्मवीर भारती का अपनी कहानियों पर पूरा अधिकार रहता है । उनकी जैसी इच्छा होती है वे कहानियों को चलाते हैं । उपन्यास में विविधता लच्छित होती है । इस उपन्यास की प्रायोगिक शिल्प नवीनता अपने आकर्षण के साथ विषय को भी ऊँचा उठाने में समर्थ हुई है। शैल्पिक दृष्टि से यह एक अनोखा उपन्यास है।

मैला आँचल

फणीश्वरनाथ रेणु को अपने प्रथम उपन्यास 'मैला आँचल' से जो प्रसिद्धि रातों रात मिली वह अन्य उपन्यासकार एक ही उपन्यास से नहीं प्राप्त कर सका । इन्होंने गतिशील स्वातन्त्रयोत्तर समाज का अपने उपन्यासों में सजीव चित्रण किया है । इनके उपन्यास का कथा क्षेत्र सीमित है। सीमित कथा क्षेत्र आंचलिक उपन्यासों की विशिष्टता है । कथाधार विहार के पूर्णिया जिले का मेरीगंज गाँव है । जहाँ अनेक जातियों, वर्गो

---

1. 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' - भूमिका - अज्ञेय

के लोग रहते है इनमें आपसी एकता नहीं है ।

मेरीगंज गांव में मलेरिया सेन्टर खुलता है जहाँ डॉ0 प्रशान्त डाक्टर नियुक्त होकर आता है । वहाँ के बड़े जमींदार विश्वनाथ प्रसाद की रूग्ण बेटी कमला का इलाज करते-करते उन दोनो में आपस में प्रेम हो जाता है फलस्वरूप कमला गर्भवती हो जाती है । उसके पिता इस घटना को सहज रूप में नहीं ले पाते पर एक मात्र सन्तान को कुछ कह भी नहीं पाते। गाँव के महन्त का सम्बन्ध अपनी दासी से रहता है। यादव टोली का बालदेव सुराजो लक्ष्मी कोठारी के साथ रहने लगता है । डॉ0 प्रशान्त उसी गाँव में रहकर लोगों की सेवा का व्रत लेता है । प्रशान्त की सहपाठिन ममता भी गाँव के प्रति मोह रखती है ।

इस प्रकार अनेक कथाओं में 'मैला आँचल' का कथानक बिखरा है । सभी कथाओं को पर्याप्त विस्तार मिला है । पूर्वाद्ध सुसंगठित है। पर मध्य भाग काफी शिथिल है । मैला आँचल के पात्रों में विविधता है । उपन्यास में लोक संस्कृति का व्यापक चित्रण हुआ है । सामाजिक स्थिति की सूक्ष्म से सूक्ष्म सतहें आलोकित हो उठी हैं । पूर्णिया अंचल की राजनैतिक चेतना तथा स्थिति को लेखक ने गहराई से देखा तथा परखा है और उसे सुन्दर अभिव्यक्ति दी है । मेरीगंज की आर्थिक स्थिति का भी विस्तृत वर्णन हुआ है तथा धार्मिक विश्वासों एवं अन्य विश्वासों का विशद् चित्रण है।

मैला आँचल की शैली में नयापन है । रेणु की शैली चित्रात्मक है। साहित्य जगत में किसी भी कृति की आलोचना साधरण बात है और किसी विशिष्ट कृति की तो उससे भी साधारण । जब कोई व्यक्ति ख्याति प्राप्त करता है तो समालोचकों का एक समूह बन जाता है । नेमिचन्द्र जैन 'मैला आँचल' को असफल कृति मानते हैं। उनके अनुसार मैला आँचल के कथा प्रवाह में सूत्र का अभाव है । इसका कोई भी पात्र ऐसा नहीं है जो क्लासिक हो । उपन्यास में जितना कवित्व है उतनी प्रौढ़ता और परिपक्वता नही है ।

डॉ0 सुरेश सिन्हा 'मैला आँचल' को एक अत्यन्त सफल कृति स्वीकारते हैं। इनके अनुसार उपन्यास का मूल स्वर आशावादी है । रेणु ने परिवर्तनशील सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण किया है । इनका शिल्प भी उपन्यास में यथार्थवादी है ।

डॉ0 त्रिभुवन सिंह के अनुसार - 'जहाँ तक अभिव्यक्ति और सूक्ष्मातिसूक्ष्म वर्णन की ताजगी का सम्बन्ध है 'मैला आँचल' के साथ हिन्दी के कम उपन्यासों का ही नाम लिया जा सकता है ।'[1]

---

1. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद - पृष्ठ 447.

नेमिचन्द्र जैन इस उपन्यास के कुछ विशिष्ट गुणों को इंगित करते हैं - भारतीय देहात के मर्म का इतना सरस और भाव प्रवण चित्रण हिन्दी में सम्भव पहले कभी नहीं हुआ । "उस अपूर्व आत्मीयता में, जिसके साथ लेखक ने गाँव के जीवन की समस्त कटुता और संगीत को, सरलता और विकृति को, स्वार्थपरता और सामाजिक एकसूत्रता को, अज्ञान और मौलिक नैतिक संस्कार को संजोया है।"[1]

'मैला आँचल' एक विशिष्ट उपन्यास है। विशिष्टता भी दो तरह की होती है । एक तो यह कि जो कुछ कहा गया है और जिस तरह कहा गया है लेखक उन सब से अलग एक नयी जमीन उघाड़ता है और कहने के ढंग में भी नई भंगिमा लाता है । यह जरूरी नहीं कि यह यथार्थ के बहुत बुनियादी या कि गहरे स्तर को उभारे । ऐसी कृतियाँ सामायिक प्रासंगिकता से जितनी जुड़ी होती हैं उतनी मानव जगत की अन्तर्रचना से नहीं। विशिष्टता का दूसरा रूप उन कृतियों में दिखाई पड़ता है जो कोई नई जमीन नहीं तोड़ती बल्कि परिचित जमीन की ही एक आत्यंतिक गहराई में धंसकर उसके रस को ऊपर उभार लाती है जिसे उस क्षेत्र की अन्य कृतियाँ नहीं उभार सकी थीं । यानी इनका वैशिष्ट्य मानवीय सौन्दर्य यातना, संगतियों, विसंगतियों के सूक्ष्म कोणों या आंतरिक प्रभाव को गहराई से छू लेने में होता है । कुछ ही कृतियाँ ऐसी होती हैं जो वैशिष्ट्य की दोनों छवियों को समेट कर अपने-अपने युगों की उपलब्धि बन जाती हैं।

---

1. विवेक के रंग, पृष्ठ 210.

मैला आँचल इसी प्रकार की कृति है।[1]

परती:परकथा रेणु का दूसरा महत्वपूर्ण उपन्यास है । इस उपन्यास की कथायात्रा बिहार अचंल के ही एक गाँव परानपुर तक की है । इस उपन्यास में रेणु 'मैला आँचल' से भी अधिक ग्राम्य जीवन में गहरे उतरे हैं। 'परती:परिकथा' के केन्द्र में परानपुर गाँव की समग्रता एवं मुख्यतः भूमि की समस्या है । परानपुर गाँव मुकदमेबाजी, सामाजिक तनावों, आदि में बुरी तरह जकड़ गया है। इन सब में गाँव किसी तरह नष्ट हो रहा है उसका यथार्थ चित्र है ।

उपन्यास में न तो एक प्रधानकथा है और न ही कोई प्रधान नायक। किन्तु जितेन्द्र और ताजमनी की कहानी इतनी स्पष्टता एवं रमणीयता से विभिन्न प्रसंगों में ऊभरी है कि ये ही दोनों नायक नायिका लगते हैं । नगर के राजनीतिक कुचक्रों और छलकपट में उसका हृदय छिन्न-भिन्न कर दिया है । वह थका हुआ गाँव वापस आता है । किन्तु यहाँ तो संघर्ष और स्वार्थ और भी अधिक है । वह मनुष्य के साथ मनुष्य के प्राण का योगसूत्र स्थापित करने के लिए सचेष्ट हो उठता है । ताजमनी और इरा से उसे प्रेरणा और शक्ति मिलती है ।

'परती : परिकथा' में रेणु समस्त भारत के मूल स्वरूप की खोज करना

---

1. आधुनिक हिन्दी उपन्यास, सम्पादक नरेन्द्र मोहन पृ0 62-

चाहते हैं और सामायिक सन्दर्भ में उत्पन्न हुई नानाविध उलझे सूत्रों को समग्रता में पकड़ने का प्रयत्न करते हैं । रेणु ने अपने सभी पात्रों के साथ पूरा-पूरा न्याय किया है । परन्तु 'मैला आँचल' में जो शिल्प सम्बन्धी कमजोरी है वह इसमें भी आ गयी है । वर्णन शैली में विखराव है । लेकिन कुछ कमियों के बावजूद यह एक स्वतन्त्र और मौलिक उपन्यास है जो स्वयं समीक्षात्मक मानदण्डों और औपन्यासिक तत्वों में एक नवीन परिवर्तन लाता है ।

'कितने चौराहे' रेणु का आखिरी उपन्यास है । इस उपन्यास पर आलोचकों द्वारा सबसे कम विचार किया गया है किन्तु रेणु ने स्कूली बच्चों की हिम्मत, निर्भयता और सहज निर्णय को पहली बार शब्दबद्ध किया है । इस कारण यह उपन्यास अधिक महत्वपूर्ण, जीवन्त तथा मनोवैज्ञानिक बन गया है । इस उपन्यास में सन् 1933-34 से लेकर 1965 तक की भारतीय राजनीति को पृष्ठभूमि में रखा गया है ।

मनमोहन नाम का एक छोटा सा बच्चा सिमबरनी से सातवीं की परीक्षा उत्तीर्ण करके अररिया कोर्ट में आगे की पढ़ाई के लिए आता है । माता-पिता की इच्छा है कि वह पढ़-लिखकर वकील बने । शहर तथा वहाँ के लड़के उनके पहनावे, बोलचाल आदि के प्रति उसके मन में जिज्ञासा के साथ शंका और भय भी है । वहाँ मनमोहन का परिचय मैट्रिक में पढ़ने वाले प्रियोदा से होता है जो राजनीति के प्रति

सजग है, गाँधी जी का भक्त है और राष्ट्रीयता की शपथ ले चुका है । उसके सम्पर्क से मनमोहन में परिवर्तन होने लगता है । विभिन्न परिस्थितियों से दो-चार होते हुए मनमोहन धीरे-धीरे अपनी मंजिल पर आगे बढ़ने लगता है । बीच में कितने ही चौराहे आते हैं । उसके कई साथी चौराहो को ही मंजिल समझकर रूक जाते हैं किन्तु वह किसी चौराहे पर न रूकते हुए अपमी मंजिल पर पहुँच जाता है । पर उसकी मंजिल कौन सी थी लेखक इसे स्पष्ट नहीं कर पाये हैं । मनमोहन पश्चाताप की अग्नि में जलता रहता है । उसके सभी साथी एक के बाद एक शहीद होते गये पर वह शायद नीलू के आकर्षण के कारण बचा रहा और इसीलिए वह अपनी जिन्दगी परिवार के लिए न देते हुए राष्ट्र की भावी पीढ़ियों के निर्माण के लिए देता है ।

इस उपन्यास की कथावस्तु अत्यन्त संक्षिप्त है। सम्पूर्णः उपन्यास का केन्द्र मनमोहन ही है । वास्तव में यह उपन्यास मनमोहन की स्मरण गाथा ही है । कथानक के विकास में सुसूत्रता का अभाव है । घटनाएँ कथा विकास के लिए नहीं बल्कि चरित्र चित्रण के लिए आती हैं । इसकी कथावस्तु समसामयिक जीवन पर आधारित है । शैली तरल और सांकेतिकता लिए हुए है। अन्तिम प्रकरण में पूर्वदीप्ति पद्धति का प्रयोग है। इसे मिश्रित शैली कहना अधिक उचित है। कस्बाई जीवन की सारी विशेषताओं की यथार्थ अभिव्यक्ति इस उपन्यास में हुई है ।

अन्धेरे बन्द कमरे

'अन्धेरे बन्द कमरे' मोहन राकेश का दिल्ली के अभिजात जीवन पर

आधरित उपन्यास है । मोहन राकेश ने दिल्ली के परिवेश में मनुष्य के विराग (एलियनेशन) और अजनवी पन को विशेष रूप से विवाहित जीवन की परिधि में प्रस्तुत किया है । महानगर की चमक-दमक और भीड़ में मनुष्य कितना असहाय और अकेला है, मानवीय सम्बन्ध कितने तनावपूर्ण और अर्थहीन है? विवांह का असली रूप क्या है? लेखक की दृष्टि इन तक पहुँच तो गयी लेकिन इनको चीरकर जीवन के यथार्थ की गहनता को नहीं पा सकी । उपन्यास का नायक मधुसूदन धीरे-धीरे परिवेश से कटता चला जाता है । इसे जीवन की विसंगतियों का बार-बार सामना करना पड़ता है । वह इस संघर्ष में तटस्थ नहीं रह सकता है और न ही खंडित जीवन को स्वीकार कर सकता है। बस छटपटा के रह जाना ही उसकी नियति है। मोहन राकेश का 'अन्धेरे बन्द कमरे' यौन विच्युतियों में पनाह खोजने वाला उपन्यास है । उपन्यास की कहानी और दिल्ली के सांस्कृतिक जीवन को दयनीय और हास्यास्पद ढंग से अपने ईर्द-गिर्द समेटने का प्रयत्न करने वाले नीलिमा और हरबंस एक प्रकार के अभिशप्त दम्पत्ति हैं । एक दूसरे को अपनी असफलता और अप्रतिष्ठा के जिम्मेदार ठहराते हुए वे एक दूसरे के कठघरे में खड़े मुजरिम हैं।

हरबंस और नीलिमा मध्य वर्ग के ऐसे चरित्र है जिनमें शिक्षा और संस्कारवश महत्वाकाक्षा का जागृत हो जाना स्वाभाविक है । नीलिमा को विश्वास है कि वह एक प्रतिभावान नर्तकी है, मगर पति की उदासीनता के कारण वह अपनी सफलता

के साधन न जुटा सकी । हरबंस की ट्रेजडी यह है कि वह कभी उपन्यास लिखना चाहता था, नहीं लिख सका । इसके लिए वह नीलिमा को जिम्मेदार मानता है । नीलिमा की जीवन-गन्ध से ऊबा हुआ हरबंस लन्दन चला जाता है । परन्तु अपने अकेलेपन से ऊबकर नीलिमा को लन्दन बुलाने का संकल्प करता है । नीलिमा भी हरबंस से अलग रहने का संकल्प करने के बावजूद अकेले नहीं रह पाती और हरबंस के पास लौट आती है । हरबंस भारत लौटकरनीलिमा . के नृत्य आयोजन का प्रमुख संयोजक और प्रचारक बनने के बावजूद दाम्पत्य जीवन में सन्तुलन स्थापित करने में असमर्थ रहता है । नीलिमा अपने जीवन की सफलता का उत्तरदायित्व हरबंस को सौंप देती है और अलग हो जाती है मगर कर्तव्य भावना उसे फिर हरबंस के पास लौटा लाती है ।

इस उपन्यास की शैली आत्मकथात्मक है । हरबंस और नीलिमा के कथासूत्र का विकास पत्रात्मक शैली में किया गया है । उपन्यास में शिल्पगत कोई नवीनता नही हैं ।

प्रेत बोलते हैं

'प्रेत बोलते हैं' (राजेन्द्र यादव) उपन्यास में लेखक ने निम्न मध्यवर्ग के चरित्रों को उभारकर उनकी समस्याओं, कुण्ठाओं तथा मान्यताओं को चित्रित किया है । इस उपन्यास में संयुक्त परिवार में बहुओं की घुटन, शोषण और नारकीय जीवन को सफलता –

पूर्वक रचनात्मकता दी गयी है । नारी शोषण और उसके साथ अमानवीय व्यवहार के मुद्दे को अधिक गहराने और समस्या की भयावहता को उभारने के लिए कई कोणों से उठाया गया है । रचना प्रक्रिया के दौरान राजेन्द्र यादव का रचनाकार अपने सम्प्रेषण की कलात्मकता में बेहद सतर्क और चौकन्ना रहता है । इनकी रचना अपनी परिणति की उपलब्धि में पहुँचने के प्रयास में परिवार विघटन की वस्तुस्थिति को उभारने में निश्चय ही सक्षम हैं । शिरीष की बहन असाध्य विक्षिप्तता से नारियों की दुर्दशा का चित्र अपनी व्यापकता एवं तीव्रता में पूर्णरूपेण साकार हुआ है । संयुक्त परिवार की निरर्थकता को कई दृष्टियों से विश्लेषित किया गया है ।

परिवार विघटन में सक्रिय संघर्ष के तत्व गतिशील है । परिवर्तन की गतिशीलता में देश और काल दोनों दृष्टियों से कथ्य कुछ सीमित हो गया है । पूरी रचना में प्रतीक और बिम्ब भरे हुए हैं। उपन्यास का शिल्प उलझा हुआ है । 'प्रेत बोलते हैं' का पूवार्द्ध भावुकता का खण्ड है और उत्तरार्द्ध उससे उबरने की प्रक्रिया। इस विचार प्रधान उपन्यास में पात्र सजीव न होकर प्रतीकात्मक बन गये हैं ।

'उखड़े हुए लोग' (राजेन्द्र यादव) उपन्यास का कथानक युद्धोत्तर कालीन समाज में स्त्री पुरूषों के सम्बन्धों, स्वातन्त्र्योत्तर काल में मध्य वर्ग की स्थिति तथा पूंजीपति नेतावर्ग के आर्थिक, राजनीतिक आधिपत्य पर आधारित है । इसमें संक्षिप्त

अवधि की कथा है किन्तु घटनाओं की संख्या कम नहीं है । कथानक में विभिन्न कथासूत्र संगठित किये गये है। प्रधान कथासूत्र शरद और जया का है । इसके विकास के लिए पत्रात्मक शैली का प्रयोग किया गया है । एक स्थल पर डायरी शैली का प्रयोग हुआ है । डायरी लेखन की शैली विवरणात्मक है । उपन्यास के अध्यायों के चौदह शीर्षक मौलिक हैं और पाठकों की जिज्ञासा को जाग्रत रखने में समर्थ हैं । उपन्यास के सभी पात्र शिक्षित मध्य वर्ग के सदस्य हैं । 'उखडे हुए लोग' उपन्यास में जिन लोगों का चित्रण किया गया है वे एक ओर रूढ़ियों के कठोर पाशों से व्याकुल है तथा दूसरी ओर पूंजीवादी व्यवस्था में निरन्तर लुटते रहने के कारण जम पाने में कठिनाई का अनुभव कर रहे हैं । यह उपन्यास समकालीन राजनैतिक व्यवस्था तंत्र की भीतरी सच्चाइयाँ खोलता है और इन सच्चाइयों से लड़ने के लिए जनसाधारण और व्यक्तित्व निष्ठा को भी उसको अपने दायरे में तैयार करता है ।

'अनदेखे अनजान पुल' (राजेन्द्र यादव) उपन्यास में मानसिक ग्रन्थ के कारण कुण्ठित नारी का चरित्र-चित्रण किया गया है । निन्नी नाम के इस भावुक तथा कुरूपता के कारण कुण्ठाग्रस्त लड़की की मनःस्थितियों का चित्रण लेखक ने सार्थक एवं सजीव प्रतीकों और सरल भाषाशैली के माध्यम से किया है । उपन्यास क्षेत्र में लेखक का यह सर्वथा मौलिक प्रयोग है । कुरूप होने के कारण समाज में निन्नी को तिरस्कार मिलता है परन्तु इसके भाई का चित्रकार मित्र अपने स्नेहपूर्ण व्यवहार से उसे उबरने का

अवसर देता है । उपन्यास में प्रतीक बहुतायत मात्रा में हैं । कथ्य एवं शैल्पिक दृष्टि से राजेन्द्र यादव का यह उपन्यास सर्वोत्कृष्ट लघु उपन्यासों में से एक है । इस उपन्यास की प्रमुख पात्र निन्नी अपने सामाजिक सन्दर्भो से कटा हुआ ऐसा चरित्र है जो अपनी भीतरी और निहायत निजी दुनिया में ही जीता और मरता है । इसका सारा संघर्ष और द्वन्द्व अपने से ही होता है, यानि कि अपनी मानसिक विकृतियों और कुण्ठाओं से । यह कुण्ठा स्वयं उसके अपने व्यक्तित्व की देन है, समाज की नहीं । शैली आत्मकथात्मक, भाषा सूक्ष्म और सांकेतिक है ।

'कुलटा' (राजेन्द्र यादव) व्यक्तित्व परक सामाजिक उपन्यास है । यह मूलतः व्यक्ति और व्यक्ति के आपसी सम्बन्धों का उपन्यास है । मिसेज तेजपाल उन्मुक्त वातावरण में पली थी उनका विवाह मेजर तेजपाल से हो जाता है । उच्च पदाधिकारी तो है ही, ऊँचें घराने के भी हैं । उनके मिलिटरी रोबदाब का आतंक मिसेज तेजपाल पर इतना छा जाता है कि वे घुटन भरा·नीरसभरा जीवन जीने लगती है । उन्होंने रंगीन स्वप्निल जीवन की जो कल्पना की थी वह धराशायी हो जाता है । विवश होकर वह ऐसे काम करने लगती है जो मेजर को सख्त नापसन्द थे। स्वभाव से क्रूर मेजर उन्हें किसी भी प्रकार सन्तुष्ट नहीं रख पाते। मिसेजतेजपाल की आदिम काम-वृत्ति का वेग और जीवनोल्लास पति को छोड़ उन्हें एक वायलिन बजाने वाले के साथ भागने के लिए विवश कर देते हैं । इसी दुःख से मेजर पागल हो जाते हैं ।

'कुलटा' उपन्यास समाज की जिजीविषा व जीवनशक्ति की महत्ता को समेटे, परम्परागत रूढ़ियों व मान्यताओं की नपुंसकता का द्योतन करता तथा प्रतीकों के जाल में से मानव तथा समाज के शक्ति को प्रयोग किया गया है । 'आपका बन्टी' की शैली बोलचाल की सरस एवं सुबोध शैली है । उपन्यास में कहीं-कहीं अलंकृत भाषा का भी प्रयोग हुआ है । यह उपन्यास खड़ी बोली में लिखा गया है । आज की नारी की वेदना को यह उपन्यास बड़ी मार्मिकता से रूपायित करता है और आधुनिक जीवन संदर्भों की कृत्रिमता और खोखलेपन को बडी सूक्ष्मता से उजागर करता है ।

'महाभोज' उपन्यास राजनीतिक पृष्ठभूमि पर आधारित है । लेखिका ने इस उपन्यास में समकालीन राजनीतिक गतिविधियों का सजीव चित्रण करते हुए अपने दृष्टिकोण का संकेत भी किया है । 'महाभोज' के कथावस्तु में आरम्भ से अन्त तक सम्बद्धता के दर्शन होते है तथा घटनाओं की योजना करते समय इस बात का पूर्ण ध्यान रखा गया है कि वे बिखरी हुई न प्रतीत हों बल्कि परस्पर सम्बन्धित जान पड़े । 'महाभोज' के कथानक में व्यापकता के भी दर्शन होते हैं तथा उपन्यास में समाज एवं मानव जीवन के विविध पक्षों का विशद चित्रण किया गया है। लेखिका का दृष्टिकोण उपन्यास में व्यापक रूप से व्यक्त हुआ है । पात्र योजना स्वाभाविक और सार्थक है, सभी पात्र लौकिक हैं । 'महाभोज' में यथार्थवादी सजीव चरित्रों की ही योजना की गयी है। यह उपन्यास भी खड़ी बोली में ही लिखा गया है और शैली बोलचाल की सरस एवं सुबोध ही

प्रयुक्त हुई है ।

बया का घोंषला और साँप

'बया का घोंसला और साँप' (लक्ष्मीनारायण लाल) अवध के देहात की अत्यन्त यथार्थ, करूण तथा मार्मिक झाँकी प्रस्तुत करता है । सुभागी का चरित्र प्रेमचन्द की निर्मला की स्मृति सजीव कर देता है । लक्ष्मीनारायण लाल ने सुभागी के जीवन में अदम्य आशावाद को संचरित कर निर्मला की घुटन से बचा लिया है । इसकी कथा में विखराव है । 'बया का घोंसला और साँप' समाज पूरक वैयक्तिक लघु उपन्यास है। इसमें शिल्पगत कोई नवीनता नहीं है। कथा का प्रारम्भ सामान्य रूप से हुआ है । परन्तु वह शीघ्र ही बहुत गतिवान होकर आगे बढ़ी है । कही-कहीं उसकी गति की यह तीव्रता कलात्मक दृष्टि से दोषपूर्ण लगती है ।

वे दिन

'वे दिन' (निर्मल वर्मा) आधुनिक बोध की दृष्टि से ही नही संरचना की भी दृष्टि से एक महत्वपूर्ण औपन्यासिक कृति है । इस उपन्यास में परम्परागत उपन्यासों के ढंग का घटना वर्णन या घटनाओं के लम्बे-चौड़े व्यौरे देने की प्रवृत्ति नहीं दिखाई देती । इसमें घटनाओं का प्रत्यक्ष वर्णन व्रहत्तर संदर्भ का हिस्सा बना है । वर्तमान से जुड़ने वाले अतीत प्रसंगों के संकेतों की भी उपन्यास में यही भूमिका है । कथा के विभिन्न सूत्रों के इस संयोजन से उपन्यास का परम्परागत चौखटा टूटा है। कथा

कहने की पद्धति में भले ही कोई नयापन न हो पर कथा का संयोजन भिन्न दृष्टि से किया गया है । बिना किसी शैलीगत चमत्कार के एक जटिल संवेदना को प्रेषित किया गया है ।[1]

'वे दिन' के रचाव में यथार्थ को बाहर विखेरने, सजाने और प्रदर्शन में रूचि नहीं है । वरन यथार्थ को अपने अन्दर समेटने, आत्मसात् करने का प्रयत्न है । कथा का केन्द्र मूल संवेदना या मनःस्थिति है । कथा विधान और चरित्र विधान के बीचो-बीच और आर-पार संवेदना का ही प्रसार है । यह एक वैयक्तिक लघु उपन्यास है इसमें आन्तरिक विकारों का ही अध्ययन किया गया है । निर्मल वर्मा ने मानवीय संवेदनों और स्पन्दनों को अपूर्व - शिल्प योजना में प्रस्तुत किया है । इस उपन्यास में केवल मात्र शिल्प ही नहीं एक नवनी सत्य भी है । जिसकी उपलब्धि पाठक को होती है । संवेदनशीलता तथा कथन शैली दोनों ही दृष्टियों से यह सर्वथा नवीन, मौलिक तथा महत्वपूर्ण प्रयोग है । भाषा सक्षम और निखरी हुई है । सम्पूर्ण उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है । 'वे दिन' का अन्त जिस रूप में किया गया है वह आधुनिक जीवन स्थितियों से निष्पन्न और प्रमाणित है तथा आधुनिक बोध की अपेक्षाओं के अनुकूल है ।

एक सड़क सत्तावन गलियाँ

'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' (कमलेश्वर) एक लघु उपन्यास है । जिसमें

---

1. आधुनिक हिन्दी उपन्यास-सम्पादक नरेन्द्र मोहन, पृष्ठ 9-10.

कस्बे के जीवन को भी प्रामाणिकता एवं संवेदना के साथ व्यक्त किया गया है । कमलेश्वर कस्बे के जीवन के बहुत संवेदनशील और सचेत दृष्टा हैं । यह उस जीवन की अनेक छोटी-बड़ी, भली-बुरी, सामाजिक, राजनीतिक और पारिवारिक स्थितियों को गहराई से पहचानते हैं और उनकी समाज वादी दृष्टि से सारें अनुभवों को एक प्रगतिवादी अन्विति प्रदान करती है । ये अपनी अभिव्यक्ति में अधिक से अधिक संयत रहकर अत्यन्त सटीक तथा चुने हुए शब्दों के माध्यम से पाठक तथा स्वयं को सम्प्रेषित करते हैं। 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' उपन्यास ने ही कमलेश्वर को रचनाकार के रूप में प्रतिष्ठित किया । उपन्यास का मुख्य पात्र सरनाम सिंह है जो एक दिलेर आदमी है । वह बंसरी से विवाह करना चाहता है पर उसका विवाह दूसरे से हो जाता है । वह लारी चलाता है, पर बसों के आगमन से उसका कामकाज ठप्प हो जाता है । इससे उसके भीतर मानसिक पीड़ा जन्म ले लेती है । इस मुख्य कथा के साथ-साथ कुछ अन्य कथाएं भी साथ में हैं । रचना में तत्कालीन सभी समस्याएं उद्घाटित हुई हैं । लेखक की दृष्टि व्यापक और सरल है । रचना शैली विवरणात्मक है । भाषा समर्थ है ।

'काली आँधी' में कमलेश्वर ने कस्बे और शहर के जीवन के निम्न मध्यवर्गीय समाज की सामाजिक और आर्थिक समस्याओं का चित्रांकन किया है । राजनैतिक समस्याओं का सामाजिक समस्याओं के सन्दर्भ में इतना करारा व्यंग्य प्रधान लघु उपन्यास पहली बार ही दिखाई दिया ।

कथा की नायिका मालती प्रभावी व्यक्तित्व की स्वामिनी है । वह राजनीति के क्षेत्र में बहुत सफल होती है । पर राजनीति में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त करने वाली मालती अपने पारिवारिक जीवन में असफल हो जाती है । कमलेश्वर की भाषा अत्यन्त सहज और स्वाभाविक होती है । 'काली आँधी में व्यक्ति के आन्तरिक संघर्ष और घटनाओं को यथार्थ अभिव्यक्ति मिली है ।

'आगामी अतीत' में असफल सम्बन्धों की परिणति का चित्रण है । इस उपन्यास में उपेक्षित व्यक्तियों के जीवन का मार्मिक चित्रण किया गया है । उपन्यास का नायक कमल बोस गलत - सही मार्गों को चुनकर अभूतपूर्व यश प्राप्त करता है । पर इसके बाद भी कुछ ऐसा है जो उन्हें अन्दर ही अन्दर उद्वेलित करता रहता है । समान्य व्यक्ति के दु:ख दर्द को सही तरीके से अभिव्यक्त किया गया है । कमलेश्वर चरित्रों के माध्यम से पूंजीवादी षड्‌यन्त का पर्दाफाश करते हैं । इनके उपन्यासों में आज के नवीन सामाजिक सन्दर्भों का चित्रण बड़ी कुशलता से होता है ।

राग दरबारी

'राग दरबारी' (श्री लाल शुक्ल) में आधुनिकता का बोध एक सर्वथा भिन्न धरातल और नये अन्दाज में है । सामाजिक स्थितियों की फूहड़ता को एक पैनी व्यंग्य दृष्टि के माध्यम से उघाड़कर रख दिया गया है । यह उपन्यास अपने सम्पूर्ण विन्यास में वस्तु, अंदाज मुहावरे और भाषा में कला सम्बन्धी मान्यताओं के विरूद्ध खड़ा दिखाई

देता है । प्राचीन वर्णन पद्धति और टीका पद्धति का उपन्यास में प्रयोग कियागया है । पूरा उपन्यास ही व्यंग्यात्मक शैली पर आधारित है । 'राग दरबारी' में ग्रामीण यथार्थ की क्रूरता बहुत निर्मम भाव से व्यक्त हुई है । यह उपन्यास अपनी रूमानी दृष्टि और व्यंग्यात्मक शैली के कारण अपना विशिष्ट स्थान बनाता है । किंतु व्यंग्यात्मकता बहुत आरोपित और अनावश्यक लगती है । यह उपन्यास अपने कथा विन्यास में वस्तुतः एक ऐतिहासिक प्रयोग है । इस उपन्यास में बिम्ब और प्रतीक भी कुछ अलग ढंग के दिखते हैं । शब्दों के नूतन प्रयोग है जिनमें सांकेतिकता और मार्मिकता दोनों का समावेश है ।

अलग अलग वैतरणी

'अलग अलग वेतरणी (शिवप्रसाद सिंह) आधुनिकता के भावबोध को अधिक प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत करता है । इसमें नये - पुराने मूल्यों, नई-पुरानी पीढ़ी, भिन्न-भिन्न वर्गों, जातियों की टकराहट में स्पष्ट मूल्य समाप्त हो जाते हैं । प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी वैतरणी में घिर जाता है । वैयक्तिक, पारिवारिक सामाजिक और समूचें गाँव के स्तर पर अलगाव और टूटन कई स्तरों पर घटित होते हैं । जयपालसिंह जीतकर भी टूट जाता है । कनिया अपने आदर्शों की रक्षा में स्वयं टूटकर असहाय और अकेली हो जाती है । विपिन का युवा आक्रोश और मूल्य चकनाचूर होकर उसे एकदम से नपुंसक बना देते हैं । खलील मियाँ की त्रासदी भी कम करूण नहीं है । पटहनिया भाभी अलगाव और व्यथा की जीवंत मूर्ति है । जग्गन मिसिर नए पुराने मूल्यों के मिश्रण

हैं उनका मूल्य नहीं टूटता । शिवप्रसाद सिंह अपनी मूल्यगत विरासत को नहीं छोड़ पाए हैं । यदि मूल्यों के प्रति उनका यह आग्रह न होता तो उपन्यास आधुनिकता के तनाव को और भी प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करते। इस उपन्यास में ग्रामीण जीवन कि बदलते आयामों का संवदेनात्मक चित्रण हुआ है । आधुनिक मानवीय संकट की ओर भी उपन्यास में संकेत मिलता है । उपन्यास की भाषा पात्रों के अनुकूल है । यह कृति थोड़े में ही सम्पूर्णता का बोध कराती है ।

तमस

'तमस' (भीष्म साहनी) उपन्यास में भारत पाक विभाजन में उत्पन्न मानवीय घृणा, ईर्ष्या, द्वेष आदि के तत्व स्पष्ट रूप से उभरे हैं । विभाजन के नाम पर क्रूर अत्याचार, साम्प्रदायिक शक्तियों के कार्य विभाजन की त्रासदी आदि का यथार्थ चित्रण करने वाले उपन्यासों में 'तमस' उपन्यास एक महत्वपूर्ण कड़ी है । विभाजन लेखक ने स्वयं अपनी आँखों से देखा है । इसी से उनकी कृति इतनी यर्थाथ हो सकी । परन्तु उपन्यास की बहुत ही धीमी ओर सपाटता अधिक है । 'तमस' की कथावस्तु यथार्थ और जीवन्त है।'तमस' का अर्थ है अन्धकार । इस घुप्प अंधेरे में भी जरनैल, देवदत्त और राजो रूपी प्रकाश रेखाएँ दिखाई देती हैं यही अन्धकार को खत्म करने वाली हैं ।

साम्प्रदायिक समस्या को लेकर हिन्दी साहित्य में कम नहीं लिखा गया है। भीष्म साहनी के 'तमस' से इस विषय से सम्बद्ध लेखन में कुछ पृष्ठ और जुड़ गए।

लेखक ने इस समस्या या विषय के सम्बन्ध में कुद अलग नहीं कहा है । साम्प्रायिक समस्या को उग्र रूप देने में कुद बुद्धिजीवी हिन्दू और मुसलमान महत्वाकांक्षी नेताओं का योगदान, अंग्रेजों की तोड़-फोड़ और फूट की नीति द्वारा इस आग को भड़काया जाना, भारतीय जनता द्वारा धार्मिक भेद-भाव के बावजूद परस्पर सौहार्द कायम किए जाने वाले रिश्तों में अंग्रेजी कायम किए जाने रिश्तों में अंग्रेजों द्वारा कूटनीति से बीज बोना, वैमनस्य के बीजों का अंकुरित होना और द्विखण्डित भारत का कटु फल तैयार होने की प्रक्रिया में एक दूसरे के प्रति ईर्ष्या, शंका, डर आदि भावों के साथ दूसरे का मात्र सहज ही लूटने की स्वार्थी और लोभी-वृत्ति आदि विषय को लेकर भीष्म साहनी की यह रचना चली है । इस उपन्यास में सरलता और सादगी तो आई है, परन्तु बौद्धिकता को तिलांजलि देकर, जो उपन्यास को निश्चय ही उच्च स्तर नहीं प्रदान करती ।

रूकोगी नहीं--राधिका

'रूकोगी नहीं...... राधिका' (उषा प्रियंवदा) उपन्यास में एक ऐसी युवती की कथा है जो विदेश से लौटी है । राधिका दो संस्कृतियों के पाटों में पिसकर अनिर्णय और अकेलेपन को झेलती है । वह दोनों संस्कृतियों - देशी और विदेशी में मिस फिट होकर रह जाती है । उपन्यास में तनाव की यह परिस्थिति इस कृति को अधिक विश्वसनीयता और प्रामाणिकता प्रदान करती है । राधिका उपन्यास का मुख्य पात्र है अन्य पात्र राधिका के चारित्रिक विकास में निमित्त मात्र हैं। उपन्यास में वर्णनात्मक शिल्प विधिका प्रयोग है । पात्रों की आन्तरिक भावनाओं का सूक्ष्म अंकन हुआ है ।

उपन्यास में गहराई तथा प्रभावोत्पादकता है ।

मित्रो मरजानी

'मित्रो मरजानी' (कृष्णासोबती) उपन्यास में नारी-हृदय के गहन भावों का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सफल विश्लेषण किया गया है । 'मित्रों मरजानी' का चरित्र निर्भीक और दृढ होने के साथ-साथ कोमल अन्तर्मन वाला है । इस उपन्यास के पात्र भाषा, शिल्प लेखन सभी अद्धितीय हैं । व्यक्ति की अपनी सम्पूर्णता उसके चेहरे की रेखाएँ और भंगिमाएँ, उसके सूक्ष्म से सूक्ष्म आन्तरिक मनोभावों को इस कृति में उजागर किया गया है ।

उपन्यास के कथानक का केन्द्र मित्रो ही है । यह एक वैयक्तिक उपन्यास है । सुमित्रावन्ती (मित्रो) पंजाबी परिवार में बहू बनकर आती है वह जिस वातावरण और संस्कार में पली है उसकी वजह से पारम्परिक नियमों और रूढ़ियों को स्वीकार नहीं कर पाती । वह जिस वातावरण में पली है उसे वासनाओं ने सींचा है । मित्रों के व्यक्तित्व में विरोधी तत्वों का समावेश है । वह पति से छल भी करती है और साथ भी देती है । मित्रो जैसे दुरूह चरित्र का अंकन साधारण कार्य न था पर कृष्णा सोबती ने बड़ी कुशलता से यह कार्य कर दिखाया है । इस उपन्यास की सबसे बड़ी उपलब्धि इसकी भाषा शैली है । मित्रो मरजानी के रूप में नितान्त मौलिक और नवीन गठन लेखिका ने हिन्दी साहित्य जगत को दिया है ।

बंगला के प्रमुख उपन्यास

बंकिम युग के रमेशचन्द्र दत्त के बाद तारकनाथ गंगो पाध्याय (1843-1891) का नाम विशिष्ट रूप से उल्लेखनीय है । उनके अत्यन्त जनप्रिय उपन्यास 'स्वर्णलता' (1874) में साधारण बंगाल के गार्हस्थ जीवन के करूण रसमय और धर्मनीतिमूलक आख्यान का विवरण दिया गया है । इस उपन्यास में तीन तरह का आकर्षण सूत्र कुछ शिथिल बन्धन से जुड़ा हुआ है - 1. पारिवारिक जीवन में भ्रातृ विरोध और दाम्पत्य सम्पर्क की विपरीतमुखीन अभिव्यक्ति । 2.पथिक जीवन की विचित्र आकस्मिकता और अजीबो गरीब अनुभव। 3.अनुकूल दैव घटना की सहायता से पाप की सजा और धर्म की पुनर्प्रतिष्ठा ।

इस 'स्वर्णलता' उपन्यास में एक तरफ वास्तविकता और दूसरी तरफ नीति में आस्था और रोमांस का कौतूहल मिलता है । 19वीं शताब्दी के अन्तिम भाग में बंगाल की मानसिकता में जो वास्तविक दु:ख और दैव निर्भरता का विपरीत जातीय उपादान मिश्रित था, उपन्यास में उसी का सार्थक प्रतिफलन हुआ है । तारकनाथ ने बंकिम चन्द्र के उन्नतभाव कल्पनापूर्ण रोमांस के प्रति विमुखता प्रदर्शित करने पर भी दैव अनुग्रह की तरह अपत्याशित घटनाओं को मान लेने में कोई दुविधा महसूस नहीं की । विशुद्ध वास्तविकता के साथ इसका विरोध रह सकता है, उन्होंने यह नहीं सोचा था।

इसलिए हम कह सकते हैं कि बंकिम के साथ उनका पार्थक्य लगभग रोमांस के स्तरभेद और रोमांस की वास्तविकता के सम्मिश्रण से बना हुआ है ।

ऐसा होते हुए भी बंकिम युग में रहकर उन्होंने जो स्वतंत्रता का परिचय दिया है इसी में उनकी विशेषता प्रतिष्ठित है । आख्यान अंश के विवरण में प्रसंग क्रम से उन्होंने जो मानव स्वभाव के सम्बन्ध में साधारण मतामत व्यक्त किया है, उसमें उनकी चिन्तनशीलता और व्यंग्यात्मकभाव का परिचय मिलता है । कहानी सुखपाठ्य, अनेक कौतूहलोद्दीपक चरित्र और प्रसंग के समावेश से उपभोग्य हुई है । कहीं पर गहरा मनस्तत्व ज्ञान, चरित्र विश्लेषण अथवा दृश्य वर्णन में विशैष कला कुशलता नहीं दिखाई देती । शशि भूषण और विधि भूषण का भ्रात विच्छेद जिस तुच्छ कारण से अनायास संघटित हुआ है उससे लगता है कि उनमें कभी भी दृढ़ प्रीति बन्धन नहीं था । प्रमदा और सरला दोनो ही श्रेणी प्रतिनिधि हैं । स्वतंत्र व्यक्तित्व की आभा उनमें नहीं मिलती फिर भी प्रमदा के कुटिल और सरला के सरल तथा सहनशील स्वभाव को एक सीमा में ही स्पष्ट रूप से प्रकट किया है । गदाधर चन्द्र और नीलकमल उत्केन्द्रिकता का परिचय देते हैं। गदाधर चन्द्र उपन्यास में सक्रिय अंश ग्रंहण करते हैं और नीलकमल कहानी के साथ किसी तरह संयुक्त न रहकर केवल हास्य रसात्मक परिस्थितियों की रचना करते हैं । जिस 'स्वर्णलता' के नामानुसार उपन्यास का नामकरण हुआ है, उपन्यास कहानी में उसका उतना मुख्य स्थान नहीं दिखाई देता।

इसके नाट्य रूप 'सरला' में सरला को नायिका बनाया गया है । गोपाल और स्वर्णलता का परिचय पूरे तौर से आकस्मिक और उनमें प्रणय संचार तथा विवाह में उक्त कथा का लक्षण मिलता है ।

बंगला के उपन्यास के क्रम विर्वतन की धारा में 'स्वर्णलता' में गुणगत उत्कर्ष न रहने पर भी इसकी एक मर्यादा है । साधारण सामाजिक मनुष्य के जीवन में सहज, सरल, भावों के अभ्युदय से और आचरण से जो जीवन रूप का निर्माण होता है उसकी स्वाभाविकता सहज क्षेत्र में आकर्षणीय होने में समर्थ है । तारकनाथ गंग्योपाध्याय के उपन्यास 'स्वर्णलता' को भी इसी मर्यादा से भूषित किया जा सकता है ।

रमेशचन्द्र, बंकिम चन्द्र, और संजीव चन्द्र प्रतिभावान हैं। परवर्ती युग में भी बंकिम का प्रभाव तीव्र रहा । इनके पश्चात रवीन्द्र नाथ का अभ्युदय होता है।

रवीन्द्र नाथ का 'गोरा' (1909) उपन्यास विशिष्ट और अनन्य साधारण है । इसका प्रसार और परिधि साधारण उपन्यास से बहुत अधिक है । इस उपन्यास में महाकाव्य की विशालता और विस्तार है । इसके पात्रों का केवल व्यक्तिगत जीवन ही ऐसा नही है । धर्मगत संघर्ष तथा आन्दोलन आदि व्यक्ति स्वातंत्र्य की अभिव्यक्ति से इनकी एक वृहत्तर सत्ता है । बंगाल के एक विशिष्ट युग सन्धि क्षण

के समस्त विक्षोभ आलोड़न हम लोगों ने देशात्मबोध का प्रथम स्फुरण, समस्त चांचल्य, हम लोगों के धर्म विप्लव की समस्त एकाग्रता और उद्दीपना ने इस उपन्यास में स्थान प्राप्त किया है । उपन्यास के चरित्र समूह के मुख से धर्म के सनातनपंथी और नव्यपंथी, रूढ़ि और संस्कारक इन दोनों सम्प्रदायों के विचार वितर्क और आध्यात्मिक अनुभूति के समस्त क्षेत्र स्वर्तो रूप से वर्णित हुए हैं । 'गोरा' विनय, प्रवेश बाबू, हारान, सुचरिता, ललिता, आनन्दमयी-एक मतवाद की प्रतिष्ठा के लिए इन सबका बहुत आग्रह है । धर्म और आचरण के जीवन में एक विशेष मार्ग अथवा चिन्तन धारा के समर्थन में यह विश्वास रखते हैं । किसी-किसी क्षेत्र में इस विचार वितर्क का जीवन इस मतवाद के प्रतिनिधित्व से इतना प्रबल हो उठा है कि इसके द्वारा उनका व्यक्तिगत जीवन बाधा प्राप्त और आच्छन्न हो गया है । वाद-विवाद के प्रबल कोलाहल से उनकी जीवन की सूक्ष्म रागिनी तथा मर्मस्पन्दन मानो आच्छादित हो गया है । 'गोरा' एक सजीव मनुष्य से भारत वर्ष के आत्म बोध के प्रकाश के रूप में अधिक स्पष्ट लगता है । सारे उपन्यास के विरोध में लगभग इसी तरह की शिकायत मिलती है । इस उपन्यास का चरित्र चित्रण यथेष्ठ गहरा और व्यक्तित्व द्योतक नहीं है ।

समालोचनाके मूल सूत्रों द्वारा विचार करने से इस शिकायत के अन्तर्निहित तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता । विशेषतया जब कोई विशेष मतवाद की पोषकता ही किसी व्यक्ति का मुख्य परिचय हो जाये तब उस परिचय को अत्यन्त

संकीर्ण और सीमाबद्ध स्थान पर ही रखा जा सकता है । उसे कभी विशालता प्राप्त नहीं हो सकती। जब गोरा हम लोगों के सामने आ खड़ा हो जाता है तब वह युद्ध सज्जा सज्जित रूप में ही है । यह अनुमान अनायास कर सकते हैं। यह भी अनुमान कर सकते हैं कि उसका विचार वितर्क, उसकी चिन्तन धारा, किस तरह किस रूप में उद्‌भावित होगी ।

विचार वितर्क के जाल के भीतर से हृदय के गहराई की गहराई का स्पर्श किया जा सकता है संघर्ष । परन्तु मतवाद प्रतिष्ठा के लिए प्रतिष्ठा अगर केवल के रूप में व्यवहृत होती है तो हृदय तक पहुचना बहुत सहज नहीं सिद्ध हो सकता। इस बुद्धि संघर्ष के फलस्वरूप अगर प्रेम प्रदीप जल उठे तब उसके स्वच्छ आलोक से समस्त अन्तःकरण प्रज्ज्वलित हो उठता है । गोरा का तर्क केवल संघर्ष निपुण नहीं लगता है । उसके एक तरफ हृदय की गहराई और दूसरी तरफ हृदय के अन्तर्निहित सम्बन्धों का प्रभाव है । उसकी मातृभक्ति तथा बन्धुप्रीति कदम-कदम पर मतवाद द्वारा खन्डित हुई । आनन्दमयी की सूक्ष्म प्रकाश रहित वेदना, विनय, की अनिवार्य विच्छेद व्यथा ने गोरा के मतवाद को कोमल करूण रस से संजीवित किया है । अन्त तक इस गोरा को सुचरिता के सामने प्रेम की गहरी उपलब्धि की ओर प्रवाहित कर दिया है

जब काव्य अथवा उपन्यास के चरित्र एक जाति की समस्त आशा, आकांक्षा

अथवा किसी धर्म तथा सभ्यता की विशेषता के साथ एकांगीभूत होते हैं तब उसका व्यक्ति स्वातंत्र्य प्रसार के कारण ही खण्डित हो जाता है ।

गोरा का जन्म रहस्य उसके सम्बन्ध में एक उल्लेखनीय विषय है । ग्रन्थ के अन्त में जन्म रहस्य प्रकाशित होने पर एकाएक बज्रपात की तरह गोरा के जीवन मूल में आघात करता है । इससे देशभक्ति में कोई कमी नहीं होती परन्तु यह देशभक्ति जिस विशेष साधना के मार्ग से चल रही थी उसने उसे एकदम लुप्त कर दिया है । उपन्यास जहाँ समाप्त होता है वहीं जीवन के उन्मेष का सूत्रपात होता है। इस नयी दृष्टि को पाकर नवबल से बलिष्ठ गोरा के जीवन चरित्र का कोई नया भविष्य उपन्यास के विषयीभूत होगा या नही यह कौन कह सकता है?

विनय अपना दुविधा, संकोचमय, कोमल हृदय लेकर हम लोगों की तरह साधारण मनुष्य के रूप में अंकित हुआ है । एक तरफ गोरा के अपरिवर्तनीय मतवाद के प्रति दूसरी तरफ उसके कोमल सामाजिक स्नेह बन्धन के प्रति इन दोनों के बीच निरन्तर विरोध के कारण वह संकट पड़ता है । उसका विचार हृदयावेग के समक्ष सिर झुका देता है । विनय के साथ ललिता के प्रेम का उद्भव,, विकास और परिणति बड़ी निपुणता के साथ चित्रित हुआ है । एक तीव्र विरोध अथवा तीव्र अवज्ञा शक्ति अवधारणा से प्रेम किस तरह इन्द्रजाल विस्तार कर सकता है, प्रेम के उस चिर रहस्यमय रूप के उद्घाटन ने विनय ललिता की कहानी को आनन्दमय बनाया है ।

ललिता और सुचरिता की भावगत समता और चरित्रगत भेद बहुत स्पष्टरूप से चित्रित किया गया है। परेश बाबू के साथ सुचरिता का सम्बन्ध भक्ति भावना से परिपूर्ण है । सुचरिता के हृदय में प्रेम नितान्त धीमी गति से आविर्भूत हुआ है। ललिता की तरह तीव्र विद्रोह और असहनीय हृदय ज्वाला उसमें नही है । उसके बाद गोरा की इच्छा शक्ति और आवेदन ने सुचरिता के समस्त पूर्व संस्कारों को बल से उखाड़कर तीव्र वेग से उसे गोरा की तरफ आकृष्ट किया है । उसके भक्ति प्रवण हृदय में धर्म विप्लव का आघात निपुण रूप से अंकित हुआ है । प्रेम के गोपन मार्ग से गोरा के नवीन आदर्श ने हृदय के भीतर प्रवेश करके पूर्व संचित संस्कारों को विनष्ट कर डाला है ।

हरिमोहिनी के चरित्र में भी नवीनता है । ग्रन्थ के प्रथमांश में वह एक विशुद्ध हिन्दू परिवार की विधवा नारी है । कुण्ठिता, परमुखापेक्षी, परन्तु सर्वंसहा ।

आनन्दमयी और परेश बाबू आदर्श स्थानीय जीवमात्र हैं । इन चरित्रों को देखने से ही उनके पूर्व जीवन और परिणति की प्रक्रिया के विषय में हम लोगों के मन में कौतूहल जाग्रत होता है । यहाँ आनन्दमयी और परेश बाबू ने आनन्दमयी को हम लोग अधिक सरलता से ग्रहण कर सकते हैं । उनका पूर्व इतिहास उनके जीवन में तथा चरित्र पर यथायथ (सही-सही) आलोक पात् करता है । सब तरह के आचार आचरण की संसकार निरपेक्षता सब तरह की संकीर्णता से मुक्त स्वच्छ अन्तर्दृष्टि दूसरे को अपना बनाने

की क्षमता-गोरा को पुत्र रूप में स्वीकार करने के कारण ही उनमें इन गुण समूहों का उदभव, विकास और प्रतिष्ठा सम्भव होता है ।

विनय और गोरा को एक सहज संस्कार के बल से उन लोगों के हृदय के भीतर तक देख लिया है । आनन्दमयी चरित्र का बहुत विस्तृत विश्लेषण न रहने पर भी उनकी उदारता और करूणापूर्ण विचार बुद्धि सहज ही पाठक को आकर्षित कर लेते हैं । उनके विचारों की मुक्ति और स्वच्छता भीतर से आती है । बाहरी किसी शक्ति के दबाव से उनका परिवर्तन नही हुआ । चरित्र और आचरण का यह मौलिक जागरण आनन्द-मयी के चरित्र की विशेषता है ।

गोरा के बाद से रवीन्द्र-नाथ के उपन्यास में एक भावगत परिवर्तन परिलक्षित होता है । इसके परवर्ती उपन्यास समूहों में उनकी रचना शैली विषय वर्णन कुछ नयी प्रणाली से मण्डित है ।

'घरे बाहिरे' (1916) उपन्यास के आलोच्य विषय में दो स्तर हैं - 1.राजनैतिक, 2.समाजनीति मूलक । स्वदेशी आन्दोलन के प्रथम युग में आवेग से भरे हुए देश प्रेम के प्रवाह के नीचे जो आत्म प्रचार और नीतिज्ञान रहित सफलता के लिए पागलपन था उसका एक स्तर था । उपन्यासकार ने संदीप के चरित्र में एक अनावृत्त

रूप उद्घाटित किया है । परन्तु ऐसी बात नही है कि सन्घि इस आन्दोलन का विशुद्ध प्रतीक है । ऐसा कहने से आन्दोलन के प्रति सुविचार नहीं होगा । भोग सुख की चरितार्थता के भीतर एक नैतिक संस्कार बाधा की तरह सिर उठाकर खड़ा हो गया है । समाज की स्वाभाविक अवस्था में ऐसे चरित्र भी होते है जो चारों ओर से दबाव डालते हैं । यह दम्भ से भरे होते हैं और किसी भी उपाय से अपने आपको को विशिष्ट प्रमाणित करने के लिए किसी भी मार्ग को अपनाने में पीछे नहीं हटते हैं। इस काम में उन्हें अगर समाज विरूद्ध आचरण भी करना पड़े, उसी दम्भ के आधार पर वह आगे बढ़ जाते हैं । विशेषतया पति-पत्नी के सम्बन्धों में किसीतरह की जटिलता अथवा जबरदस्ती न रहना ही अपेक्षित है । पत्नी के ऊपर पति का अधिकार और पति के ऊपर पत्नी का अधिकार प्रतिद्वन्द्विता विहीन पारस्परिक बन्धन होता है । इसमें अगर मिथ्यावाद है तो 'घरे बाहिरे' का निखिलेश उसे अस्वीकार करना चाहता है, घर के भीतर सुरक्षित किले के अन्दर वह विमला को पाता है । परन्तु ऐसे पाने से वह सन्तुष्ट नही होता है । वह सोचता है कि समाज के दुकान में फरमाईश के अनुसार जो मिलता है वह सोने की जंजीर है । सच्चे प्रेमी का मन उससे नहीं भरता। वाह्य जगत या समाज के वृहत् जगत की अवधि में प्रतिद्वन्द्विता का क्षेत्र निर्मित कर जिसे प्राप्त किया जाता है वही यथार्थ प्राप्ति होती है । निखिलेश बराबर विमला को वृहत् समाजिक जगत में अवतरण करने के लिए प्रेरणा देता है उसके बाद एक दिन स्वदेश प्रेम के स्रोत में वह गृहाङ्गन से बाहर प्रवाहित होती है और संदीप के

राजसिंहासन के नीचे पहुँच जाती है ।

निखिलेश के क्षेत्र में जैसी अभ्यास की जड़ता है उसी तरह संदीप के चरित्र के उन्मत्त आवेग ने विमला की विचार बुद्धि को अन्धा कर दिया है । देश अनुराग की उत्तेजना ने प्रेम का छद्मवेश धारण करके उसे प्रवंचित किया है । बाहरी जीवन की अग्नि परीक्षा में उनका प्रेम और गहरा हुआ है या नहीं, उपन्यास में इसका प्रमाण नहीं मिलता ।

निखिलेख की समस्त उदार निरपेक्षता के भीतर एक नैतिकता का अत्याचार छिपा हुआ था । विमला के प्रति उसके प्रणयावेग में भीतर कहीं एक विपरीत मुखिता रह गयी थी । प्रेम की स्वाभाविक सूर्य किरण से वह पूर्णविकसित नहीं हो पाई । अपने स्वभाव के विरूद्ध आदर्शवाद के झोंके से उसके अन्तःकरण के चारों तरफ एक संकोच का अवगुण्ठन तैयार हो जाता है । निखिलेश भविष्य के लिए प्रतिज्ञा करता है कि अपने आदर्श से पत्नी को वह तैयार कर लेगा । परन्तु आदर्श और स्वाभाविकता इन दोनों के संघर्ष से परिणति की तीव्रता ने समस्त गति को परिवर्तित कर दिया है ।

'घरे बाहिरे' उपन्यास की भाषा और विषय आलोचना के सम्बन्ध में

रवीन्द्र नाथ के उत्तरार्द्ध के उपन्यास समूहों की जो साधारण समालोचना की गयी है वही प्रयोग योग्य है । इस उपन्यास में एसी बहुत उक्तियाँ है जो उच्चतम उत्कर्ष पर प्रतिष्ठित हैं । इसी गुण से बंग साहित्य के सुभाषित संग्रह के भीतर उन उक्तियों को चिरस्थाई स्थान प्राप्त हुआ है । निखिलेश की पूर्व स्मृति, विमला की आत्मग्लानि बहुत बार कवित्व के उन्नत शिखर पर पहुँची है । फिर भी 'घरे बाहिरे' उपन्यास कवि के कल्पना विलास से अनेकांश मुक्त है । कलागत ऐक्य और भावगत संगति इन दोनो के समन्वय से इस उपन्यास की मर्यादा शीर्ष स्थान को प्राप्त करती है ।

शरत्चन्द्र का 'श्रीकान्त' (प्रथम पर्व 1917, द्वितीय पर्व 1918, तृतीय पर्व 1927 तथा चतुर्थ पर्व 1933) उपन्यास सर्वोत्तम स्वीकार किया जा सकता है । इसे ठीक उपन्यास कहा सकता है या नहीं इस बात की भी आलोचना हो सकती है । उपन्यास विधा की विशिष्टता यह है कि घटनाएं निविड़ और अविच्छिन्न ऐक्य सूत्र में ग्रन्थित होनी चाहिए । परन्तु शरत्चन्द्र का' 'श्रीकान्त' कई एक भिन्न-भिन्न समय के विच्छिन्न अध्यायों की समष्टि के रूप में ऊभर कर सामने आता है । इसका ग्रन्थन सूत्र शिथिल होने पर भी गूथे गये अध्याय समूह एक-एक महामूल्य साहित्य सामग्री हैं ।

साधारण में असाधारण को देखने की प्रतिभा शरत्चन्द्र का रचना वैशिष्ट्य

हैं । प्रतिदिन का परिचित समाज जीवन, पारिवारिक जीवन और आत्मजीवन के समन्वय से जो मनुष्य का एक अस्तित्व खड़ा होता है उसकी विचित्र अभिव्यक्ति शरत की रचना में प्रतिफलित हुई है । शरत् साहित्य में प्रतिफलित हम लोगों के स्वरूप को हम ही लोग पूरे तौर से सभी दृष्टिकोण से देख पाने में समर्थ होते हैं और अपने ही जीवन के विचित्र विकार का स्वरूप देखकर घृणा बोध करने लगते है । यहीं पर शरत् प्रतिभा की प्राण प्रतिष्ठा होती है । हम लोगों के संकीर्ण जीवन में अपने आप को लेकर मस्त व्यक्ति समूह चारों ओर को स्वार्थ सिद्धि के लिए ग्रहण और प्रयोग करता है । इससे अपनी घृण्य मूति न वह स्वयं देख पाता है और न ही दूसरे लोग समझ कर भी देखने का अवसर पाते हैं । परन्तु शरत्चन्द्र के निरपेक्ष्य दृष्टिकोण के समग्र प्रयोग से उस प्रतिछवि का पूर्ण परिचय मिल जाता है । उस तरह पाठक इसी कहानी का अशं तथा चरित्र होकर भी लज्जित और तटस्थ होता है । श्रीकान्त के भाग्य में जितना विचित्र हत्चकित करने वाला अनुभव प्राप्त हुआ है वही शरत्चन्द्र के अन्य उपन्यास में मानसिक उदारता और सूक्ष्मनीति के ज्ञान की आधार शिला के रूप में प्रतिष्ठित हुआ है। उनके अन्यान्य उपन्यासों में जो नई रोशनी प्रतिफलित हुई है 'श्रीकान्त' ही उसका मूल स्रोत है । श्रीकान्त के बाल्य जीवन में जिस रास्ते से उसे जीवन का नया अनुभव और साहसिकता का आत्मानुभव प्राप्त हुआ है वह इन्द्रनाथ के साहचर्य से संभव हुआ है ।

बंकिम चन्द्र से शुरू करके रवीन्द्र नाथ से होते हुए आज तक अनेक

कवित्वपूर्ण सूक्ष्म अनुभूतियों का विवरण भी मिलता है परन्तु शरत्चन्द्र का वर्णन एकदम भिन्न है । इसमे भीतर कवित्व की कमी नहीं है परन्तु कवित्व इसका मुख्य स्वर भी नहीं है । शरत् के वर्णनों में दुविधाहीन वास्तविकता तथा प्रत्यक्ष अनुभव का स्वर मिलता है । वह कवित्व का अतिक्रमण करके और ऊँचे स्तर तक पहुँच जाता है । इसके वर्णन में जो तीव्रता है वह इन दोनो (श्रीकान्त और इन्द्र नाथ) साहसी बालकों की उत्तेजित कल्पना में आविर्भूत होकर समस्त पाठकों को स्तब्ध करने में समर्थ है । इसके बाद अन्नदा दीदी के साथ परिचय ।

श्रीकान्त ने जीवन के प्रारम्भ में ही जिस रत्न को जीवन के रास्ते से प्राप्त किया था वही उसके भविष्यत जीवन के राह खर्च (पाथेय) के रूप में व्यतीत हुआ।

यहाँ श्रीकान्त की बाल्य शिक्षा समाप्त होती है उसी के कई साल बाद एक घड़ियाल के शिकार पार्टी में शामिल होना उसके जीवन में एकाएक सन्धि क्षण को उपस्थापित करता है । इन्द्र नाथ के पास उसने जो मन्त्र शिक्षा पाई थी प्यारी बाई जी के घर में उस शिक्षा की परीक्षा का सुयोग्य अवसर मिल गया । बाई जी के पोशाक की आड़ में उसकी बाल्य प्रणयिनी के दर्शन मिलते ही इस नये सम्बन्ध के साथ सामंजस्य स्थापन करने के प्रयास में ही श्रीकान्त का बाकी जीवन बीतता है । अनेक तरह की

जटिलता, कठोर कर्तव्यनिष्ठा के अविराम संग्राम ने श्रीकान्त के भावी जीवन को निरन्तर विक्षुब्ध किया है । 'श्रीकान्त' उपन्यास के इस अंश में वर्णनशक्ति और मनन शक्ति स्पष्ट रूप से उत्कृष्ट हुई है । राजलक्ष्मी के साथ पहले परिचय के बाद सामाजिक मर्यादा में व्यवधान रहने के कारण इसका अतिक्रमण करना सहज नही था । इसके बाद एकाएक श्रीकान्त सन्यासी का शिष्य बनकर एक स्थान से दूसरे स्थान तक निरन्तर चल कर जीवन के सुख और अशिक्षित निरक्षरों की भक्ति का आनन्द लेने लगा । वास्तविक रूप से श्रीकान्त की अनुभूतियाँ बहुत तीक्ष्ण थी । राजलक्ष्मी की सूक्ष्म अनुभूति भी कम तीव्र नहीं थी । राजलक्ष्मी के मिलनोत्सुक हृदय के आवेग के ऊपर से नैतिक सतर्कता और सांसारिक बुद्धि की बाधा सबसे पहले श्रीकान्त की तरफ से ही आयी । राजलक्ष्मी इस इशारे को उसी क्षण ग्रहण करके अपने उत्सुक मन को निवृत्त कर लेती है और एक गम्भीर विषाद में उनकी यह प्रथम मिलन चेष्टा अपनी व्यर्थता चुपचाप स्वीकार कर लेती है । द्वितीय पर्व में राजलक्ष्मी पुनः बाई जी के जीवन में अवतरण करती है ।

वह पुनः श्रीकान्त के साथ वर्मा जाना चाहती है परन्तु श्रीकान्त पुनः उस प्रस्ताव को अस्वीकार करता है । इतना होने पर भी पारस्परिक सम्बन्ध सहज हो जाता है । तत्पश्चात् श्रीकान्त की वर्मा यात्रा होती है । समुद्र यात्रा के वर्णन में एक तरफ कवित्व जीवन समालोचना, देखने की सूक्ष्म शक्ति आदि सब तरह की

मानसिक शक्ति की सार्थकता इस अशं में व्यक्त होती है । पुनः एक ऐसी नारी का दर्शन मिलता है जो लज्जा, संकोच के कारण जड़ पिण्ड नहीं है । यह अभया नितान्त असंकोच से ही जैसे रोहिणी को, ठीक उसी तरह श्रीकान्त को अपने काम में लगा लेती है और उन लोगों को बीच में रखकर अपनी चेष्टा से ही आगे बढ़ती है।

अभया का विद्रोह भोगासक्ति मूलक नहीं है । प्लेग के समय श्रीकान्त को अपने नये परिवार में आश्रय देकर प्रमाणित कर दिया है । प्लेग रोग मुक्त होकर श्रीकान्त राजलक्ष्मी के पास जाना चाहता है । जिस दुविधा के कारण बाहरी समाज के पास प्रकाश्य रूप से जिस प्रेम को विसर्जित किया गया है उसी ने पुनः राजलक्ष्मी के भीतर नवजन्म प्राप्त करके मिलन के लिए उत्पीड़ित किया है परन्तु इस समय समस्त बाधा आई है राजलक्ष्मी की ओर से । कुछ दिन से राजलक्ष्मी कठोर व्रत और आचारनिष्ठा में मग्न हो रही थी । गंगामाटी के क्षेत्र की निर्जनता में सुनन्दा के प्रभाव से वही अत्यन्त प्रबल होकर आबाल्यसंचित प्रेम का अतिक्रमण कर जाता है । राजलक्ष्मी की प्रत्येक बात में, प्रत्येक आचरण में एक उदासीनता के भाव ने उसके मन के विचित्र आन्दोलन को एकदम स्तब्ध बना दिया है ।

श्रीकान्त के तृतीय पर्व में चिन्ताशीलता तथा जीवन समालोचना की शक्ति बढ़ गयी है । परन्तु विशुद्ध सृष्टि शक्ति की दीप्ति कुछ घट गयी है । गंगामाटी की छोटी परिधि में जितने लोगों से परिचय होता है व्यक्तिगत जीवन से उनकी

समस्या का गुरूत्व अधिक होता है । सुनन्दा के तेजश्विता की कहानी चमत्कृत करती है । पर आकृष्ट करने में समर्थ है । श्रीकान्त राजलक्ष्मी के सम्बन्ध में एक मधुरता सूखने लगती है । रतन के व्यक्तित्व के विकास के लिए यही बहुत अनुकूल बन जाता है । श्रीकान्त की असहायता और कुण्ठित अधीनता की छवि उसके आँख के सामने स्पष्ट होती है केवल एक संवेदना का आकर्षण अनुभव करने लगती है ।

श्रीकान्त के चतुर्थ खण्ड में मित्र प्रेम और प्रेम इन दोनो स्वरों की पुनरावृत्ति होती है । यह पौढ़त्व की मित्रता जिसमें पूर्व स्मृति और मोह भंग ही मुख्य है ।

जीवन में जो कुछ आकस्मिक होता है साहित्य में कार्य कारण श्रृखंला के भीतर से उसी का उद्भव और परिणति का धारावाहिक इतिहास हम लोग देखना चाहते हैं । राजलक्ष्मी के क्षेत्रमें जो श्रेय हम लोगों के सामने गहरे जीवन रस से परिपूर्ण और शतदल की तरह सजीव सौन्दर्य से विकसित हुआ है, कमल लता का प्रेम उस तरह कोई प्रमाण स्वीकार नहीं करता । इस प्रेम की कोई गहराई तक फैली हुई जड़ नहीं है । प्रौढ़ उम्र की मित्रता की तरह प्रेम भी तेजहीनता से विवर्ण होता है और कमल लता का प्रेम इसी तरह का विवर्ण प्रेम है । इसलिए इस प्रणय कहानी में सुलभ भाव विलास से आन्तरिकता का कोई आधार नहीं मिलता । अन्त में राजलक्ष्मी को कमल लता के

साथ प्रतियोगिता में अवतरण करना पड़ता है और कमल लता से श्रीकान्त का उद्धार करने के लिए तरह-तरह का अभिनय भी करना पड़ता है । इससे श्रीकान्त और राजलक्ष्मी के प्रेम की अवमानना नहीं हुई ऐसा नहीं । इस कारण कह सकते हैं कि इस अशं में जिस दुर्बलता की सूचना दिखाई देती है परवर्ती भाग में वही प्रतिष्ठित हो जाती है । शरत्चन्द्र की इस रचना में नारी प्रेम की विचित्र वर्णन छटा का अनन्त परिचय प्राप्त किया जा सकता है ।

आशापूर्णा देवी के 'छाड़पत्र' उपन्यास में साम्प्रतिक युग के कानूनी तौर से विवाह विच्छेद की कहानी का विवरण मिलता है । जो समस्या बंगाल के सामाजिक जीवन में कुछ ही दिन पहले अमानवीय थी वह किस तरह अनायास अपने दैनिक जीवन की गति और भावों के स्वाभाविक छन्द में गूँथी गई है, इस उपन्यास में वर्णित है । यहाँ भी संयुक्त परिवार की स्थूल रूचि और अनुदार विचार बुद्धि समस्या को जटिल और समाधान को दुरूह कर दिया है । परन्तु यहाँ समस्या पारिवारिक जीवन से नहीं निकली बल्कि बाहर से परिवार के भीतर आयी । सौरेश और सुचेता का दाम्पत्य जीवन किस तरह छोटे से कारण से ही टूट गया, मतभेद किस तरह तीव्र आकार धारण करके ग्लानिमय परिवेश में कानूनी सलाहकारों की कूटनीति द्वारा परिचालित तथ्य विकार और हीन उद्देश्य आरोप की चक्की में पिसकर बे-आबरू विवाह विच्छेद में परिणत हुआ । यही उपन्यास में विस्तारित रूप से वर्णित हुआ है ।

उपन्यास का मुख्य विषय यही है कि विच्छेद प्राप्त दम्पत्ति के पारस्परिक मनोभाव और जीवन के प्रति द्रष्टिकोण का स्वरूप कैसा होता है । सौरेश शुरू से सुचेता को चाहता है इसके बाद भी स्वयं सुचेता के पास जाता है इसके लिए जो अपमान होता है वह भी सह लेता है। परन्तु सूचत्ता की प्रतिक्रिया अधिक जटिल और परस्पर विरोधी उपादानों द्वारा गठित हुई है । पितृगृह उसके लिए जितना भी असहनीय हुआ है शून्यताबोध उतना ही उसे निरन्तर ग्रास करता है और वह अपने विध्वस्त दाम्पत्य जीवन की मर्यादा तथा निर्भरता के स्थिरतापूर्ण निश्चित जीवन के प्रति सचेतन होती है । अन्त में क्रमशः दुविधाग्रस्त कुण्ठित करम से सुचेता सौरेश के पास अपने आप को समर्पित करती है, इस तरह आदालत ने जिनको विच्छिन्न किया था मानव मन की स्वाभाविक गति और विरूद्ध मनोभाव के क्रमिक शक्तिक्षय ने उन लोगों के पुनर्मिलन को सम्भव किया है । लेखिका का कृतित्व यहीं हैं जहाँ उन्होंने दिखाया है कि बंगाल के समाज में अल्प परिचित एक परिस्थिति और उसके जटिल घात प्रतिघात की एक स्वस्थ सम्पूर्ण स्वाभाविक उपस्थापना की रचना होनी चाहिए ।

बुद्धदेव बसु का सबसे प्रमुख उपन्यास 'तिथिडोर' (1949) - कलकत्ते के मध्यमवर्गीय गृहस्थ जीवन का एक रस समृद्ध अपूर्व चित्र इसमें मिलता है । आधुनिक युग में पारिवारिक जीवन यात्रा का छन्द और सूक्ष्म होते हुए भी उल्लेखनीय रूप से परिवर्तित हुआ है । माता-पिता के साथ सन्तान का और

भाई-बहनों में पारस्परिक सम्पर्क, परिवार के प्रत्येक व्यक्ति की रूचि तथा आदर्श, व्यक्तित्व विकास की स्पृहा, घर के भीतर-बाहर के लोगों का आना-जाना सब मिलाकर पारिवारिक जीवन का सम्पूर्ण रूप और परिवार के लोगों के ऊपर उसके प्रभाव ने इस युग में एक विशेष तरह-तरह के जीवन का अनुवर्तन किया है । मनुश्य के आदिम वृत्ति समूह जैसे स्नेह, प्रेम, माया, ममता, मित्रता तथा विराग प्राकृतिक रूप से. उसी के भीतर है परन्तु उसके प्रयोग में एक नवीन रूपरेखा चिन्हित हो जाती है । बुद्धदेव के उपन्यासों से इस नवीन छन्द के पारिवारिक जीवन का परिचय मिलता है । इसमें छोटी-छोटी बातें बहुत तुच्छ तथ्य् और भावों को लेकर परिवेश की विशिष्टता को अपरूप ढंग से प्रकटित किया है ।

जिस घटना परिवेश में उपन्यास का केन्द्रीयभाव आधारित है, वह गृहस्थ जीवन के एक स्वस्थ रूपायण में मिलता है । जिस युग में राजनीति, सामाजिक आदर्श के मत विरोध पारिवारिक जीवन को लगभग नष्ट करनेके लिए बढ़ी हुई थी उस युग में गार्हस्थ रस सम्पन्न जीवन चित्रण एक असाधारण व्यक्तिक्रम के रूप में 'तिथिडोर' में सिद्ध होता है । हारीत का कम्युनिस्ट मतवाद इस जीवन परिवेश में आश्रय न पाकर विक्षिप्त आत्म भाषण की तरह सुनाई देता है । परिवार के सुखमिलन, आत्मीय वर्ग के हास-परिहास, बच्चों के नटखटपन, भाई-बहनों के भीतर स्वाभाविक तर्क-वितर्क अतीत की पारिवारिक घटनाओं की स्मृति को स्मरण करना, खाने और खिलाने में परितृप्ति, घरेलू उत्सवों का स्वच्छ आनन्दोच्छ्वास यही उपन्यास की प्राण वस्तु हैं । विवाह का अनुष्ठान और प्रीति भोज आदि का विस्तृत वर्णन सब मिलाकर गृहदेवता की जो आरती रची गई है वह इस युग के लिए एक विस्मयकारी पुनरूम्यथान के रूप में प्रतीत होता है ।

'सहरतली' (मानिक वन्द्योपाध्याय) उपन्यास में लेखक ने विषय निर्वाचन और चरित्र कल्पना में मौलिकता का परिचय दिया है । साधारणतः उपन्यास में जिस स्तर के नर-नारियों की जीवन समस्या वर्णित होती है इसमें .उससे निम्न स्तर कीबात आलोचित हुई है । परिमार्जित जीवनधारा की एक रसता में सरस नूतनता की कमी रहती है परन्तु श्रमिक श्रेणी के जीवन में प्रचुर परिवर्तन निरन्तर घटित होते रहते हैं। ईर्ष्या, क्षोभ, कृतघ्नता आदि दुष्प्रवृत्ति समूह इनके जीवन में गोपनीय नहीं रहता, अनावृत्त अभिव्यक्ति की तीव्रता के साथ प्रकाशित होता है । इन लोगों के स्थूल और निम्न आमोद - प्रमोद में सतेज स्फूर्ति प्रचुर मात्रा में प्रवाहित होती है । 'सहरतली' में इस नूतन विषय का नवीन आविर्भाव आकर्षण का कारण बन गया है । मोती, सुधीर जगत, धनंजय कालो, चाँपा आदि यशोदा के किराएदार लोग इस श्रमिक जगत् के प्रतिनिधि हैं । इन लोगों का जीवन जितना भी खण्डित और विकृत हो ये विशुद्ध और अकृत्रिम हृदय का परिचय देने में समर्थ हैं ।

परन्तु यह श्रमिक समाज रूचि सम्पन्न भद्र समाज के संस्पर्श से वंचित नहीं है । जीविकोपार्जन के सूत्र से इन लोगों के कमक्षेत्र में एक स्वार्थ और आदर्श के आघात पर संघात भी यहाँ अनिवार्य होता है । मंगलाकांक्षी से क्रमशः उनके कर्मजीवन की सुविधा और असुविधा के प्रति देखभाल करने लगते हैं और अन्त में हड़ताल करने की प्ररोचना देकर मिल के मालिक सत्यप्रिय के साथ प्रतिद्वन्द्विता के क्षेत्र

में अवतरण करते हैं । परन्तु सत्यप्रिय की कूटनीति के समक्ष उनकी पराजय होती है। यशोदा के चरित्र मे पुरुष और पुरुषोचित गुण का प्राधान्य रहते हुए भी उसे नारी कहकर पहचानने में पाठक भूल नहीं करता ।

सत्यप्रिय लेखक की चरित्रांकन शक्ति का और एक उज्जवल निदर्शन है। ज्योतिर्मय के विवाह की निमंत्रण सभा में उसके जिस स्वभाव के साथ परिचय का सूत्रपात होता है, प्रत्येक परवर्ती आविर्भाव में यही परिचय और स्पष्ट और भयावह होकर एक रहस्य की धारणा का निर्माण करता है ।

ताराशंकर वन्द्योपाध्याय 'राइकमल' (1934) का बहुत आहत उपन्यास है । इसमें बंगाली समाज के वैष्णव की जीवन यात्रा जैसे - रोमांस के अन्तिम आश्रय स्थल के रूप में वर्णित हुई है । इसकी असामाजिक स्वतन्त्रता की बहुत छोटे सुराख से हिन्दू समाज के बन्द कमरे के भीतर उन्मुक्त वायु को प्रवेश कितने स्वाभाविक रूप से अनुभव किया जा सकता है उसको उन्होंने दिखा दिया है । वैष्णव की स्वच्छन्द प्रणय लीला, संगीत आदि ललित कला में अनुराग और निपुणता, स्वभाव की उदारता और माधुर्य तथा कभी-कभी महाप्रभु श्री चैतन्य देव की अनुप्रेरणा का यथार्थ चरित्र गौरव-उद्भाषित होता है । यह थोड़ी सी विशिष्टता वास्तविकतापूर्ण है इसलिए उपन्यासकार के तथ्य के सम्पूर्ण उपयोगी बन गयी है । परन्तु प्रयोग क्षेत्र में उपन्यासकार मात्रा सही नहीं रख सके हैं, कहीं-कहीं स्वर ज्यादा चढ़ाकर अतिरंजित

करने के कारण उसमें विकृति और आदर्शायित भाव आ जाता है । शरत्चन्द्र की कमललता और उसका आवास कुंज ऐसे ही असंयत आदर्शवाद के उदाहरण दिए जा सकते हैं । ताराशंकर ने यहाँ शरतचन्द्र की धारा का ही अनुसरण किया है । उनके 'राइकमल' की तन्मयता और प्रणयावेश का पार्थिव से अपार्थिव स्तर में उन्नीत होना साधारण वैष्णव अनुभूति का अनेक उच्चस्तर है । इसे विश्वास योग्य बनाने के लिए जिस व्याख्या की आवश्यकता है, लेखक ने वह नहीं दिया है । रसिकदास के साथ राइ कमल के मालाबदल की घटना अविश्वास होने पर भी रसिकदास की मानस प्रतिक्रिया बहुत ही सुन्दररूप से वर्णित हुई है । आसक्ति और वैराग्य, पार्थिव और ईश्वरीय प्रेम के निरन्तर अन्तद्वन्द्व में दोनों थक गए हैं । यद्यपि आत्मग्लानि रसिकदास की ही अधिक है और बन्धन तोड़ने की प्रथम प्रेरणा उसी की तरह से आई है । दोनों के हृदय के घात-प्रतिघात आचरण कथोपकथन और हास-परिहास समस्त वैष्णव पदावली के स्वर द्वारा ही नियन्त्रित हुए हैं । पदों के खण्डांश उनके वार्तालाप में सुगन्ध के प्रवाह की तरह प्रवाहित हो रहे हैं । उनके पारस्परिक सम्पर्क में जो दुःख और क्षोभ के साथ कुछ सूक्ष्म कोमल सौन्दर्य मिला हुआ है वह साधारण वैष्णव के समझ से परे है । वैष्णवधर्म की अध्यात्म साधना का यह विकास वास्तविक जीवन के परिवेश में साधारण स्त्रियों के नर नारियों के चरित्र में अस्वाभाविक लगता है ।

रंजन के साथ मिलन के बाद कमल के जीवन में एक परिणति आई । वह अधिक वास्तविकता वादी है ।

इस उपन्यास में लेखक के लिखने की चतुरता और सूक्ष्म सौन्दर्य अनुभूति का परिचय मिलने पर भी उपन्यास के विचार से यह अपरिपक्व है । कमल के हृदय में प्राण शक्ति है । परन्तु इसकी धारा अनेक अद्भुत और अकारण ख्यालों में विच्छिन्न हो जाती है । इसकी प्रधान त्रुटि भावावेगपर्तना, विषय के साथ सामंजस्य न रखकर आवेग का अपव्यय जीवन के सत्य का उल्लंधन करके उसके काल्पनिक काव्य सौन्दर्य के प्रति असाधारण झुकाव में निबद्ध है ।

ताराशंकर वन्द्योपाध्याय के 'गणदेवता' (1942) उपन्यास में ग्राम्य जीवन की और एक समस्यापूर्ण दिशा उद्घाटित हुई है । यहाँ आधुनिक अवस्था के परिवर्तन के प्रभाव से ग्रामीण समाज के प्राचीन रीति-नीति और अर्थनैतिक व्यवस्था के विपर्मय की बात आलोचित हुई है । ग्राम पंचायत का आत्मनियन्त्रण प्रयास, समाज शृंखलता रक्षा का प्रयास वर्तमानकाल में युग का अनुपयोगी परिवेश किस तरह नष्ट हुआ है । वही उपन्यास का वर्णन विषय है । उपन्यास के चरित्र समूह लगभग बराबर अवस्था के गृहस्थ किसान हैं । उन लोगों के भीतर समाज नेता के उच्च आसन पर बैठा हुआ कोई उच्च वंशीय व्यक्ति नहीं है इस लिए इस ग्राम्य जीवन में गणतांत्रिक

साम्य का प्रभाव बहुत स्पष्ट रूप से प्रतीयमान होता है । इस समाज में चार व्यक्ति साधारण रूप से समता की मात्रा का उल्लंघन करते हैं । 1.द्वारिक चौधरी -जमींदारी खोकर साधारण किसान के स्तर पर उतर आये है और आत्म मर्यादापूर्ण स्नेहमय आचरण से प्रमाणित करते हैं कि धन का गौरव खोकर भी उनका चरित्र गौरव वैसा ही रह गया है । 2.छीरू उर्फ हरिपाल किसान से जमींदार से उन्नीत उच्च और निम्न प्रकृति के अद्‌भुत सम्मिश्रण से बना हुआ है । श्रीहरि की सद्यः प्राप्त सम्पत्ति उसे अब तक अभिजात्य की मर्यादा नहीं दे सकी है । 3.देबू पण्डित एकाएक एक ऊँचे आदर्शलोक में उन्नीत होकर गाँव की साधारण धारा और मनोभाव के अनधिगम्य दूरी पर अधिस्ठित हुए हैं । उनकी परिकल्पना में आदर्शवाद की अतिशयता ने ग्राम्य जीवन की गतिधारा का छन्द नष्ट कर दिया है । देबू के स्त्री पुत्र को मृत्यु की तरफ ढकेल कर लेखक ने उसके चरित्र को एक लोकातीत पौराणिक महिमा अर्पित किया है । 4.सबसे अन्त में महाग्राम के महामहोपाध्याय शिवशेखरेश्वर न्यायरत्न अपनी पवित्र उज्ज्वल ब्राहमण महिमा लेकर इस विरोधतिक्त नीच स्वार्थमरता और लोलुपता के धूल से सने हुए ग्रामीण समाज के ऊपर ज्योतिर्मय प्रसन्न आर्शीवाद के प्रतीक रूप में अवतीर्ण हुए हैं। उन्यास के भीतर उनका कोई विशेष काम नहीं है समाज की बन्धन शक्ति जब शिथिल हो गई , जब इसके भिन्न-भिन्न अंश ऐक्य खो बैठे और खण्ड-खण्ड हो गये तब समाज के शीर्ष पर यह गौरव और ब्राह्मण शक्ति धूल में लौटने लगे । उपन्यास में देबू के भक्तिपूर्ण मस्तक पर न्याय रत्न का

आर्शीवाद वर्णन सबसे गौरवोज्ज्वल मुहूर्त-समाज जीवन की चरम सार्थकर्ता का संकेत देता है ।

समाज शासन में कमजोरी के सुराख से व्यक्तिगत अत्याचार और बदला लेने की स्पृहा की अराजकता पुनः खड़ी हो जाती है । इसे बहुत सुन्दर रूप से अंकित परिवेश के भीतर ही आधुनिक युग में गाँव की जीवन यात्रा का धारावाहिक रूप लेखक ने दिखाया है ।

विरोध के उत्तेजनापूर्ण वातावरण में कई व्यक्तियों ने अपने स्वातंत्र्य का चरम रूप प्रतिष्ठित कर लिया है । इनमें भीतर सबसे पहला अनिरूद्ध लुहार है । उसमें विद्रोह की चिनगारी के अनुकूल पवन प्रवाह से सर्वग्रासी अग्निशिखा प्रज्ज्वलित हुई है । इस आग में वह उसकी पारिवारिक स्वच्छन्दता, दाम्पत्य सुख-शांति, सामाजिकता, आत्म-मर्यादा ज्ञान सब कुछ की उसने आहुति दे दी है । अन्त तक एक उन्माद ध्वंस शक्ति में परिवर्तित हो गया है । जानबूझकर अपनी इच्छा से उसने कारादण्ड ले लिया । उसके लगभग समाप्त हुई मानवता के अन्तिम चिन्ह के रूप में भविष्य में मुक्ति की आशा दिखलाता है । उसके अभ्रद्र, भ्रष्ट और प्रभुत्व गर्व सर्वस्त्र या अहंकारी चरित्र में एकाएक महत्व का बीज अंकुरित हो गया है । क्षमता प्राप्त करने के साथ-साथ उसके मन में नैतिक उत्तरदायित्व की चेतना जाग्रत होने

लगती है । उसका अनुशासन समाज के कल्याण के लिए सर्वतो रूप से विशिष्ट बन जाता है । समय-समय पर इस सद्यः जागृत नीति ज्ञान को हटाकर उसका अपनी स्वाभाविक नीचता जागृत होती है परन्तु इस पाशविकता के स्तर पर अवतरण करके भी वह वास्तविकता को प्राप्त कर सकता है । दुर्गामोचिन जो प्रकाश्य रूप से स्वैरचारिणी है । इसके आचरण में अनेक सद्गुणों का विकास पाठक को अनायास

स्पर्श करता है । स्वैरचारिणी होते हुए भी मानविक गुर्णों से भूषित दुर्गा को उन्होंने एक परिपूर्ण चरित्र की संज्ञा दी है । उसके प्रकाश्य वृत्ति के भीतर से वह जो कुछ भी हो उसकी सदा सतर्कता, प्रत्युत्पन्नमतित्व हृदय की उदारता, प्रतिवेशी के दु:खऔर कष्ट में सहानुभूति, अन्याय के विरूद्ध खड़े होने का नैतिक साहस उसे नीच-कुल और हीन वृत्ति की ग्लानि से अधिक ऊँचें में प्रतिष्ठित कर देता है । मनस्तत्व के विचार से अनिरूद्ध की पत्नी पद्म सबसे कौतूहलोद्दीपक है उसके दाम्पत्य प्रेम का स्वाभाविक प्रसार अवरूद्ध होने के कारण उसके शरीर और मन में तरह तरह की जटिल प्रक्रिया दिखाई देने लगती है ।

दूसरे और समस्त चरित्र विशेष रूप से स्वतंत्र और सक्रिय न होकर ग्राम्य समाज के जटिल संघात के भीतर अपने अपने साधारण अंश की सीमा में काम करते गये हैं । अपनी अपनी क्षुद्र शक्ति को गाँव की सम्मिलित जीवनधारा में प्रवाहित किया है। इस बीच गाँव अपना व्रत-पूजा और कृषि लक्ष्मी के उद्बोधनकारी उत्सव चक्र और

अन्धभक्ति संस्कार इसके साथ आत्मघाती कलह लेकर अभ्यस्त आवर्तन की गति में से होते हुए बड़े धैर्य के साथ नव जीवन की प्रतीक्षा करता रहेगा ।

ताराशंकर के उपन्यास समूहों में 'हांसुलि बाँकिर उपकथा' (1947) में केवल श्रेष्ठ स्थान का ही अधिग्रहण नहीं किया है बल्कि बंगला उपन्यास के क्षेत्र में भी यह एक श्रेष्ठ रचना है । एक समूचे समूह का प्राणस्पन्दन और मर्मरहस्य, सारे समाज विन्यास का मूल तत्व और अन्तर्प्रेरणा इस युगान्तकारी उपन्यास में स्वच्छ दर्पण की तरह प्रतिबिम्बित हुआ है । इसमें किसी व्यक्ति विशेष का जीवन चित्र अंकित नहीं हुआ है । उपन्यास व्यक्तिसम्पन्न होने पर भी गौण है । समाज के आस-पास का दबाव प्रत्येक के ऊपर गहरी रेखाअंकित करता है । इस उपन्यास के यथार्थ नायक हिन्दू धर्म के निम्न वर्णीय समाज - जो समाज अनेक शताब्दियों से शिक्षा - दीक्षा के कर्म में और चिन्तन में जीवन आदर्श के सर्वस्वीकृत एक जीवन्त अत्याज्य संस्कृति के आधार के रूप में विकसित हुआ है । 'हँासुलि बाँकिरे उपकथा' के इतिहास का थोड़ा सा अंशमात्र मनुष्य की चेष्टा से रचित हुआ है । यहाँ के मनुष्य अधिवासी समूह अपने व्यक्तिगत स्नेह, द्वेष, ईर्ष्या, लालसा और कामना के पारस्परिक आकर्षण और विकर्षण से वातावरण को क्षोभपूर्ण बनाने से भी असल में एक बहुत शक्तिशाली शक्ति के हाथ कठपुतली मात्र बने हुए हैं । दैव शक्ति द्वारा आलोड़ित 'हाँसुलि बाँकिरेउपकथा' में आकाश बिहारी कालारूद्र और बिल्व वृक्ष संचारी कर्ताबाबा सारे मनुष्य

के भाग्य को लेकर खेलते हैं सूक्ष्म और सर्वव्यापी प्रभाव समस्त मनुष्य की चिन्तनधारा में, जीवनरहस्य, उपलब्धि में और कर्म प्रयास में प्रकटित है । इस धरती की जीवनयात्रा जैसे अतिआधुनिक युग के सम्पूर्ण भिन्न परिवेश में एक आश्चर्य मन्त्र बल से अक्षुण्ण और अविकृत रूप से संरक्षित हुई है ।

'हाँसुलि बाँकेरे उपकथा' गहन सांकेतिक तात्पर्य मण्डित उपन्यास है । महाकाव्य का संघातपूर्ण स्वरूप इस उपन्यास में बिम्बित होता है । कहारवंश के जीवन कहानी में से लेखक ने एक संस्कृति के विपर्यस्त होने का इतिहास वर्णित किया है।[1]

---

1. बंगसाहित्ये उपन्यासेरधारा - श्रीकुमार बन्धोपाध्याय ।

वस्तु विवेचन

बंकिम के उपन्यास 'चन्द्रशेखर के बाद 'राजसिंह' (1882) उसी क्रम से 'आनन्दमठ' (1882), 'देवी चौघुरानी' (1884), और 'सीता राम' (1887) प्रकाशित हुआ ।

'चन्द्रशेखर' में जो कल्पना की अतिशयता का सूत्रपात हुआ है वही 'आनन्दमठ' और 'देवी चौघुरानी' में अधिक प्रकट हुआ है । इसलिए कहा जा सकता है कि विशुद्ध उपन्यासकार का आदर्श बंकिम खो बैठते हैं । विशेषतया 'आनन्दमठ' का कल्पना विलास वास्तविकता को एकदम ढाक देता है । 'आनन्दमठ' और 'देवी चौघुरानी' का घटनाकाल लगभग एक है । अंग्रेज राजत्व के सूत्रपात के पूर्वक्षण, 'देवी चौघुरानी' की आख्यायिका 'आनन्दमठ' के थोड़े वर्ष बाद में ही होती है । बंकिम का अधिकांश रोमांस इस अंग्रेज राजत्व की सूचना के समय की पृष्ठभूमि में आया है । 'आनन्दमठ' अथवा'देवी चौघुरानी' में उन्होंने जो चित्र प्रस्तुत किया है वह लगभग आधुनिक युग का है इसलिए उनमें तत्व का समावेश घनीभूत हुआ है । साधारण जीवन के ऊपर ऐतिहासिक अवस्था का प्रभाव स्पष्ट रूप से विकसित हुआ है ।

इन दोनों उपन्यासों के पाठकों के मन में सबसे अधिक एक बात पर

सन्देह होता है । पाठक सोचना है सत्यानन्द और भवानी पाठक जिस तरह की जलती हुई देशभक्ति, राजनैतिक दूरदृष्टि और प्रतिष्ठान गठन कुशलता दिखाते हैं वह उस युग के किसी बंगवासी के लिए संभव था या नहीं : किसी व्यक्तिविशेष के कल्पना के प्रसार में इस तरह की भावना रहने पर भी उसे एक वास्तविक प्रतिष्ठान में परिवर्तित करने की शक्ति कैसे संभव हुई ! सत्यानन्द अथवा भवानी पाठक को राजनीति की शिक्षा नहीं थी । देशात्मबोध की भावना उन लोगों में कैसे उदित हुई इन्हीं सन्देहों से पाठक आन्दोलित होता है । वर्तमान अनुभव से यह संदेह और जटिल हो जाता है । इस सौ तरह की दूरियों द्वारा खण्डित विच्छिन्न जाति को एकता के बन्धन में बाँधता एक ही आदर्श से अनुप्रेरित (अनुप्राणित) करना कितना कठिन है, आज के राजनैतिक प्रयास का हर एक कदम उसका प्रयास है। बंकिम के युग में यह कठिनाई उपलब्ध थी या नहीं यह ज्ञात नहीं है । आदर्श और वास्तविकता, कल्पना और कार्य में जो दूरी है उसे भी नहीं नापा जा सकता । इस लिए कहा जा सकता है कि कल्पना की एक सतेज स्फूर्ति और एक अनायास साहस उस समय भी था। उसी कल्पना के बल से बंकिम ने अनेक असंभव को संभव कर दिया है । जैसे - मुसलमान राजत्व के ध्वंस के समय एक विशाल राजनैतिक आदर्श प्रतिष्ठा का चित्रण किया गया है ।

जब चारों तरफ ध्वंस और वेदना की लीला चल रही हो उस समय

एकाएक जीवन के आकस्मिक और अप्रत्याशित गुणों को विकास असंभव नहीं होता। जिस समय राज शासन और सामाजिक जीवन के पुराने सारे बन्धन टूट रहे थे, जब दुर्भिक्ष का दानव मनुष्य की मानवता को नष्ट कर रहा था और इस ध्वंस लीला से पारिवारिक सीमा से लोग निकलकर बाहर आ पड़े थे, उस समय एक नवीन भावना, नवीन चिन्तन, नवीन आदर्श भविष्य की शांति के लिए वर्तमान का कर्म निर्देश उन लोगों के मन में विकसित हो सकता है, ऐसा असंभव नहीं । इसलिए चारो तरफ जब अमानविकता (अमानवीयता) दृष्टिगोचर हो रही थी उस समय मानवीयता का एक विकास बंकिम चन्द्र रचित उपन्यासों में वर्णित होता है । इसलिए सत्यानन्द तथा भवानी पाठक का संघबद्ध प्रतिष्ठान असम्भव सिद्ध नहीं होना चाहिए । समाज के सहज नेता जिन लोगों के हाथ में टूटी हुई समाज शक्ति का थोड़ा अंश तब भी रह गया है, ऐसे प्रभावशाली व्यक्ति चारों ओर फैले हुए अत्याचार और अराजकता के प्रभाव को रोकने के लिए प्रयास करेंगे, ऐसा असंभव नहीं है । शायद उन लोगों की मूल प्रेरणा आत्मरक्षा प्रवृत्ति से ही उदित हुई । परन्तु क्रमशः विशाल आदर्श धारण करने के लिए भी तैयार हो गया इसलिए चारों तरफ की फैली हुई अव्यवस्था के भीतर महान प्रतिष्ठान का उद्बोधन बंकिम चन्द्र ने सार्थक दिखाया है ।

'आनन्दमठ' का सन्तान सम्प्रदाय किस तरह अपने आपको तैयार करता है उसकी सन्तोषजनक व्याख्या उपन्यासकार ने दी है । सन्तान सम्पद्राय के गठन

के मूल में जिस आश्चर्यजनक द्वेषप्रेम, उन्नत आदर्शवाद, राजनैतिक दूरदर्शिता और समस्त प्रलोभनजयी निस्स्वार्थता का परिचय मिलता है यह उस काल के ही क्यों इस काल के भी अनेक उन्नत आदर्शों को पीछे छोड़कर आगे बढ़ गया है । यही 'आनन्दमठ' को उपन्यासोचित वास्तविकता का अतिक्रमण करके आदर्श लोक के राज्य में उन्नीत होने की सम्मति देता है। उसके बादसन्तान सम्प्रदाय का क्रिया-कलाप, उद्योग आयोजन आदि का वर्णन करते समय बंकिम चन्द्र अनेक स्थलों में वास्तविकता का लंघन कर गये हैं ।

उपन्यास में दुर्भिक्ष पीड़ित मानव का जो दानवोचित विकास दिखाया गया है वही उस युग का यथार्थ स्वरूप है । वास्तविकता की दृष्टि से यह अध्याय उपन्यास के दूसरे अंश से अलग है । बंकिम की आख्ययिका यहाँ द्रुत गतिशील है।

'देवी चौधुरानी' 'आनन्दमठ' के दो वर्ष पश्चात प्रकाशित हुआ । 'आनन्दमठ' की तरह इसमें भी उच्च आदर्श द्वारा अनुप्रेरित दस्यु दल की अवतारणा की गयी है । परन्तु 'देवी चौधुरानी' के उपाख्यान में असाधारणत्व का स्वर रहने पर भी वास्तविकता का ही यहाँ प्राधान्य है । इसमें जो कुछ अलौकिक उपादान है वह सब हम लोगों के सहज वास्तविक जीवन में भी मिल सकता है । भवानी पाठक अथवा सत्यानन्द अतिमानव महापुरूष के स्तर पर प्रतिष्ठित नही होते हैं । प्रफुल्ल

की निष्काम धर्म शिक्षा में जो कुछ अवास्तविकता है वह समस्त उपन्यास को प्रभावित करने में असमर्थ है । हम लोगों के सामाजिक जीवन के सहज प्रेममय अथवा क्षुद्र विरोधमय चित्र ही इस उपन्यास में अधिक विस्तारित है । ग्रन्थ के शेष भाग में कठोर वैराग्य और देशहित के व्रत के ऊपर गार्हस्थ धर्म का जय ही घोषित हुआ है ।

'देवी चौधुरानी' की सूचना सम्पूर्ण रूप से वास्तविक है। सामाजिक कारण से निरपराध स्त्री का परित्याग, आधुनिक युग में भी लेखकों के लिए यह विषय बहुत ही परिचित है । हमारे हिन्दू समाज में एक स्वाभाविक संयम, भक्तिशीलता और नियमानुवर्तिता के लिए विद्रोह बहुत तीव्र रूप से व्यक्त नहीं हो सकता । वह एक गोपन क्षोभ के रूप में हृदय के भीतर रहता है । ऐसे अवरूद्ध भावों का प्रभाव हम लोगों के जीवन के लिए सर्वदा हितकर और पौरुष विकास के अनुकूल होता है, ऐसा नहीं कहा जा सकता । प्रचलित रीति के विरूद्ध खड़े होने का साहस और मनोवल नहीं रहता है । इसलिए प्रचलित पथा का ही अवलम्बन कर लिया जाता है । कला की दृष्टि से ऐसा चरित्र चित्र बहुत सार्थक नहीं सिद्ध होता।

बंकिम ने ब्रजेश्वर के चरित्र में इन कमजोरियों का परित्याग करना चाहा है । बंगाल के समाज की कई एक विशेषताएं ब्रजेश्वर के चरित्र में स्पष्ट ही व्यक्त होती हैं । उसका बहुपत्नीत्व, सागरबउ, नयानबउ तथा प्रफुल्ल के साथ उसके

आचरण में भिन्नता और उसके दाम्पत्य के सम्बन्ध में ब्रह्म ठकुरानी के साथ सरस कथोपकथन और परिहास कुशलता से उसके मानवत्व का परिचय मिलता है । प्रफुल्ल के साथ आचरण में उसके एक संयत और गहरे प्रेम का परिचय मिलता है । 'देवी चौधुरानी' बनी हुई प्रफुल्ल के पास जब ब्रजेश्वर बन्दी के रूप में लाया जाता है और देवी के सहचरियों के हाथ उसकी बड़ी दुर्दशा होती है तब आदर्श लोक से उतर कर वास्तविक जगत का आसन उसके लिए और दृढ़ बन जाता है ।

'देवी चौधुरानी' उपन्यास में प्रफुल्ल की निष्काम धर्म में दीक्षा कभी भी सन्यास की ओर उसे नही आकर्षित कर सकी। नारी सुलभ मधुरता खोकर आसक्ति -लेशहीन कठोर हृदया नहीं बन सकी । यह निष्काम धर्म प्रफुल्ल के यथार्थ चरित्र को अभिभूत नहीं कर सका । उसके प्रेमोन्मुख कोमल नारी हृदय के ऊपर गार्हस्थ धर्म के प्रबल प्रभाव ने उसे आच्छन्न करके रखा था । शिक्षाकाल के समय भी हम लोगों ने देखा वह एकादशी के दिन मछली खाने के निषेध का निरन्तर उल्लघंन करती है । प्रफुल्ल बराबर पति प्रेम विह्वलता, आदर्श गृह लक्ष्मी के रूप में ही दिखाई देती है । इससे ऊँचे किसी आदर्श के साथ उसका सम्बन्ध पाठक की रसानभूति को स्पर्श नहीं करता ।

'सीताराम' ॥1887॥ उपन्यास को 'आनन्दमठ' और 'देवी चौधुरानी' के

साथ एक स्तर में रखा जाता है । तीनों उपन्यासों में ही धर्म तत्व की व्याख्या ने औपन्यासिक चरित्र चित्रण के ऊपर विशेष प्रभाव विस्तार किया है । इन तीनों को मिलाकर बंकिम का 'त्रयी' कहा जाता है । 'आनन्दमठ' में आदर्शवाद ने उपन्यास के वास्तविकता को लगभग एकदम आच्छादित कर डाला है । 'देवी चौधुरानी' में धर्म तत्व विश्लेषण अत्यन्त प्रबल होकर भी वास्तविक चरित्र चित्रण को अभिभूत नहीं कर सका । 'सीताराम' में भी एक धर्म तत्व की समस्या उपन्यास का प्रतिपाद्य विषय है । परन्तु यहाँ भी धर्म तत्व उपन्यास की अन्तर्दृष्टि को क्षीण नहीं कर पाया। परन्तु चरित्रों के सूक्ष्म परिवर्तन साधन और उसके कारण विश्लेषण को ग्रन्थकार ने बड़े अपूर्व ढंग से दिखाया है ।

'सीताराम' उपन्यास का धर्मतत्व बंकिम का मुख्य उद्देश्य था । इसकी भूमिका में गीता से उद्धृत श्लोक समूह उसका यथार्थ प्रमाण है । गीता आलोचना के फल से बंकिम के मन में गीता के निष्काम धर्म का माहात्म्य गहरे रूप से अंकित हो गया था और जीवन के अन्तिम भाग के उपन्यास समूहों में चरित्र सृष्टि द्वारा और मानव जीवन के घात - प्रतिघात (क्रिया-प्रतिक्रिया) में उन्होंने इस धर्म की विशेषता, इसका आदर्श और साधन पथ में बिघ्न समूहों को स्पष्ट करने की चेष्टा की है । 'सीताराम' उपन्यास में स्वभाव से महान एक चरित्र पर इस पाप की सूक्ष्म क्रिया-प्रतिक्रिया और चरम परिणति की आलोचना की गयी है । 'सीताराम' पढ़ते-पढ़ते यदि हम लोग गीता का धर्म तत्व भूल जायें तो भी इसके कला सौन्दर्य और मानवीयता की कोई हानि

नहीं होती है । 'सीताराम' की जीवन समस्या पर हिन्दू समाज और धर्म तत्व के प्रभाव ने आकर इसे जटिल कर दिया ।

बंकिम ने धर्मतत्व और अतिप्राकृत की तरफ बहुत ध्यान दिया है । श्री और जयन्ती इन दोनों चरित्रों के भीतर से यही प्रस्फुटित होता है । श्री के साथ सीताराम का सम्पर्क हिन्दू ज्योतिष शास्त्र के ऊपर के विश्वास का फल है और उपन्यास के अन्तिम भाग में जयन्ती - शिष्याश्री के सन्यास के प्रति निष्ठा सीताराम के मानसिक भ्रम को जन्म देती है और अध:पतन की गति द्रुत होती रहती है । 'सीताराम' के अपने निजी जीवन के ऊपर धर्म तत्व का प्रभाव लक्षित नहीं होता । बंकिम की विशिष्टता यह है कि उन्होंने धर्म तत्व व्याख्या को जीवन के मनस्तत्व मूलक विश्लेषण के साथ सुन्दर रूप से मिला दिया है ।

श्री के साथ सर्वप्रथम समझौता उसके बाद श्री का परित्याग करने का कारण व्यक्त होते ही पति के अमंगल भय से भयभीत होकर श्री आखों मे ओझल हो जाती है । यह श्री सीताराम के मानसलोक में और उज्ज्वल होकर प्रतिष्ठित होने लगती है । उसके बाद परिवर्तिता सन्यासिनी श्री के साथ मिलन के बाद सीताराम की रूप तृष्णा और प्रबल हो उठती है । उसके नैतिक जीवन का आधार तत्व हिलने लगता है । उपन्यासकार ने बहुत सुन्दर रूप से इस प्रवृत्ति की भीषण क्रिया सीताराम

के आचरण में स्पष्ट की है । 'विषवृक्ष' में जमींदार नगेन्द्र नाथ कुन्दनन्दिनी के प्रेम में आवद्ध होकर और अपने साथ संघर्ष करके आहत होकर मद्यपान करने लगे और बेचारे नौकरों को मारपीट कर अपने अन्तर्दाह का परिचय देने लगे । स्वाधीन राजा सीताराम विवाहिता पत्नी के ऊपर पति का अधिकार प्रयोग कर पाने पर उग्र रक्त के नशे से उन्मत्त हो उठे और अपनी इस उन्मत्तता से राज्य को विश्रृंखल बना दिया ।

यह चरम दुर्गति और अद्य:पतन का अन्त नहीं था । श्री अपने सन्यास पालन की क्षमता में आस्था खोकर और कुछ राजा के अध:पतन के गतिरोध करने के लिए जयन्ती की सलाह से उसी के छद्मवेष की सहायता से प्रमाद उद्यान से अन्तर्हिता होती है (खो जाती है)। सीताराम हिंस्र पशु की तरह इससे क्रुद्ध होकर जयन्ती के प्रति आक्रमण करने के लिए आगे बढ़ने लगता है । उसकी यही रूप तृष्णा सर्वग्रासी कामानल की शिखा में प्रज्ज्वलित हो उठती है । आत्मोत्सर्ग में सदा तैयार हिन्दू राज्य प्रतिष्ठाता महामहिम सीताराम एक घृणित कामार्त पशु में परिणत हो जाता है। सीताराम चरित्र का यह भीषण परिवर्तन अद्भुत मनस्ततत्व विश्लेषण द्वारा बहुत ही स्वाभाविक हो उठा है ।

उपन्यास के अन्तिम दृश्य में आसन्न मृत्यु के सामने भयंकर तोप की आवाज की प्रतिध्वनि में सीताराम का नैतिक पुनरूद्धार साधन करके उपन्यासकार ने उसके धर्मविश्वास का परिचय दिया है ।

रोमासं की अतिशयता तथा असंगति श्री और जयंती के चरित्र के ऊपर प्रयोग की गयी है । श्री का चरित्र उपन्यास में सबसे अधिक अवास्तविक दोष से भरा हुआ है । श्री के चरित्र का महत्वपूर्ण परिवर्तन पाठक के सामने विश्लेषित या दर्शित नहीं हुआ है । श्री के पति प्रेम का विवरण कितना गहरा और मर्मस्पर्शी है, इसी से उसके परिवर्तन की कहानी पर विश्वास कर लेना पड़ता है । सीताराम वास्तविक और असाधारण का एक सुन्दर सामंजस्य है । पाप पुण्य के भेद के अनुसार दण्ड पुरस्कार वितरण की क्षुद्र प्रवृत्ति उपन्यास की विशालता को संकुचित नहीं कर सकी । उच्चांग त्रासदी की तरह 'सीताराम' उपन्यास में मानव मन की रहस्यमयी प्रकृति के ऊपर एक उज्ज्वल आलोक रेखापात् किया है ।

ऐतिहासिक उपन्यास में कल्पना की क्रिया कितनी दूर तक प्रसारित हो सकती है, 'राजसिंह' उपन्यास की आलोचना से यह स्पष्ट व्यक्त होता है । ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास के मूल सत्य को विकृत नहीं कर सकता । तुलना में क्षुद्र घटनाओं को अपनी स्वतत्रंत कल्पना से दिखा सकता है । इतिहास की कार्य कारण परम्परा जहाँ बहुत स्पष्ट नहीं है स्वतंत्र कल्पना वहाँ छोटे-छोटे नये योग सूत्र की रचना कर सकती है । 'राजसिंह' ऐतिहासिक उपन्यास के रूप में 'दुर्गेशनन्दिनी', 'चन्द्रशेखर' अथवा 'सीताराम' से मूलतः भिन्न है । इस उपन्यास में ऐतिहासिक अशं ही मुख्य है । इतिहास यहाँ पारिवारिक जीवन के साथ नितान्त

घनिष्ठ रूप से जड़ित है ।

मनुष्य के क्षुद्र व्यक्तिगत जीवन के ऊपर बरसने वाले बादल की तरह ऐतिहासिक घटना का प्रभाव नाना संभावना से परिपूर्ण होकर उपन्यास की गति को निर्धारित किया है । 'राजसिंह' में मानव चरित्र विश्लेषण की दृष्टि से विचार करने पर इतिहास के प्रभाव की अनिवार्यता मुख्य रूप से अनुभूत होती है । इस उपन्यास की घटनाओं में युगान्तकारी विप्लव के भीतर साधारण निम्न श्रेणी के मनुष्य का कोई स्थान नहीं है । इसके पात्र समूह उच्च पदस्थ, सभी राजनैतिक घटनावर्त, विक्षोभ कम्पित प्रदेश में इतिहास के आवेष्टनी की परिधि में ही आविर्भूत होते हैं । चंचल कुमारी राजकन्या अपने आभिजात्य गर्व से गौरवान्विता दो प्रतिद्वन्द्वी राजाधिराज के संघर्ष के उपयुक्त कारण और योग्य पुरुस्कार का आधार है । निर्मल कुमारी ने अंश गौरव में सामान्य होकर भी अपनी बुद्धि और साहस के प्रभाव से एक राजनैतिक विक्षोभ के ठीक केन्द्र बिन्दु में अपने आपको प्रतिष्ठित कर दिया है । उनका विवाहित जीवन अतल समुद्र के नीचे कहाँ खो गया है? वह राजपूत कुल गौरव की प्रतिनिधि होकर गौरवपूर्ण अभ्रान्त पदच्छेद से राजनैतिक जगत के उत्थान-पतनमय मार्ग में विचरण करती है और स्वयं बादशाह के सामने जाकर अपनी चतुरता दिखाती है । गरीब 'दरिया' केवल समाचार बेचने वाली नहीं बल्कि उसने और ऊँचे अधिकार से सहजादी की प्रणय प्रतिद्वन्द्विनी के रूप में प्रासाद समूहों में प्रवेशाधिकार प्राप्त कर लिया

है । उपन्यास के समस्त चरित्रों में केवल एक मानिकलाल ने अपने अभानवीय रूपान्तर और उच्चपद को प्राप्त करके भी अपने स्वभाव की धूर्तता के लिए ही अपनी पहचान की रक्षा की है ।

दूसरी तरफ से भी इतिहास पारिवारिक जीवन के भीतर प्रवेश करता है और उसकी स्वाभाविक स्वतन्त्रता को संकुचित कर देता है । निर्मल कुमारी का विवाह तो युद्ध का एक अप्रत्याशित फल मात्र है। औरंगजेब, राजसिंह तो ऐतिहासिक व्यक्ति हैं ही : कल्पना द्वारा रचित समूह - चंचल, निर्मल मानिकलाल आदि अपने व्यक्ति स्वातन्त्र्य का विसर्जन करके ऐतिहासिक कोलाहाल में निजी आवाज खो बैठे हैं।

इस इतिहास के एकाधिपत्य के विरोध में बंकिम ने भी संघर्ष नहीं किया है, ऐसा नहीं। इतिहास से व्यक्तिगत जीवन की स्वतन्त्रता की रक्षा करने के लिए उन्होंने अथाह प्रयास किया है और आंशिक रूप से सफलता भी प्राप्त की है । जहाँ राजनीतिक कारण से आग जली है वहाँ पर भी बंकिम चन्द्र मानसिक संघर्ष की अग्नि शिखा की क्रीड़ा दिखाने में समर्थ हुए हैं । इस इतिहास के नागपाश के भीतर मानव हृदय की सबसे अधिक स्वतंत्र स्फूर्ति मुबारक और जेबुन्निशा की प्रणय कहानी में हुई है । यहाँ बंकिम चन्द्र ने इतिहास के बन्धन के काट से उठकर अपने उपन्यासकार की प्रतिभा का पूर्ण परिचय दिया है ।

उपन्यास में व्यक्तिगत जीवन का सम्पूर्ण विकास संभव हुआ है जेबुन्निशा के चरित्र में। जेबुन्निशा ऐतिहासिक चरित्र है परन्तु ऐतिहासिकता ही उसका मुख्य आकर्षण नहीं । उसके भीतर जो दुःख की ज्वाला से पूर्ण प्रणयावेगशाली मानव हृदय है वही उसका यथार्थ परिचय है । चरित्र विश्लेषण अगर उपन्यास का प्राण है तो 'राजसिंह' में इसका अवसर बहुत कम है । इतिहास के प्रबल शोघ में चरित्र की विशेषता बह जाने लगती है । इस विशाल समुद्र मन्थन से जो रस प्राप्त किया जाता है वह हमारे साधारण जीवन के लिए बहुत अधिक तीव्र है । युद्ध करने के लिए तैयार दो सेनादलों के बीच खड़ी हुई चचंल कुमारी के मुख मेंजो तेजपूर्ण वाक्य निकलने लगता है वह जीवन के वीरत्वपूर्ण स्थान पर व्यक्त हाने में उपयुक्त है। 'राजसिंह' में वर्णित घटना समूह इतना विचित्र और चित्ताकर्षक है कि पाठक का हृदय चरित्र विश्लेषण करना भूल जाता है । रोमांचकारी घटनाओं के बीच चरित्रों का विकास और परिणति सहज रूप से संभव नहीं हो सकता । परन्तु केवल आख्यायिका के रूप में एक संघर्ष मूलक महायुद्ध के जीवन्त और उद्दीपनापूर्ण वर्णन के रूप में 'राजसिंह' अतुलनीय है ।

रवीन्द्र नाथ के 'शेषेर कविता' (1930) उपन्यास की तुलना में 'योगायोग' (1929) भाव और गठन की दृष्टि से भिन्नधर्मी सिद्ध होता है । इनमें ऐक्य कम हैं । 'योगायोग' उपन्यास में बुद्धि की तीक्ष्णता के साथ भाव गंभीरता का

समन्वय बहुत सुन्दर नहीं हो सका । विशेषतया इसके गठन में अनेक शिथिल धाराएं हैं परन्तु 'शेषेर कविता' और 'योगायोग' दोनों उपन्यास में एक आकस्मिकता परिलक्षित होती है । ग्रन्थ के प्रथम और द्वितीय अध्याय में मधुसूदन का वंश परिचय और पूर्व इतिहास विशद रूप से वर्णित हुआ है । तृतीय से नवम् अध्याय तक कुमुदिनी का पैतृक इतिहास मिलता है । कुमुदिनी की तरफ से किसी तरह की विरोध की संभावना नहीं है । इसलिए पूर्व इतिहास इतना विस्तृत होना उचित नहीं था। उच्चवंशीय हिन्दू परिवार में इस प्रकार का मधुर आत्म विर्सजनशील दाम्पत्य सम्पर्क इतना स्वाभाविक था कि उसके लिए विशेष व्याख्या की आवश्यकता नहीं थी, ऐसा नहीं लगता ।

इस प्राथमिक अध्याय की भाषा और वर्णनरीति उपन्यास के लिए उपयोगी नहीं है । लगता है कि उपन्यासकार ने किसी विशेष उद्देश्य से इसकी अवतारणा की है । इसमें अन्तर्निहित करूण रस अधिक प्रभाव विस्तार नहीं कर सकता ।

ग्रन्थ के अन्तिम भाग में एकाएक कुद्ध प्रबल रूप से पूर्व संघर्ष का परिचय मिलने लगता है । कुमुदिनी के पतिगृह में लौट आने के बाद उसकी प्रतिक्रिया कैसे हुई उसका विवरण देना लेखक के लिए उचित था परन्तु वैसा वर्णन नहीं मिलता ।

पुत्र सम्भावना अनेक समस्याओं के समाधान के रूप में एकाएक आ जाती है । उनके दाम्पत्य विरोध का कातूहलपूर्ण इतिहास एकाएक इसी तरह समाप्ति में आकर पहुँच जाता है । कुमुदिनी और मधुसूदन के भीतर जो मूलभूत रूप से भेद सृष्टि हुई है उसकी इस तरह सहज और साधारण उपाय से निष्पत्ति हो जाना क्या इतना स्वाभाविक है ! इसके अतिरिक्त कुमुदिनी के पतिगृह त्यागके परवर्ती अध्याय में केवल स्त्री जाति का अधिकार और स्त्री स्वाधीनता में पुरुष के हस्तक्षेप की सीमा विचार को लेकर वितर्क प्रस्तुत किया गया है । विवाह के बाद से इन दो सम्पूर्ण विपरीत स्वभाव की मानवात्मा के बीच सघर्ष आरम्भ हो जाता है । इस संग्राम में जय पराजय के स्तर और पविर्तन का चरम समय बहुत विशेषता के साथ विश्लेषित हुआ है । मधुसूदन के विवाह में प्रेम की गन्धमात्र नहीं थी । यह केवल वंश अभिमान से उत्पन्न उत्पीड़न प्रियता की निष्ठुर अभिव्यक्ति थी । उसके (कुमुदिनी) श्वसुर वंश के अपमान के बाद मधुसूदन ने जब कुमुदिनी को विवाह के बन्धन में बाँधकर यात्रा की तब यह बन्धन यथार्थ रूप से बन्दी का लौह श्रृंखला बन गया ।

कुमुदिनी की अनभ्यस्त अपमान वेदना को भी मधुसूदन ने स्वीकार नहीं किया । बहुत छोटी - छोटी बातों से कुमुदिनी की स्वतंन्त्र इच्छाओं को आहत और अपमानित किया । परन्तु वह प्रतिघात की चेष्टा न करके चुपचाप असहयोग के अस्त्र का अवलम्बन करती है । इस तरफ मधुसूदन के भीतर भी एक परिवर्तन चल रहा था।

उसके दाम्भिक अत्याचार प्रियता की कठोरता में भाव-व्यतिरेक का अभ्युदय होने लगता है । कुमुदिनी का रूप और उसकी सरलता मधुसूदन को एक नई अनुभूति के स्पर्श से आच्छन्न करने लगते हैं । मधुसूदन कुमुदिनी के पास अपने गर्वोन्नत सिर को थोड़ा सा नत करने लगता है

मधुसूदन के इन आचरणों के कारण कुमुदिनी की कर्तव्य समस्या और घनीभूत होती है । मधुसूदन की यथेच्छाचारिता में जो विमुखता स्वाभाविक थी वही आज कुमुदिनी के समक्ष कुछ कठिन समस्या के रूप में दिखाई देने लगती है ।

इस प्रेम अभिनय के चित्र में भोगलिप्सा और स्थूल आकर्षण का चित्र बहुत सुन्दर रूप से अंकित हुआ है । मधुसूदन श्यामा को दासी से अधिक सम्मान नहीं दे सकता । श्यामा भी वस्त्र औरअलंकार के अतिरिक्त कोई अधिकार माँगती तो उसे अपगृहिणी का छन्द गौरव प्राप्त हो सकता था । लेखक की सूक्ष्मदर्शिता का विशेष प्रमाण यह है कि श्यामा के प्रति मधुसूदन के आकर्षण की एक सम्पूर्ण चरित्रानुसार व्याख्या की है । श्यामा को मधुसूदन ने प्रणयिनी के रूप में नहीं चाहा, इन्द्रिय भोग के लिए भी नहीं चाहा परन्तु विध्वस्त आत्म सम्मान पर शीतल स्पर्श के लिए चाहा था ।

उपन्यास के अन्यान्य चरित्रों के सम्बन्ध में कुछ विशेष उल्लेख योग्य नहीं मिलता । कुमुदिनी में कुछ विशेष उल्लेख योग्य नहीं मिलता । कुमुदिनी का चरित्र माधुर्य अनादर के आवेष्टन में बहुत सुन्दर रूप से विकसित हुआ है । बाहर से अन्तर्निहित सौन्दर्य उसमें अधिक है ।

'शेषेर कविता' (1930) उपन्यास की समन्वय सुषमा और कवित्वमण्डित विश्लेषण रवीन्द्रनाथ के परवर्ती उपन्यास समूहों में सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त करता है । विषय का ऐक्य और आलोचना की समग्रता के कारण अन्य उपन्यासों से यह श्रेष्ठ माना जाता है । विषयवस्तु का ऐक्य इस उपन्यास को विशिष्ट बनाता है । अमित और लावण्य की प्रणय कहानी असाधारणता की दृष्टि से अतुलनीय है । अमित के चरित्र में एक सदा चंचल प्रथाबन्धन मुक्त, प्राणस्पन्दन है वही उसकी समस्त चिन्तनधारा और कर्म प्रयास में एक ऐसा नृत्यशीलगति वेग देता है जो हम लोगों के साधारण पदातिक जीवन यात्रा के सम्पूर्ण रूप से विपरीत है परन्तु यह उपन्यास रवीन्द्र की अद्भुत देन है । उनके उपन्यास सूक्ष्म मनस्तत्व में निरन्तर जीवन साधारण के हृदय में आकर्षण और कौतूहल जगाने में समर्थ हैं। साधारण मनुष्य के प्रथाबद्ध जीवन की यांत्रिक गति में प्रेम जैसे एक विचित्र अनुभूतपूर्व छन्द की ध्वनि की तरह प्रतिध्वनित होता है। जीवन में प्रेम का प्रथम आविर्भाव वसन्तवायु की तरह हृदय को नित्य नवीन दिशाओं में विकसित करने की प्रेरणा से व्याकुल कर देता है । परन्तु 'शेषेर कविता' में यह

साधारण ज्ञान एक अनन्य साधारण पुरुष और नारी के व्यवहारिक जीवन में प्रतिफलित होकर वास्तविक जगत के रूप को स्पष्टता देने में समर्थ हुआ है । समस्त उपन्यासएक अमर कविता की तरह गूँजता रहता है । इस उपन्यास में नियम नियन्त्रण रहने पर भी एक अभावनीय आकस्मिक परिणति का चमत्कार और असंगति, प्रेम का यह समस्त रहस्यमय वैचित्र्य उपन्यास में सम्पूर्ण रूप से आलोचित और प्रतिबिम्बित हुआ है ।

अमित और लावण्य के क्षेत्र में प्रेम की चिरचंचलता और विपुलगति वेग किसी नियमित नियंत्रण के अधीन नहींहै । इसका दूर तक प्रसार और रहस्यमय अस्तित्व निरन्तर विश्लेषित होने का और आगे बढ़कर अपने आपको पूर्ण व्यक्त करने का अवसर पाता है । मुक्त प्रेम के आह्वान में प्रेम के मार्ग पर बढ़ने के लिए लावण्य बाध्य हो जाती है । अमित का यह प्रेम निवेदन उपन्यास साहित्य में अतुलनीय है/ अमित के साथ गहरे परिचय के फलस्वरूप लावण्य के मन में एक संशय उदित होता है । वह समझती है कि अमित के सदा परिवर्तनशील कल्पना और आदर्श के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने की क्षमता उसमें नहीं है । इस विषमता की आशंकापूर्ण संभावना प्रेम की तरफ तीव्रतम गति में निरन्तर प्रवाहित होती रहती है ।

अमित के संस्पर्श में लावण्य समझ गयी है कि वह केवल मात्र ग्रन्थ कीट नहीं है बल्कि देह और मन में प्रेम अनुभव करने की तरह उत्ताप उसमें है । अमित

ने बड़े वेग से उसको धक्का दिया और उससे हृदय के भीतर सोये हुए अनेक भावों को जगा दिया । अमित के लघु हास-परिहास के भीतर एक सकरूण आवेदन भी ध्वनित होता है । उसके आचरण में एक अस्वीकृत गम्भीर भाव आ जाता है । अनेक घटनाओं के पश्चात अमित अपने मित्रों के पास लावण्य के विषय को व्यक्त करने में एक कुण्ठापूर्ण आत्मगोपन चेष्टा करने लगता है । शिलांग की निर्जनता में जो प्रेम समृद्ध और विकसित हुआ और कलकत्ते के विदेशी अनुकरण वाले समाज में तीक्ष्ण समालोचना में वह सूखने लगता है । अन्त में लावण्य अमित तथा केटी के बीच हृदय परिवर्तन का सन्धान पाकर अपनी समस्त कल्पना को छोड़कर अपना समस्त दावा लौटा लेती है । केटी 'केतकी' में रूपान्तरित हो जाती है और अमित के समक्ष आत्मसमर्पण करती है । शोभनलाल जैसे अमित को रोकने में समर्थ होता है उसी तरह केटी भी लावण्य को रोकने में समर्थ हो जाती है ।

'शेषर कविता' उपन्यास में उच्चांग कल्पनाशक्ति की प्रचुरता और अभिव्यक्ति की बहुमुखिता ने इस भाषा और रचना शैली की नूतनता से आलंकृत कर दिया है । तीक्ष्ण उक्तियों और अर्थ गौरव से इन उक्तियों में एक दीप्ति सी आ गयी है । रवीन्द्र नाथ के रचना समूह निरन्तर विचित्र अभिव्यक्तियों से भरे हुए होते हैं । उनकी उक्तियाँ निरन्तर उधृत करने योग्य बन गई है । साधारणतया इन उक्तियों का प्रचार. और प्रसार इतना अधिक है कि किस उपन्यास में यह प्रयुक्त है, स्मरण नही रहता । एक लेखक के ग्रन्थों में चिरन्तनीय उक्ति रहने से वह अपने

आप चिरन्तन बनने में समर्थ हो जाता है ।

आशापूर्णा देवी का 'उत्तरण' ॅ1963ॅ एक समस्यापूर्ण गृहस्थ जीवन का उपन्यास है । इसमें लेखिका ने कुसंसर्ग के पभाव से चोरी करने वाली एक तरूणी के जीवन इतिहास का विवरण दिया है । घर की गृहिणी ने उसकी पहले की कहानी सुनकर उसे केवल क्षमा ही नहीं किया बल्कि अपने गृहस्थी के काम में गुरूत्वपूर्ण जिम्मेदारी दी है । कुछ दिन में वह पालिता कन्या स्नेह मर्यादा पर प्रतिष्ठित हो जाती है । उनके दो पुत्र और एक कन्या उनके इस आचरण का समर्थन कर पाते हैं परन्तु अन्त में अपनी माता से सहमत हो जाते हैं। इधर उसी चैताली को लेकर दोनों भाई कौस्तुभ और कौशिक में एक प्रतियोगिता ठन गई । बड़े भाई की पत्नी चिररूग्णा अपर्णा ईर्ष्या और विद्वेष के वशीभूत हो जाती है । अन्त में गहने चुराने के अपवाद से वह लड़की चैताली इतने दिन के आश्रय का त्याग करने पर विवश हो जाती है । लेखिका ने इस मनस्तात्विक जटिलता की एक सन्तोषजनक आलोचना भी की है । परन्तु कहानी की भीतरी कमजोरी का अतिक्रमण नहीं कर पाई । चैताली की समस्या सहज रूप से उसके जीवन से नहीं निकली यह बाहर से आरोपित है । उसका अपना आचरण और उसके प्रति घर के औरों के आचरण में कहीं स्वाभाविक गति का अनुभव नहीं होता है । सभी कुछ कृत्रिम रूप से उसके ऊपर आरोपित हुआ है। उसके पूर्व जीवन की ग्लानि और परवर्ती जीवन की अनिश्चयता कुछ भी

वास्तविकता की भित्ति पर नहीं खड़ी हो पाती ।

1959 में प्रकाशित 'रूपसी रात्रि' उपन्यास में अचिन्त्य कुमार एक नूतन आँगिक और रचना रीति का परिचय देते हैं । इस उपन्यास में तीन परस्पर असम्बद्ध प्रेम कहानियाँ सुन्दर भाषा में व्यंजनामय संकेत के माध्यम से वर्णित हुई हैं । आदर्श कल्पना के दिव्य लोकवासियों के मध्यम वर्गीय साधारण जीवन परिवेश और मानसिकता के वेष में सज्जित करके इन लोगों को अलौकिक आलोक से आवृत्त करने की चेष्टा की गयी है । इन चरित्रों में मानवीय परिचय की अपूर्णता रह गयी है । लेखक ने कल्पना से यात्रा शुरू किया है और वास्तविक जीवन के प्रान्त को हल्के रूप से स्पर्श किया है और अन्त में कल्पना लोक में ही लौटा लिया है । इस तरह से अचिन्त्य कुमार की रचना में आदर्श और कल्पना की प्रचुरता मिलती है । 'रूपसी रात्रि' उपन्यास में जीवन का जो परिचय मिलता है वह जैसे मायामय, रहस्यमय रात्रि के आकाश की तरह प्रतिभाशित होता है । इसमें जीवन आलोचना की वास्तविकता प्रधान और मनस्तात्विक स्पष्टता नहीं है । इसमें मनुष्य का सम्पूर्ण परिचय नहीं मिलता केवल आवेग के कुछ क्षण और उसी द्वारा आलोड़ित स्पन्दन मात्र । अचिन्त्य कुमार की भाषा तीक्ष्णता से भरी हुई है इसलिए वातार्लाप की अवतारणा में परिमार्जित दीप्ति का आभास मिलता है । शब्द प्रयोग की निपुणता उसका मुख्य गुण है । साधारण रूप से सहज शब्द प्रयोग करके जो सरल अर्थ निकलता है उसी के भीतर में उन्होंने

अपनी बौद्धिक सूक्ष्मता का प्रयोग करके नवीन दीप्ति ला दी है । काव्यभाषा में जैसे कम शब्दों में अनेक सुदूर प्रसार अर्थ रहता है उसी तरह उनकी रचना में भी काव्य की गहराई आ गई । इसीलिए वास्तविकता की दृष्टि से उनकी सृष्टि जीवन के एकांश की गहरे रूप से उपलब्ध करने में सहायक सिद्ध होती है ।

आदर्शवाद के विरूद्ध कुछ तीव्र प्रतिवाद और व्यंग्य विद्रूप का प्रकाश प्रबोध कुमार सान्याल के उपन्यास में मिलता है । उनके 'प्रिय बान्धवी', उपन्यास की मौलिकता कुछ अद्‌भुत तरह की है । लगता है कि इस उपन्यास के भीतर से उन्होंने स्त्री-पुरुष के एक नये सम्पर्क की परिकल्पना का प्रचार करने का प्रयास किया है । 'श्रीमती' और 'जवाहर' के आकस्मिक मिलन के फल से उन लोगों में जो सम्बंध प्रतिष्ठित हुआ है उसमें प्रेम का तीव्र आकर्षण है । परन्तु उसमें लोलुपतापूर्ण आवेग मान-अभिमानपूर्ण पारस्परिक निर्भरता नहीं है । लगता है जैसे समाज और काव्य में दीर्घ शताव्दी से चर्चा करने के फलस्वरूप प्रेम की जो मूर्ति प्रतिष्ठित की है, प्रबोध कुमार उसे चूर-चूर करके उसके मौलिक आकर्षण को अलग करने का प्रयास करते हैं । प्रेम से यौन और आवेग मूलक इन दोनों तरह के उपादानों को हटाकर उसे मित्रता के उत्तेजनाशून्य शान्त आधार पर प्रतिष्ठित करना चाहते हैं । अन्त में श्रीमती जवाहर का आह्वान करती है प्रेम की आवश्यकता से नहीं बल्कि जवाहर के जले हुए हृदय में शान्ति का स्पर्श देने के लिए, उसके व्यर्थ

विद्रोह के विनाश को बांधकर उसके हृदय में नवीन शक्ति का संचार करने के लिए प्रेम की इस अभावात्मक संज्ञा के भीतर नवीनता है, इसमें सन्देह नहीं। प्रबोध कुमार ने इस नवीन दृष्टिकोण का परिचय दिया ।

मानिक बन्द्योपाध्याय के 'पद्मानदीर माझि' में शायद उनके द्वारा रचित उपन्यास समूहों में सबसे अधिक लोकप्रियता का अर्जन किया है । इसके विषय में नवीनता है । पद्मा नदी के माझी कुछ दुस्साहसिक और कुछ असाधारण जीवन यात्रा में अभ्यस्त है । उपन्यास का सर्वश्रेष्ठ गुण सम्पूर्ण रूप से निम्न श्रेणी के निवास स्थान और ग्राम्य जीवन के चित्रांकन में सूक्ष्म और स्पष्ट परिमिति की चेतना में ही है । इन निम्न श्रेणी के लोगों की रहने वाली जगह बहुत संकीर्ण है । इस संकीर्ण परिधि के भीतर सनातन मानव प्रवृत्ति समूहों के संहार और उच्छवास का यथायथ सीमा निर्देश इन्होंने बड़ी कुशलता से किया है । मछुआरों के गाँव की जीवन यात्रा उन्होंने विशुद्ध रूप से अंकित की है । अभिजात वर्ग की रूचि अथवा उच्च आदर्शवाद का छायामात्र यहाँ नहीं प्रवेश कर सकता । इस श्रेणी के एक मात्र प्रतिनिधि मेजो बाबू की बातें बीच बीच में सुनाई देती हैं । परन्तु वह यथार्थ घटना क्षेत्र में अवतरण नहीं करते हैं । कुबेर माली निषिद्ध प्रेम की अशांति का नुभव करता है । उसके मन क्षोभ, अभिमान और थोड़े से आवेग में संकोचन और खींचातानी का आन्दोलन चलता रहता है । परन्तु इस हृदय वेदना को लेकरवह कहीं कवि की तरह अतिशयता का अभिनय नहीं करता है । निजी शान्त नियमित कर्म प्रवाह में यह आन्दोलन मिला हुआ रहता है । कपिला की

आदिम मनोवृत्ति में छलनामयी नारी प्रकृति का चिरन्तन रहस्य मौजूद है । वह दीर्घकाल तक कुबेर के सामने मोह-जाल फैलाकर छद्म उदासीनता का अभिनय करने के बाद अन्त में किसी अनिवार्य आकर्षण से अपने जाल में स्वयं ही फंस जाती है । वह अपने समृद्ध पतिगृह का सुख छोड़कर एक अनिश्चित अभिसार यात्रा का मार्ग ग्रहण कर लेती है । पुनः कुबेर की लंगड़ी बेटी गोपी के विवाह को लेकर जब प्रतिद्वन्द्विता की अवतारणा होती है तब भी वह अपना अंश अपनी तरह अभिनीत करती है ।

परन्तु इस अति संकीर्ण जीविका अर्जन की क्षुद्र मौलिक आवश्यकता में सीमित ग्राम्य जीवन के चारो तरफ एक अपरिचित रहस्य मण्डित परिवेश प्रसारित हुआ है । जो पद्मा नदी इस धीवर समाज के जीवित रहने के योग्य प्राणवायु देने में समर्थ है वही इस रहस्य का संकेत देती है । उपन्यास में ग्राम्य समाज का जो चित्र अंकित हुआ है, छोटे-छोटे काम, छोटी-छोटी आशा-आकांक्षा, छोटे ईर्ष्या-द्वन्द्व, छोटे उच्छ्वास-आवेग इन सब को हुसेन मियाँ और उनके द्वीप जैसे उसी की ऊँची चोटी पर सूर्यालोक आलोकित ज्योतिबिन्दु की तरह प्रतीयमान करते हैं, समस्त मिलकर एक हत्चकित करने योग्य सामंजस्य और संगत पाठक को मोहित करते हैं।

ताराशंकर वन्द्योपाध्याय का 'पंचग्राम (1944) 'गणदेवता' का शेषांश - गणदेवता में जो धारावाहिक जीवन चर्या चित्रित हुई है, इसमें उसी का अनुवर्तन किया

गया है । इस उपन्यास में ग्राम्य जीवन के अभ्यस्त कक्षपथ की गति ने कुछ विशेष आवश्यकता के दबाव से संकटमय परिणति का उग्र आवेग और द्रुतगति प्राप्त किया है। विशेषतया मुसलमान किसानों की दृढ़ इच्छाशक्ति और एकता की चेतना ने जमींदार के करवृद्धि के प्रस्ताव के प्रतिरोध में संघबद्ध होकर ऐसी एक भयानक अवस्था की सृष्टि किया है जिसके साथ तुलना में हिन्दुओं की तुच्छ सामाजिक आत्मकलह बचकानी लगती है । इस मुसलमान समाज का सांस्कृतिक परिमण्डल हिन्दुओं के साथ लगभग साथ-साथ अंकित हुआ है । कृषक जीवन की आवश्यकता की समता में एकत्र अवस्थान और एक ही तरह की समस्या के निष्पेषण में हिन्दू-मुसलमान सभ्यता का मौलिक प्रभेद पश्चिम बंग में लगभग लुप्त हो गया है ।

ताराशंकर की अन्यान्य रचना के साथ तुलना में 'पंचग्राम' अधिक औपन्यासिक गुण सम्पन्न है । इसकी आख्यायिका में कई औपन्यासिक मुहूर्त सिर ऊँचा करके खड़े हुए हैं । न्यायरत्न महाशय के साथ उनके पौत्र विश्वनाथ का आदर्श विरोध एक तीव्र और भयंकर परिणति में समाप्त होता है ।

हिन्दी के प्रमुख उपन्यासकार

धर्मवीर भारती (1926)

धर्मवीर भारती के दो उपन्यास -'गुनाहों का देवता', तथा 'सूरज का सातवाँ घोड़ा ' दोनों ही पर्याप्त प्रसिद्धि पा चुके हैं । पहला अपने अत्यधिक मनोरम एवं करुणा सजल प्रेमकथा के कारण और दूसरा नितान्त नूतन शिल्प के कारण। गुनाहों का देवता में एक ऐसे विशुद्ध प्रेम की चर्चा है जो अन्त में ट्रेजेडी में बदल जाता है ।

उपन्यास की मूल भूमिका में सुधा और चन्दर हैं । सुधा डा0 शुक्ला की एकमात्र कन्या है तथा चन्दर एक प्रतिभासम्पन्न मेधावी छात्र है जो डा0 शुक्ला के नेतृत्व में शोध कर रहा है। वह उनके परिवार के सदस्य की तरह है । सुधा आठवीं कक्षा से ही चन्दर से स्नेह-शासन में रही है। वह अनायास ही उसके अनुराग में रंग जाती है । चन्दर के साथ हँसते- खेलते, लड़ते-झगड़ते, रीझते-खीझते उसके दिन बीते हैं और उसका सम्पूर्ण हृदय और व्यक्तित्व चन्दरमय हो उठा है । चन्दर भी उसे बहुत प्यार करता है । डाक्टर शुक्ला तथा सुधा के निश्छल विश्वास और सहज स्नेह से गौरव का अनुभव करता है इसीलिए वह अपने प्रेम को बहुत ऊँचाई पर रखता है । वह पवित्रतावादी आदर्शों में विश्वास रखता है । डाक्टर शुक्ला जाति व्यवस्था, कुल मर्यादा, विवाह-बन्धन आदि मेंपुराने विचार रखते हैं । सुधा के विवाह की बात चलने पर वह इसका विरोध करती है परन्तु चन्दर उसके पापा के प्यार का तथा अपने अधिकार का हवाला देकर एक प्रकार से जबरदस्ती

उसका विवाह करा देता है । सुधा के जाने के बाद चन्दर में एक विचित्र परिवर्तन आ जाता है । उसका विश्वास खो जाता है । वह सुधा के साथ बड़ी रुखाई से पेश आता है । यह परिर्वतन चन्दर के संयम को नष्ट कर देता है जिसके फलस्वरूप वह पम्मी नामक एक ईसाई लड़की से जी बहलाने लगता है । कुछ दिन बाद वह उसे छोड़ कर चली जाती है । दिल्ली में एक बार सुधा से मुलाकात होने पर वह उसके प्यार का घृणापूर्वक उपहास भी करता है जिससे सुधा व्यथित हो उठती है । किन्तु बाद में चन्दर का अन्तर्मन स्वयं उसे धिक्कारता है । वह बहुत पश्चाताप करता है। सुधा अपने पति के साथ दो दिन के लिए इलाहाबाद आती है और उसे अकेले चन्दर के साथ रहने का अवसर मिलता है । चन्दर सुधा के सामने अपने अपराधों को स्वीकार करता है और यह भी स्वीकार करता है कि वह उसके चरित्र के लिए कितना आवश्यक व्यक्तित्व रखती है।वह सुधा के बिना कितना टूट सा गया है । सुधा बड़े स्नेह से उसे जता देती है कि वह अब भी चन्दर की ही है। उसका वैवाहिक जीवन बड़ा कष्टमय है, यद्यपि पति तथा घर के लोग उसका काफी ध्यान रखते हैं । वह गर्भवती है और अत्यधिक निर्बल हो गई है । चन्दर इस बार बड़े स्नेह से सुधा तथा उसके पति कैलाश को विदा करता है । थोड़े ही दिनों बाद डॉक्टर शुक्ला का तार पाकर वह दिल्ली पहुँचता है । सुधा गर्भपात हो जाने से मरणासन्न है। बेहोशी की अवसथा में वह बार-बार चन्दर की ही याद करती है और होश में आने पर चन्दर की चरणरज लेती है । किन्तु डॉक्टर अथक प्रयास के बावजूद भी उसे नहीं बचा पाते और वह पापा, चन्दर, तथा विनती को विलखता छोड़ चल देती है । चन्दर

जो उसका देवता था जिसने गुनाहों के मार्ग पर चलकर उसे मृत्यु की ओर अग्रसर किया बिल्कुल शून्य सा रह जाता है । मुख्य कथा के साथ-साथ प्रगाढ़ भाव से आबद्ध कुछ प्रासंगिक कथाएं भी हैं जो प्रधान कथा का ही अंग है जिसमें विनती (सुधा के बुआ की लड़की) का चन्दर के प्रति भक्ति भाव । गेसू तथा सुधा की मित्रता तथा गेसू का स्वयं के प्रेम को न पाना । बन्टी का निष्फल प्रेम और पागलपन आदि ।

जहाँ तक कथानक का प्रश्न है वह बहुत ही सुगठित एवं सुनियोजित है। कहीं भी कथा को अवरुद्ध करने वाले स्थल नहीं हैं। चन्दर तथा सुधा के सरस-सुखद व्यवहार, दोनों के प्रेमाकर्षण तथा भाव द्वन्द्वों के चित्रण में पर्याप्त रमणीयता है। कथा का केन्द्र बिन्दु सुधा है इसीलिए आरम्भ से अन्ततक पाठक की दृष्टि उसी पर टिकी रहती है । सुधा के विवाह पूर्व के प्रसंग सुखद हैं । किन्तु विवाह के बाद की सारी कथा एक ऐसी व्यथा में डूबकर आगे बढ़ती है कि पाठक का हृदय आर्द्र हो उठता है । मृत्यु के निकट पहुँच चुकी सुधा के जीवन का अन्तिम दृश्य अन्यायपूर्ण, करुणापूर्ण है । उसके मुख से निकला हुआ प्रत्येक वाक्य हृदय को वेदनामयकर देता है । उपन्यास समाप्त करने के बादबहुत दिनों तक सुधा की स्मृति सजीव रहती है ।

उपन्यास में प्रेम के उदात्त रूप का चित्रण है । इस उपन्यास की कहानी से यह स्पष्ट होता है कि प्रेम वही सार्थक है जिससे व्यक्ति के विकास को सहायता मिले, उसका देवत्व जाग्रत हो, जो समाज की उपेक्षा करके, नितान्त एकान्त का वरण न कर ले वरन् समाज के कल्याण में जिसका सहयोग हो । प्रेम वही है जो मनुष्य की दुर्बलता न बनकर उसकी शक्ति बने, उसे पशुता की ओर न ले जाकर देवत्व की ओर ले जाए ।

उपन्यास की कथन शैली अत्यन्तरोचक एवं रमणीय है तथा उर्दू हिन्दी का सर्वत्र मेल है । आगे चलकर परिस्थिति के ताप में शैली भी कुछ कम वाचाल, कुछ अधिक तपी संयमित तथा सरल हो जाती है । प्रवाह अनवरुद्ध है । कोमल करुणा की अनुभूति से पाठक नहा उठता है । भाषा रूमानी है । उपन्यास किशोर किशोरियों को अधिक रोचक लगता है । रूप वर्णन में बड़ी कोमल काव्य कल्पना मिलती है । संवाद सरस और भावाभिव्यंजक है । इस उपन्यास में जीवन के परस्पर विरोधी भाव युग्म प्रस्तुत किए गये है जैसे 'पाप-पुण्य' । लेकिन रमणीयता बनी रहती है। 'गुनाहों का देवता' व्यक्तित्व के विरोधाभास पर आधारित है । एक ही मनुष्य में गुनाह की भी स्थिति और देवत्व की भी स्थिति ।

भारती जी की शैली कथोपकथन में सिद्धि प्राप्त करती हैं । जहाँ चुटकियों, मीठे-तीखे व्यंग्यों अप्रत्याशित आघातों, ललित रसात्मक पदों आदि की बाढ़ है वहाँ

पाठक शिष्ठ स्मित हास्य का आनन्द लेता और करुणा में निमज्जित होता चलता है । वर्णन भी कहीं- कहीं आगे पढ़ने और बढ़ने पर सार्थक लगता है ।

सूरल का सातवाँ घोड़ा

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की खण्ड-खण्ड हुई भारतीय मानवता की वस्तुस्थिति से 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' (1952) एक उल्लेखनीय रचना है लेखक ने स्वयं कहा है कि यह एक नवीन कथा प्रयोग है, एक नये ढंग का लघु उपन्यास है । यह उन्यास टेक्नीक की दृष्टि से ही नया प्रयोग नहीं है बल्कि निम्नवर्ग के चरित्रों को अनेक कोणों से देखने की दृष्टि से भी अपना महत्व रखता है। इसमें प्रयोग की द्रृष्टि से सोद्देश्यता और प्रभावान्विति है । इस उपन्यास में कई प्रेम कहानियाँ है, जो माणिक मुल्ला के व्यक्तित्व सूत्र में गुँथी हुई हैं । प्रेम को वैयक्तिक और समाज निरपेक्ष न मानकर उसे आर्थिक और सामाजिक पृष्ठभूमियों में देखा गया है। निम्न मध्य वर्ग की आर्थिक अवस्था, रूढ़ियाँ, सड़ी-गली मर्यादाएं उसे इस तरह जड़ और यांत्रिक बना देती हैं कि इसका प्रत्येक व्यक्ति बड़ी मशीन का पुर्जा हो जाता है ।

भारती जी के माणिक मुल्ला के माध्यम से कही गई कहानियों में कहीं भी एकान्विति टूटती नज़र नहीं आती । लेखक का कौशल इस बात से भी प्रकट होता है

कि उसने पाठकों को यह विश्वास दिलाने का प्रयास किया है कि यह उपन्यास आत्मकथात्मक नहीं है, वरन् माणिक मुल्ला से सुनी हुई कहानियाँ हैं। इसीलिए तीसरी कहानी शीर्षकहीन रखी गई है क्योंकि माणिक मुल्ला ने शीर्षक बताया ही नहीं था। उपन्यास के 'उपोद्घात' में इसके मूल पात्र माणिक मुल्ला का परिचय दिया गया है। ये प्रसिद्ध आदमी थे और घर में अकेले रहते थे। उन्हीं के घर दोपहर में लड़के इकट्ठे होते थे और उनके स्वागत के लिए वहाँ कभी मूँगफली और कभी खरबूजे रखे रहते थे। मुल्ला प्रत्येक दिन एक कहानी सुनाते थे। कहानी सुनकर अन्त में लड़के अपना विचार प्रस्तुत करते थे और इसी बहाने उपन्यासकार सामाजिक पहलुओं पर अपना मत दे देता है। पहली दोपहर में जो कहानी सुनाई गई थी उसका शीर्षक है 'नमक की अदायगी' अर्थात यमुना का नमक माणिक ने कैसे अदा किया। इसमें जमुना नामक लड़की का नमकीन पुए खिलाकर माणिक को अपने पास बुलाने और उसके साथ बात करने की कहानी है। दूसरी दोपहर की कहानी का शीर्षक है 'घोड़े की नाल' अर्थात् किस प्रकार घोड़े की नाल सौभाग्य का लक्षण सिद्ध हुई। इसमें जमुना का एक बूढ़े किन्तु धनी से विवाह, जमुना का बनावटी पति-प्रेम, पूजा-पाठ आदि दिखाया गया है। बाद में उसका सम्बन्ध तांगा चलाने वाले रामधन से होता है और उसी से उसको पुत्र होता है। इधर पति की मृत्यु हो जाती है। जमुना बनावटीपन से रोती है। रामधन कोठी में बड़े ठाट बाट से किस तरह रहने लगता है यह दिखाया गया है। तीसरे दोपहर की कहानी शीर्षकहीन है। इस कहानी में तन्ना के

दु:खद जीवन का चित्रण किया गया है । यह तन्ना वह व्यक्ति है जिससे जमुना प्रेम करती थी । जिससे बात करके वह प्रसन्न होती थी । इसमें कहा गया है कि तन्ना के पिता महेसर दलाल ने अपनी पत्नी के मरने पर एक औरत को रखा जिसके प्रभाव से बच्चों पर शासन कठोर हो गया । तन्ना जमुना की सहानुभूति से राहत महसूस करता था किन्तु उसका विवाह जमुना से न होकर लिली नाम की एक लड़की से हो जाता है जो इण्टर पास है । पुलिस के डर से तन्ना के पिता भाग जाते हैं और गृहस्थी का पूरा बोझ तन्ना पर आ जाता है जो आर0 एम0 एस0 में एक साधारण बाबू की हैसियत से काम करता है। चिन्ता में तन्ना बीमार हो जाता है और नौकरी से हटा दिया जाता है । उसकी पत्नी मायके चली जाती है । बाद में यूनियन की सहायता से उसे नौकरी मिलती भी है तो एक दिन दुर्घटना वश उसकी दोनो टागें कट जाती हैं और अस्पताल में उसकी मृत्यु हो जाती है । चौथी दोपहर की कहानी का शीर्षक है ' मालवा की युवरानी देवसेना की कहानी' इसमें माणिक और लिली के इन्द्रधनुषी रूमानी प्रेम सम्बन्धों और तन्ना के जीवन की त्रासदी का वर्णन है । पाँचवी दोपहर की कहानी का शीर्षक ' काली बेंट का चाकू' है। इसमें एक चमन ठाकुर है जो 'पहिया छाप साबुन' के कारखाने के मालिक हैं। ठाकुर की प्रतिपालिता कन्या सत्ती माणिक के साथ प्रेम करती है । महेसर दलाल और स्वयं अपने पिता चमन ठाकुर की कामपिपासा को देखकर सत्ती माणिक के घर आती है किन्तु उसे वह पुनः वहाँ वापस करवा देता है। पता लगता है कि फिर ठाकुर एवं दलाल दोनों ने रात्रि में उसकी हत्या कर दी । छठवीं दोपहर को पांचवीं दोपहर की

कहानी आगे बढ़ाई जाती है इसमें सत्ती की मृत्यु से माणिक का दु:खी होना बयान किया जाता है । इस घटना से माणिक का मानसिक सन्तुलन डगमगाता हुआ दिखाई पड़ता है वह असामाजिक उच्छृंखल और आत्मघाती सा हो जाता है । एक दिन चायघर से निकलते समय मुल्ला एक लकड़ी की गाड़ी में बैठे चमन ठाकुर को देखता है, जिसे सत्ती खींच रही है और उसकी गोद में एक गन्दा बच्चा है। माणिक को देखते ही उसका हाथ कमर पर चला जाता है जैसे वह छुरी निकालना चाहती हो फिर माणिक मुल्ला को क्रोध भरी आँखों से देखती हुई वह आगे निकल जाती है। सत्ती को देखकर माणिक के हृदय का बोझ उतर जाता है और वह तन्ना के रिक्त स्थान पर आर0 एम0 एस0 में नौकरी कर लेता है । सातवीं दोपहर को माणिक जो कहानी सुनाता है उसका शीर्षक है ' सूरज का सातवाँ घोड़ा' इसमें माणिक ने सूरज के सात घोड़ों का तात्पर्य स्पष्ट किया है ।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि अनेक दोपहरियों को भिन्न -2 कहानियाँ कही गईं किन्तु इन सबमें एक सूत्रता है । प्राय: सभी कहानियाँ माणिक मुल्ला के व्यक्तित्व से जुड़ी हैं। आर्थिक विषमता, अतृप्त वासना एवं प्रेम की विभिन्न समस्याओं के चित्रण का प्रयत्न किया गया है। प्रत्येक कहानी के बाद विराम है जिसमें लड़के सुनी हुई कहानी पर सायंकाल अपना मत व्यक्त करते हैं । देखने पर तो ये प्रेम कहानियाँ लगती हैं किन्तु इनमें प्रेम सम्बन्धों के माध्यम से हमारे समाज के

समाज जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत किया गया है । आज के समाज का समूचा परिवेश अपने भीतर बनते बिगड़ते व्यक्तियों और उनके सम्बन्धों को लेकर बड़ी सच्चाई से उभरा है। समूचे परिवेश में जो जीवन है वह बहुत अप्रीतिकर और विसंगतिपूर्ण है। एक ओर महेसर दलाल, चमन, रामधन आदि हैं । जो बहुत धूर्त हैं, और दूसरी ओर नन्ना सत्ती आदि हैं जो बेबसी के शिकार हो जाते हैं । जमुना, लिली आदि पात्र प्रेम सम्बन्धों की जटिलता और उनका अर्थ व्यक्त करते हुए भावुकता का उपहास करते हुए से लगते हैं । अन्तिम अध्याय में मुल्ला कहते हैं- देखो ये कहानियाँ आरम्भ में प्रेम कहानियाँ नहीं वरन् उस जिन्दगी का चित्रण करती हैं जिसे आज का निम्न मध्यवर्ग जी रहा है। उसमें प्रेम से कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण हो गया है आज का आर्थिक संघर्ष , नैतिक विश्रृंखलता इसलिए इतना अनाचार, निराशा , कटुता और [illegible] मध्यवर्ग पर छा गया है ।

यह उपन्यास प्रधानतया सामाजिक विकृतियों को दृष्टि में रखकर लिखा गया है और कुछ बड़ी ही विषय जीवन स्थितियों को उनके यथार्थ परिवेश में विभिन्न दृष्टि बिन्दुओं से इसमें देखने का प्रयत्न है एक ही सामाजिक चित्र को अनेक दृष्टिकोणों से दिखाने का कौशल भी निराला है । प्रत्येक कहानी का शीर्षक अजीब एवं आकर्षक है और मूल कथा को बड़ी होशियारी से इस शीर्षक के अन्दर लाने का प्रयत्न किया गया है ।

'सूरज का सातवाँ घोड़ा' लघु उपन्यास है किन्तु उसमें जो समस्याएं उठाई गई हैं वे विराटता का बोध देती हैं । जमुना, तन्ना, मिली, सत्ती और स्वयं माणिक मुल्ला के द्वारा लेखक ने सातों कहानियों में मध्यम वर्ग के जीवन की भयंकर विडम्बना आर्थिक खोखलापन, चारों ओर छाई हुई अनैतिकता विवाह, परिवार, प्रेम की निस्सारता अर्थात् संक्षेप में जीवन व्यवस्था की समस्त जीर्णता की ओर संकेत दिया है । लेखक के निष्कर्ष ऊपर से आरोपित किए हुए नहीं लगते बल्कि उसके सूत्र परिस्थितियों में बड़ी गहराई के साथ अन्तर्निहित किए हुए मिलते हैं । उपन्यास के पात्र सामाजिक विकृतियों के प्रतीक बन जाते हैं । स्वयं माणिक मुल्ला कायर मध्यमवर्गीय युवकों का प्रतीक बनकर सामने आता है । प्रायः सभी पात्रों के व्यक्तित्व के विकास के क्रम में उनकी अतृप्त काम वासना की चर्चा की गई है । आज के समाज में व्यक्ति अपनी विभिन्न अतृप्त इच्छाओं को लेकर जो संघर्ष कर रहा है उसमें प्रायः वह असफल ही रहता है । इसीलिए आज अधिक पात्रों के जीवन में निराशा और अन्धकार ही दिखाई देता है । जमुना का बूढ़े व्यक्ति के साथ विवाह, रामधन जैसे निम्नपात्र से शारीरिक संतुष्टि के लिए सम्बन्धित होना, तन्ना का जमुना के बदले लिली से व्याहा जाना, सत्ती के जीवन का विकृति में बदला जाना सब समाज की विभिन्न बेढंगी विकृत मान्यताओं के चित्र हैं । ।

'सूरज का सातवाँ घोड़ा' उस जिन्दगी का चित्रण करने वाला उपन्यास है, जिसमें प्रेम से अधिक आर्थिक संघर्ष और नैतिक विश्रृंखलता है। इसीलिए मध्यमवर्गीय जीवन में

निराशा, कटुता, अनाचार और अंधकार का साम्राज्य है । इस उपन्यास की विशेषता इस बात में हैं कि जीवन के प्रति तीव्र असंतोष होते हुए भी उसमें आस्था के सूत्र अन्तर्निहित हैं । लेखक ने इस बात की ओर संकेत किया है कि मनुष्य में कोई न कोई अन्तर्निहित शक्ति ऐसी है जो अन्धेरे को चीरकर आगे बढ़ने, समाज की व्यवस्था बदलने, मानवता के सहज मूल्यों को पुनः स्थापित करने की उसी प्रकार प्रेरणा देती और आगे ले जाती है जिस प्रकार सूर्य को सात घोड़े आगे ले जाते हैं । सूरज का रथ सदा आगे बढ़ रहा है किन्तु उसके छः घोड़े काफी क्षत-विक्षत हो गये हैं । केवल एक घोड़ा सातवाँ घोड़ा ऐसा है जिसके पंख अब भी साबूत बचे हैं वह घोड़ा है भविष्य का घोड़ा । यही सातवाँ घोड़ा हमारी पलकों में भविष्य के सपने और वर्तमान के नवीन आकलन भेजता है ।

निश्चय ही यह उपन्यास निम्न मध्यवर्ग के अनेक प्रसंगों को नवीन रूप से प्रस्तुत करता है तथा आज की तथाकथित आधुनिकता पर प्रश्नसूचक चिन्ह लगाता है। हमारे जीवन में अनेक बुराइयाँ आ गई हैं । किन्तु अब भी जीवन के प्रति अटूट आस्था बनी हुई है ।

जहाँ तक इस उपन्यास के टेकनीक का प्रश्न है यह सचमुच हिन्दी उपन्यास क्षेत्र में अकेला है । लेखक के कहानी कहने के नितान्त अनौपचरिक ढंग, अंत के मनोरंजक निष्कर्ष, समाज एवं व्यक्ति के व्यंग्य विद्रूप तथा हास्य गर्भित चित्र और सबके

अन्तर में व्याप्त मानव दुःख एवं दयनीयता के प्रति हृदय को कचोटने वाली वेदना आदि ने मिलकर इस उपन्यास को शैलीगत एक विशेष आकर्षण प्रदान कर दिया है ।

लेखक ने शिल्प सम्बन्धी अपना दृष्टिकोण 'उपोद्‌घात' में ही काफी स्पष्ट कर दिया है । यह शैली पंचतत्र या कथा सरित्‌सागर की शैली से प्रभावित है । यह उपन्यास मूलतः लोक कथात्मक शैली में लिखा गया है । वस्तुतः लोक कथानक शैली उस शैली रूप को कहते हैं जिसमें मौखिक रूप से प्रचलित अनेक कथाओं को अन्तःसम्बद्ध करके प्रस्तुत किया जाता है ।

फणीश्वर नाथ रेणु (1921)

वर्तमान मानवीय संकट की ओर संकेत करने वालों में सबसे अधिक उल्लेखनीय उपन्यासकार फणीश्वरनाथ रेणु हैं । रेणु के उपन्यास हैं - 'मैला आंचल', 'परती: परिकथा', 'दीर्घतया', 'जुलुस', 'पल्टू', 'बाबू रोड', 'कितने चौराहे'। परन्तु इनकी ख्याति का प्रधान स्तम्भ 'मैला आँचल' (1954), है । रेणु का मैला आचंल, आंचलिक होते हुए भी इसमें स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद भारत के ग्रामों में होने वाले परिवर्तन के सूत्रों का व्यापक धरातल पर अत्यन्त सूक्ष्मता से अंकन हुआ है । 'मैला आँचल' के सम्बन्ध में हिन्दी आलोचक प्रो0 नलिन विलोचन शर्मा लिखते हैं कि - मैनें 'मैला आंचल' को अपने द्वारा उद्भावित वर्ग में रखकर परखने की कोशिश की । स्वयं लेखक ने इसे एक आंचलिक उपन्यास कहना पसन्द किया है । यद्यपि लेखक ने पूर्णिया जिले के एक पिछड़े हुए गाँव मेरीगंज की जिन्दगी का चित्रांकन किया है लेकिन यह मेरीगंज केवल पूर्णिया का नहीं है वह कहीं भी हो सकता है । लेखक की वर्णन शैली की सशक्तता ने ही मेरीगंज को पूरे भारत के गाँवों का प्रतीक बना दिया है । स्वतन्त्रतापूर्व और स्वतन्त्रता कालीन भारत के गाँवों में प्रत्येक क्षेत्र में होने वाले परिवर्तन, नये पुराने मूल्यों का द्वन्द्व और असमानता, जमींदारी उन्मूलन और भूमि की समस्या जमींदारों का शोषण, व्यक्ति और समाज का द्वन्द्व राजनीति, धर्म तथा समाज सबके निर्माण और विध्वंस की टकराहट इस उपन्यास में मेरीगंज के माध्यम से अभिव्यक्त हुई है । जिससे एक काल विशेष का सजीव एवं प्रभावशाली चित्र स्पष्ट होता है। इस उपन्यास में गाँव की अन्तरात्मा को भी स्पष्ट

करने का प्रयत्न किया गया है । प्रेमचन्द के उपन्यासों में समस्याएँ प्रधान थीं व्यक्ति नहीं परन्तु रेणु ने समस्याओं के साथ-साथ व्यक्ति का भी अद्भुत समन्वय करने का प्रयत्न किया है । यही कारण है कि उपन्यास में स्थूलता नहीं हैं । सूक्ष्मता कलात्मक ढंग से अभिव्यक्त नहीं की गई है । यहीं इसे प्रेमचन्द के गाँव - चित्रण से अलग करती है । गाँव का जन-जीवन है - अज्ञान, अनपढ़ गरीब खेतिहर किसान व मजदूर, जो अन्धविश्वास, रूढ़ियों और मानसिक जड़ता से आबद्ध है ।

उपन्यास में तत्सामयिक, सामाजिक राजनीतिक, आर्थिक धार्मिक स्थिति का विशद चित्रण है । व्यापक चित्र फलक पर अनेकानेक घटनाएं कथासूत्र है, ढेरों पात्र हैं क्योंकि 'मेरीगंज में 'बारह बरम' के लोग रहते हैं । मेरीगंज गाँव पिछड़ा हुआ - गांव है जिसमें दस आदमी पढ़े लिखे हैं - पढ़े लिखे का मतलब है अपना दस्तखत करने से लेकर तहसीलदारी करने तक की पढ़ाई । नये पढ़ने वालों की संख्या है पन्द्रह ।"[1] अनपढ़ जनता अंध विश्वासों में डूबी हुई रूढ़िवादी है, भूतप्रेत, जादू - टोने पर विश्वास रखती है । लोगों को विश्वास है कि खलासी जी -पक्का ओझा हैं । चक्कर पूजते हैं। भूतप्रेत को पेड़ में काँटी ठोंककर बस में करते हैं। बाँझ निफुतर को तुकताक कर देते हैं।[2]

---

1. मैला आँचल - पृष्ठ 15.
2. वही पृष्ठ 52.

गाँव के जनजीवन में अनैतिकता, व्यभिचार, अनुशासनहीनता, विसंगति सर्वत्र व्याप्त है । उपन्यासकार ने बनते-बगड़ते मूल्यों, संकान्ति कालीन जीवन की विसंगतियों नैतिक मूल्यों के अवमूल्यन को यथार्थ रूप में उरेहा हैं । स्त्री-पुरूष के सम्बन्धों का विकृत भ्रष्ट रूप उपन्यास रेशे-रेशे के व्यापक भावभूमि पर प्रकट हुआ है । उच्च वर्ग, निम्न-वर्ग, धार्मिक मठ आदि सभी इसमें लिप्त हैं । मठ के महन्त नेत्रहीन सेवादास लक्ष्मी को अपनी दासिन रखे हुए हैं । इनकी मृत्यु के उपरान्त लरसिंघ और महन्त रामदास लक्ष्मी के लिए अपनी लार टपकाते रहते हैं । लक्ष्मी बलदेव के प्रति आकर्षित हैं । दोनो मठ से अलग झोपड़ी बना कर रहते हैं । महन्त रामदास निम्न जाति की राम पियरिया को मठ में ले आता है । इनके अतिरिक्त गाँव में कुछ ऐसे लोग और हैं जो व्यभिचार फैलाए हुए हैं ।

रेणु के ग्रामीण पात्रों को इतनी मानवीयता सहृदयता तथा काव्यमयता के साथ प्रेमचन्द के बाद पहली बार नये सन्दर्भों में चित्रित किया गया है जो आधुनिकता से भी पूरित हैं । महन्त सेवादास, लक्ष्मी और लरसिंघ, नंगा बाबा, रामदास, रामपियरिया, छीन्तन, मंगल देवी, टुनटुन, कालीचरण, सदाब्रिज, फुलिया, कलरू राम लगनसिंह, तहसीलदार, हरगौरी सिंह, बालदेव, सकल द्वीप, रधिया आदि विविध पात्रों द्वारा मानव की कुत्सित प्रवृत्तियों का चित्रण उतनी ही तटस्थता से किया है जितनी तटस्थता से उसके सौन्दर्य पक्ष का उद्घाटन। लेखक अनैतिकता के व्यापक चित्रों द्वारा नवीन नैतिक मूल्यों की स्थापना पर बल देते हैं

और एक प्रकार से पुरानी और नई सांस्कृतिक परम्पराओं की टकराहट की ओर संकेत भी करते हैं । गांव के विषाक्त जीवन में मुनष्य मनुष्य का विनाश करने पर तुल गया है । सर्वत्र अन्याय ही अन्याय दृष्टिगोचर होता है, कोई नैतिक मापदण्ड नहीं रह गया है । रेणु ने राजनीतिका भी अत्यन्त संतुलित ढंग से चित्रण किया है । उपन्यास न तो सामाजिक चिन्तनधारा से कटा हुआ है और न राजनीतिक विचारधारा से रेणू तटस्थ रूप में राजनीति को देखते हैं किसी दुराग्रह से नहीं। उन्होंने जीवन के सभी पक्षों को मानवतावादी सन्दर्भ में उतारने की चेष्टा की है । लेखक का कहना है कि शोषण कोई शक्ति समाप्त नहीं कर सकती इसके लिए कोई भी कानून काम नहीं करेगा शोषितों को अपने अधिकारों की स्वयं रक्षा करनी पड़ेगी और उसके लिए तैयार होना पड़ेगा । यदि स्वयं ही अपना शोषण होने का विरोध नहीं करेंगे तो उनके अधिकारों का हनन होगा ही इससे बचने का कोई विकल्प नहीं रह जाएगा । इसके लिए लेखक ने किसी क्रान्ति की बात नहीं की है ।

रेणुकृत 'मैला आँचल' में आँचलिक परिवेश के रहते हुए भी उसमें सहज व्यापकता है । आँचलिकता की दृष्टि से यह एक उत्कृष्ट कृति है ।

'रेणु' के दूसरे महत्वपूर्ण उपन्यास परती: परिकथा (1957) में परानपुर नामक गाँव को लेकर भारत वर्ष के टूटते हुए ग्रामीण जीवन की कहानी, उसके अंधविश्वासों, जड़-जीवन, रूढ़ियों, धार्मिक आडम्बरों सामाजिक एवं राजनीतिक दबावों सहित कही गई है। लेखक ने लुत्तों, वीरभद्र, चिन्तन ताजमनी आदि अनेक पात्रों के माध्यम से ग्राम्य जीवन

का यथार्थचित्र बिना किसी दुराग्रह के संतुलित और मानवतावादी दृष्टि से प्रस्तुतकर अपनी कलात्मक क्षमता का परिचय दिया है । लेखक मनुष्य को मनुष्य ही बनाए रखना चाहता है । उसका कहना है कि हम मानव पक्ष को भूलकर जीवन को नितान्त यान्त्रिक न बना दें । लेखक में संवेदन शीलता और कलात्मक प्रौढ़ता है । किन्तु इतने पर भी यह उपन्यास कोई नई दृष्टि प्रदान नहीं करता ।

कथाएं गढ़ना और उन्हें रोचक ढंग से सुना देना जहाँ 'रेणु' की प्रमुख कला है । वहीं उनका दूसरा गुण है चरित्रसृष्टि । जिस प्रकार 'मैला आँचल' में मेरीगंज गाँव का वर्णन है उसी प्रकार इस उपन्यास में परानपुर गाँव को यथार्थ परिवेश में चित्रित करने का प्रयत्न किया गया है । इस गाँव के तीनों ओर लाखों एकड़ परती भूमि है । गाँव की आबादी लगभग सात - आठ हजार है । यह गाँव कोसी का सताया हुआ है । इसीलिए प्रारम्भ में ही कहा गया है-

धूसर, वीरान, अन्तहीन प्रान्तर ।

पतिता भूमि, परती जमीन, बन्ध्या धरती ....।

इस उपन्यास में कहानियाँ तो अनेक हैं पर प्रधानता किसी एक की नहीं दिखाई देती । उपन्यास में वातावरण के निर्माण के लिए विभिन्न स्वरों और नाद-समूहों को प्रस्तुत किया गया है । 'परती: परिकथा' में अनेक देहाती कहावतों, गीतों, प्रयोगों

आदि का व्यवहार हुआ है । विषय वर्णन, शील निरूपण तथा भाषागत् विशेषताओं को लेकर 'परती: परिकथा' 'मैला आँचल' से कोई विशेष मौलिक नहीं दीखता । उल्लेख्य समस्या को स्थानीय बनाकर पूरे उपन्यास को आँचलिक बनाया गया है। परती: परिकथा में मैला आँचल के जिज्ञासु 'रेणु' सिद्धहस्त आँचलिक उपन्यासकार सिद्ध होते हैं । इस उपन्यास में रेणु समस्त भारत के मूल स्वरूप की खोज करना चाहते हैं और सामयिक संदर्भ में उत्पन्न हुए नाना प्रकार की उसमें सूची को समग्रता में पकड़ने का प्रयत्न करते हैं। परानपुर के आस-पास की लाखों एकड़ जमीन को लकवा मार गयी है और वह परती पड़ गई है । उसी तरह भारत की पूरी लोक - संस्कृति परती हो जाने की स्थिति में हैं।

रेणु के दोनों उपन्यासों से यह धारणा तो दृढ़ हो जाती है कि लेखक में आंचलिक चित्रण की अभूतपूर्व क्षमता है । आँचलिक स्पर्शों के कारण ही इन उपन्यासों में एक नवीनता और ताजगी का अनुभव होता है । किन्तु इन सब गुणों के होते हुए भी जहाँ तक एक सुगठित कथानक के सहज, क्रमिक एवं मनोरम विकास तथा स्थायी एवं प्रभावपूर्ण चरित्र सृष्टि का सम्बन्ध है 'रेणु' असफल रहे हैं । इसका प्रधान कारण यह है कि उन्होंने 'डाक्युमेंटरी' चलचित्रों तथा रिपोर्ताज वाली शैली अपनाई है । जिसके कारण चित्र एवं चरित्र स्थिर एवं स्थायी रूप में हमारे सामने नहीं रह पाते । आँचलिकता के आग्रह एवं अतिरेक ने लेखक के कलात्मक संतुलन का नाश कर दिया है, वह स्थानीय विशेषताओं के विवरण में ही खो गया है । शिल्प की दृष्टि से इसमें भी वही दोष है जो मैला आँचल में है । इस प्रकार विशेषताओं से युक्त होते हुए भी यह उपन्यास कोई नई

दृष्टि प्रदान नहीं करता ।

'दीर्घतपा', (1963) फणीश्वर नाथ रेणु का ऐसा उपन्यास है जिसे वे आँचलिक ही मानते हैं । उपन्यास की अनेक घटनाएं 'वर्किंग वीमेन्स होस्टल' में घटती हैं: जहाँ की मूल भूमिका बेला गुप्त और श्रीमती आनन्द निभाती हैं । पूरे उपन्यास का उद्देश्य नारी - संस्थाओं के भीतर घरकर लेने वाले दुर्गुणों का चित्रण है जिसे रेणु बखूबी प्रस्तुत भी करते हैं । किन्तु समाज के एक अंग के चित्रण और एक होस्टल में घटने वाली घटनाओं के चित्रण के ही कारण इसे आँचलिक कह दिया जाय। इससे आँचलिकता, पर व्यंग्य की स्थिति ही उत्पन्न होगी । 'मैला आँचल' की तरह इस उपन्यास की आत्मा भी यथार्थ पर आधारित है । पर ऐसा चित्रण किसी भी सामाजिक और सामान्य उपन्यास (जिसे आँचलिक नहीं कहा जाता) में प्रस्तुत हो सकता है । इस उपन्यास की आँचलिकता कृत्रिमता से सम्बन्धित है 'मैला आँचल' की तरह 'दीर्घतपा' में भी ध्वनि समूहों को चित्रित कर वातावरण की सजीवता में शक्ति लाई गई है । 'दीर्घतपा' व्यंग्य और बाधित विराट की नकारात्मक कृति है ।

'जुलूस' (1965) भी रेणु के अन्य उपन्यासों की टेकनीक की परम्परा में है। इसमें पूर्वी बंगाल से आए हुए ऐसे शरणार्थियों की चर्चा है जो एक बार उखड़कर कहीं जम नहीं पाते । इस उपन्यास में घटनाओं की बहुलता है और 'मैला आँचल' की तरह पात्रों की भी भीड़ है । कहानी का मूल स्वर यथार्थवादी है । ऐसा किसी भी जगह नहीं

लगता कि कोई घटना गढ़कर रखी गयी है । मंत्र-तंत्र तथा जादू आदि का चित्रण इस उपन्यास में भी मिलता है । अन्य उपन्यासों की तरह इसमें भी रेणु ने स्वर समूहों और मानसमूहों को प्रस्तुत किया है । उपन्यास के नारी पात्र पवित्रा के साथ पूर्वदीप्ति(Flash bac पद्धति का प्रयोग किया गया है । वातावरण निर्माण के लिए देहाती कहावतों गीतों और शब्दों का प्रयोग प्रायः सर्वत्र हुआ है ।

'कितने चौराहे' फणीश्वर नाथ 'रेणु' का उनके अबतक प्रकाशित उपन्यासों के क्रम में पाँचवा और-आखिरी उपन्यास है । इस उपन्यास में सन् 1933-34 से लेकर 1965 तक की भारतीय राजनीतिको पृष्ठभूमि में रखा गया है । कथावस्तु अत्यन्त संक्षिप्त सी है । यह 'कस्बाई' परिवेश में लिखी गई एक अन्-आँचलिक कृति है । इसकी कथावस्तु की सबसे बड़ी विशेषता है इसकी मौलिकता । सम्भवतः रेणु पहले लेखक हैं जिन्होंने स्वतन्त्रता संग्राम में विद्यार्थियों के योगदान को लेकर इतना हृदयस्पर्शी उपन्यास लिखा है । परन्तु अपने उपन्यासों 'दीर्घतपा', 'जुलुस' और 'कितने चौराहे' में भी रेणु न तो कोई नई दृष्टि प्रदान करते हैं और न कोई नया शिल्प ही ।

'मोहन राकेश' (1925-1972)

आज के स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों, विशेषत: दाम्पत्य जीवन में पड़ी दरारों विसंगतियों और विडम्बनाओं आदि का चित्रण करने वाले मोहन राकेश के उपन्यास हैं - 'अन्धेरे बन्द कमरे', 'न आने वाला कल', 'नीली रोशनी की बाहों में',और 'अन्तराल'।

मोहन राकेश का 'अन्धेरे बन्द कमरे' (1961) आधुनिक जीवन की विसंगतियों पर आधारित है। यह आधुनिकता बोध से उत्पन्न अकेलेपन और स्वकेन्द्रित महत्वाकांक्षाओं के पीछे दौड़ती मानसिकता की विवशता तथा तनाव और कुण्ठा की अभिव्यक्ति की कथा है । यह उपन्यास मानवीय सम्बन्धों के खोखले और अर्थहीन हो जाने की स्थिति में भी पति-पत्नी के परस्पर एक-दूसरे के साथ जीवन-यापन की स्थिति की मजबूरी की अभिव्यञ्जना करता है । मोहन राकेश के लेखन में दो सीमांचलों के सुखद संस्पर्श का आभास मिलता है,एक ओर पुरातनता को छोड़ने का आग्रह और दूसरी ओर आधुनिकता के पीछे भागने की छटपटाहट ।यह द्वन्द्व 'अन्धेरे बन्द कमरे' में स्पष्ट लक्ष्य होता है । आज का भारतीय पाश्चात्य आधुनिकता का अन्धाधुंध अनुसरण कर रहा है । जिसके परिणामस्वरूप वह न तो अपनी प्राचीन मान्यताओं से उबर पा रहा है और न ही पाश्चात्य आधुनिकता को समग्र रूप से अपना पा रहा है । अत: भारतीय जीवन आधुनिक युग बोध के सीमांचलों में पड़ा छटपटा रहा है । 'अन्धेरे बन्द कमरे' में मध्यवर्गीय पात्र हैं, जो एक ओर अपने प्राचीन संस्कारों में जकड़े हैं और दूसरी ओर आधुनिकता का आह्वान करते हुए अपने अस्तित्व और निज को महत्वपूर्ण समझते हैं । उपन्यास में मधुसूदन, हरबंस, शुक्ला और नीलिमा मुख्य पात्र हैं । कथानक की पृष्ठभूमि स्वतंत्रता की प्राप्ति के

बाद की दिल्ली का जीवन है । जहाँ की भीड़ भाड़ में सब एक दूसरे से अपरिचित दौड़ते चले जा रहे हैं । लेखक ने प्रारम्भ में ही स्वयं बिना उत्तर दिए तीन प्रश्न उठाएं हैं - क्या यह उपन्यास दिल्ली के जीवन का रेखा चित्र है? क्या यह पत्रकार मधुसूदन की आत्मकथा है? क्या यह पति-पत्नी के आन्तरिक द्वन्द्व की कहानी है? स्पष्ट है कि उपन्यास पढ़ते समय पाठक के मन में यह तीनों प्रश्न घूमते रहते हैं पर अन्ततः उसे निराश ही होना पड़ता है । वह न तो मधुसूदन की आत्मकथा है, न दिल्ली के जीवन का सही चित्र ही और न ही वह आधुनिक पति पत्नी के आन्तरिक द्वन्द्व को ठीक से सही परिप्रेक्ष्य में व्यक्त कर पाता है ।

मोहन राकेश यदि पति-पत्नी के आन्तरिक द्वन्द्व के ही पक्षका पूरी अनुभूति, तन्मयता और सहृदयता से तटस्थ चित्रण करते तो कदाचित् यह अपने ढंग का अकेला उपन्यास होता और आधुनिक मानव सम्बन्धों के नवीन मूल्यों की स्थापना करता।[1] इस उपन्यास के अधिकांश भाग को हंरबंस - नीलिमा के आत्मसंघर्ष ने घेर रखा है लेकिन इसके बावजूद भी कोई स्पष्ट समग्र चित्र सामने नहीं आता । धुँधला - धुँधला सा लगता है । मोहन राकेश अपने पात्रों का निर्वाह भी ठीक ढंग से नहीं कर पाए हैं । यही उनके उपन्यास को अपूर्ण बनाता है । आज की तमाम आधुनिकता के बावजूद नारी की वास्तविकता क्या है ? नारी की मुक्ति के लिए छटपटाहट और संफेदपोशी में पुरूष की पाशविकता का नया रूप धारण करना, इसकी अभिव्यक्ति के लिए अधिक गहरी अन्तर्दृष्टि

---

1. द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, - डॉ0 लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय

की आवश्यकता थी जिसमें राकेश सफल नहीं हुए । इन्होनें नितान्त वैयक्तिक धरातल पर नीलिमा और हरबँस के अन्तर्द्वन्द्व को अस्तित्ववाद के सूत्रों का सहारा लेकर स्थापित कर दिया है । वे दोनों अपने अस्तित्व के लिए व्याकुल रहते हैं ।

वास्तव में 'अन्धेरे बन्द कमरे' सम्भावनाओं का उपन्यास है । उसमें जिन समस्याओं को लेखक ने उठाया है वे अलग-अलग स्तरों पर गहराई और अन्तर्दृष्टि चाहती हैं। पति-या दोनो मित्रों में एक दूसरे को 'समझ पाने' का सन्दर्भ महत्वपूर्ण हैं। हरबंस और नीलिमा दोनो ही एक दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप करते है कि मुझे समझा नहीं जा रहा है । इसी कारण जीवन में अवसंगति, तनाव और कुण्ठा व्याप्त है । लेखक ने परम्परागत और आधुनिक संस्कारों के बीच द्वन्द्व का सूक्ष्मता से चित्रांकन किया है । नीलिमा का अपने बच्चे के साथ वापिस हरबंस के घर आ जाना भारतीय संस्कृति अर्थात् समूह, घर और परिवार की सार्थकता को स्पष्ट करते हैं क्योंकि घर छोड़कर नीलिमा और हरबंस दोनों ही अशांत रहते हैं पर नीलिमा वापिस आकर यही कह पाती है, "मैं आना नहीं चाहती थी, मगर फिर मैंने सोचा कि - - सोचा नहीं, मुझे लगा कि शायद अब यही ठीक है।"[1] अतः लेखक ने आधुनिक युग बोध में जीते हुए संत्रस्त जीवन की रेखाओं के माध्यम से समष्टि का चित्रण किया है ।

---

1. अन्धेरे बन्द कमरे, मोहन राकेश पृष्ठ 443

उक्त उपन्यास में प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग किया गया है । इसमें शिल्प की कोई ऐसी नवीनता नहीं है, जो इसे 'अज्ञेय' या 'जैनेन्द्र' के उपन्यासों में प्रयुक्त विभिन्न शिल्प प्रयोगों से अलग करे । भाषा भी बहुत प्रभावशाली नहीं बन पाई है । कहीं तो भाषा इतनी निर्जीव हो गई है कि अभिव्यक्ति को सशक्त बनाने में नितान्त असमर्थ रहती है । फिर भी यह उपन्यास आधुनिक मानव सम्बन्धों की यथार्थता को नये सन्दर्भों में टटलोलने का प्रयत्न करता है ।

मोहन राकेश का एक और उपन्यास 'न आने वालाकल (1968)' है। इस उपन्यास के लगभग सभी पात्र -व्हिस्लर, नुरूला, काशनी, शोभा बानी आदि अपने चारों ओर खिंची हुई परिधियों मेंविचरण करते हुए भी यह नहीं जान पाते कि वे चाहते क्या है? वे अपने आने वाले कल को पहचानना चाहते हैं किन्तु उस आने वाले कल की रूपरेखा उनके सामने स्पष्ट नहीं है । लेखक ने आधुनिक जीवन की विसंगतियों, संत्रास, अकेलापन, मानव संबंधों की कृत्रिमता, मृत्यु भय आदि को अस्तित्ववादी चिन्तन के प्रकाश में स्पष्ट करने की चेष्टा की है । लेखक द्वारा ऐसी परिस्थियाँ उत्पन्न की गई हैं जिनमें व्यक्ति मुक्ति पाने के लिए छटपटा उठता है ।

इस उपन्यास में मिशनरी स्कूल के अध्यापक मनोज की कथा है जो अपने स्कूली परिवेश और अपनी पत्नी शोभा के कारण स्कूल से त्यागपत्र देकर चला जाता है ।

पति पत्नी दोनों अपने स्वतंत्र अस्तित्व को ही सर्वोपरि मानते हैं और इसीलिए एक दूसरे से सामन्जस्य नहीं रख पाते । एडजस्ट न कर पाने के कारण अलग हो जाते हैं और पत्नी अपने भूतपूर्व स्वर्गीय पति के परिवार में चली जाती है । मोहन राकेश ने मनोज की मानसिक प्रतिक्रियाओं का उल्लेख करते हुए उसके मानवीय पक्ष का आत्मीयता और सहज भाव से चित्रण किया। इस प्रकार उपन्यास में स्त्री-पुरूष समाज और देश के विभिन्न सन्दर्भो के बीच व्यक्ति के सम्बन्धों को उरेहा गया है। मनोज की मनःस्थिति बहुत कुछ उसके अपने अहं के कारण व्यक्ति के रूप में मनोज अपने जीवन में एक खालीपन और बिखराव महसूस करता है । जो सम्भवतः आज के व्यक्ति की नियति मान ली गई है । इस उपन्यास के पात्र नुरूला और शोभा दोनों पात्र नहीं जानते कि वे क्या चाहते हैं किन्तु अपने अतीत और वर्तमान दोनो में रहते हुए अहं को चोट पहुंचाते हुए अपने अस्तित्व की समस्या से जूझते रहते हैं। यह उपन्यास जीवन के यथार्थ से सम्बद्ध कम और किताबी अधिक है । इसमें भी पात्रों का निर्वहन उचित ढंग से नहीं हो पाया है । पाठक के समक्ष कोई स्पष्ट तश्वीर रखने में यह उपन्यास असमर्थ है ।

मोहन राकेश के उपन्यास 'अन्तराल' (1972) में श्यामा और कुमार के माध्यम से अनेक घेरों में आबद्ध घुटन महसूस करते हुए स्त्री पुरूषों की मनः स्थितियों का चित्रण है । वे अपना निर्जीव जीवन स्थापित करते हुए जीवन को ढोते चले जाते हैं। मानसिक द्वन्द्व का इस उपन्यास में अच्छा अंकन हुआ है । भाषा और कला की दृष्टि से यह उपन्यास मोहन राकेश के पिछले उपन्यासों से अलग है ।

राजेन्द्र यादव (1929)

राजेन्द्र यादव में बड़ी तीव्र अनुभूति, कुशल कल्पना तथा सजीव चित्रण विधायिनी प्रतिभा है । उनके निम्नलिखित उपन्यास हैं - 'प्रेत बोलते हैं', 'उखड़े हुए लोग', 'सारा आकाश', 'अनदेखे अनजान पुल', (लघु उपन्यास) ,'कुलटा', (लघु उपन्यास) 'मंत्रविद्ध', 'एक इंच मुस्कान', 'शह और मात'। उनके उपन्यास - 'प्रेत बोलते हैं' तथा 'उखड़े हुए लोग' सामाजिक यथार्थ के चित्रण की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं ।

राजेन्द्र यादव ने 'प्रेत बोलते हैं',(1952) फिर उसी के संशोधित रूप 'सारा आकाश' (1960) में आधुनिक मध्यवर्गीय जीवन की जर्जरता, उसके रूढ़िबद्ध संस्कारों आदि का यथार्थवादी दृष्टि से चित्रांकन किया है । चरित्र विकास की दिशा में 'कुलटा' आधुनिक (मॉडर्न) नारी का प्रतीक बनकर आती है । 'अनदेखे अनजान पुल' में लेखक ने एक कुरूप लड़की की हीन भावना, निराशा, कुण्ठा आदि का चित्रण मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि के साथ किया है ।

यादव ने अपने प्रथम उपन्यास 'प्रेत बोलते हैं' (1952) में निम्न मध्यवर्ग के एक शिक्षित युवक के जीवन की विवशताओं तथा विषमताओं को प्रतीकात्मक शैली में चित्रित करने का प्रयास किया है । डा0 शांति भारद्वाज के अनुसार 'यादव प्रगतिवादी चिन्तनधारा को अपनाते हुए मध्यवर्ग के जीवन का चित्रण करते हैं।[1] अथवा,"राजेन्द्र यादव

---

1. हिन्दी उपन्यास : प्रेम और जीवन : डॉ0 शांति भारद्वाज, पृष्ठ 247

की उपन्यासकला का उद्देश्य प्रगतिवादी चिन्तनधारा के आधार पर मध्यवर्गीय समाज के पारिवारिक जीवन का विश्लेषण तथा चित्रण करना है।'[1] आलोचकों का यह वर्ग मानता है कि राजेन्द्र यादव के उपन्यासों में प्रगतिवादी चेतना है । प्रगतिवादी विचारधारा को यादव वैयक्तिक स्तर पर झेलते हैं तथा उनके पात्र भी अपनी व्यक्तिगत जिन्दगी में ही सनातनी तथा प्रगति विरोधी तत्वों के विरूद्ध संघर्ष करते हैं । इसलिए इनकी मूल पकड़ व्यक्ति उसके परिवेश के परस्पर विरोधी संघर्ष पर ही है । राजेन्द्र यादव मूलतः व्यक्तिमन का सूक्ष्म चित्रण करने वाले सजग कथाकार हैं । 'प्रेत बोलते हैं' में वर्तमान आर्थिक सामाजिक जटिलताओं से उद्भूत मध्यवर्गीय कुण्ठाओं का सुन्दर चित्रण हुआ है । कहानी में सजीवता, सक्रियता और ताजगी का आकर्षण है ।

'उखड़े हुए लोग', (1957) में राजेन्द्र यादव ने आधुनिक जीवन की विसंगतियों और विद्रूपताओं का चित्र प्रस्तुत किया है । 'उखड़े हुए लोग' से तात्पर्य है समाज के उन लोगों से जिनकी दृष्टि में मानवीय गौरव खण्डित हो चुका है, जो क्षुद्र स्वार्थों के लिए जीवन के विघटन को और भी तीव्र बना रहे हैं । देशबन्धु, शरद सूरज, मायादेवी और उसकी पुत्री पद्मा, जया आदि के माध्यम से लेखक ने आधुनिक सन्दर्भों में मानव मूल्यों पर दृष्टिपात किया है । यह केवल शरद जया की प्रेमकथा नहीं है

---

1. हिन्दी उपन्यास : डॉ0 सुषमाधवन पृष्ठ 319.

राजेन्द्र यादव की कृति 'शह और मात' (1959) पूर्णतः व्यक्तिनिष्ठ और आत्मपरक है । सामाजिक सम्बन्ध तथा सम्पूर्ण परिवेश यहाँ पृष्ठभूमि के रूप में ही आया है । इस उपन्यास में प्रेम की मानसिक अवस्था का बड़ा ही जीवन्त चित्रण किया गया है । 'शह और मात' के पीछे जो भावजगत है वह किशोर सुलभ है, कालेज के विद्यार्थी जैसा । उपन्यास में भावों की तरलता है और एक प्रकार की आन्तरिक ईमानदारी भी है । पर वह सब किसी काल्पनिक अविश्वसनीय से लोक में जाकर विखर जाती है । राजेन्द्र यादव के पिछले उपन्यासों से इसमें भाव सत्य अधिक प्रखर होने पर भी इसका विन्यास मिथ्या भावुकता की मरूभूमि में भटकरकर लुप्त हो गयी है।[1]

व्यक्ति के अर्न्तमन, नारी के आकर्षण तथा उसके हृदय की पीड़ाओं का विवेचन करने में राजेन्द्र यादव सिद्धहस्त हैं । स्त्री पुरूष पर लिखा गया यह उपन्यास अपने विशिष्ट व्यक्तित्व को स्पष्ट करता है । मानसिक प्रेम का सूक्ष्म व्यापार और उस समय की मनःस्थिति तथा उस मनः स्थिति का व्यक्तित्व परिवर्तन की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य यही इस उपन्यास की विशिष्ट कथा है जो अपने में मौलिक है । शिल्प की दृष्टि से यह उपन्यास काफी कमजोर है । डायरीशैली में लिखा गया यह उपन्यास सुजाता का बड़ा ही सुन्दर यथार्थ जीवन्त और सूक्ष्म चित्रण करता है । किन्तु इस शैली

---

1. श्रीनेमिचन्द्र जैन - हिन्दी वार्षिकी 1960, पृष्ठ 30 - 31.

के अतिरिक्त मोह के कारण राजेन्द्र यादव किसी दूसरी पद्धति को स्वीकार नहीं कर सके हैं जिससे वे इन दोनों पात्रों (उदय अपर्णा) की कुछ सीमा तक उपेक्षाकर गए ।

इस शिल्पगत सीमा के बावजूद यह उपन्यास हिन्दी साहित्य की एक विशिष्ट उपलब्धि है । प्रेम के मानसिक संसार के नए आयाम खोलने में यह समर्थ हो सका है। 'शह और मात' डायरी और पत्रों की पद्धति पर लिखित एक मनोविज्ञान प्रधान उपन्यास है।

राजेन्द्र यादव का 'अनदेखे अनजान पुल (1963) उनके अन्य उपन्यासों की अपेक्षा अधिक सफल है । कहानी तृतीय पुरूष में कही गई है । इसमें एक कुरूप लड़की की मन:अवस्था का सजीव चित्रण है । अपनी कुरूपता के कारण वह हीन भावना से ग्रस्त है । वह कई पुरूषों के सम्पर्क में आती है और सदैव यही सोचती है कि मैं इतनी कुरूप हूँ कि कोई भी मुझसे आकर्षित नहीं होगा । उपन्यास की नायिका का नाम निन्नी है । अपने कालेपन और कुरूपता से उसके अचेतन मनमें यही भावना बैठी है, जिसके चलते उसकी प्रत्येक क्रिया किसी न किसी रूप में इससे सम्बन्धित हो गई है। वह अपनी इस हीनता के प्रति इतना सजग है कि बात-बात में उसे याद भी कर लेती है। उसके अन्दर इस हीन ग्रन्थि को बढ़ने में उसके, माता-पिता, भाभी, इस्माइल, दर्जी कॉलेज के छात्र तथा उसे बहू बनाने के लिए देखने आने वालों का अत्यधिक सहयोग रहा है ।

उसके अन्दर दमित काम-वासना काम कर रही थी, जिससे उसकी क्रियाएं कभी-कभी निरर्थक भी हो जाती थीं । निन्नी के चरित्र का निर्माण हीन भावना और दलित काम वासना दोनों के सयोंग से हुआ है । पूरे उपन्यास में उसके प्रति करुणा ही उत्पन्न होती है । बीच-बीच में अपनी हीन भावना को दूर करने के लिए वह जो बहाना या माध्यम ढूँढ़ती है, उसका चित्रण भी मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर ही हुआ है ।

'अनदेखे अनजान पुल' के दर्शन के चरित्र का चित्रण बहुत सहज ढंग से लेखक ने किया है । वह कहीं से भी बनावटी नहीं लगता। वह निन्नी को प्यार देता है क्योंकि वह मात्र रूप के पीछे दौड़ने वाला नहीं है । इस उपन्यास का शीर्षक प्रतीक्षात्मक है । अनदेखे अनजान हृदय में भी वह शक्ति छिपी हुई है जो प्रेम की शुद्धता के चलते उस पार पहुँचा दे । इस उपन्यास में भाषा शैली का कम योगदान नहीं है ।

अपने प्रति आवश्यकता से अधिक सजग और मानसिक ग्रन्थि के कारण कुण्ठित नारी का चरित्र राजेन्द्र यादव के'अनदेखे अनजान पुल' में निन्नी के रूप में उभरा है । कुण्ठाग्रस्त लड़की की मनःस्थितियों को लेखक ने सार्थक एवं सजीव प्रतीकों तथा सरल भाषा शैली में समेटकर लघु उपन्यासों के क्षेत्र में एक सर्वथा मौलिक प्रयोग किया है। उपन्यास में प्रतीकों का जाल सा बिछा है लेखक ने वर्णनात्मक शिल्प विधि का प्रयोग किया है । निन्नी की मन·स्थितियों के सूक्ष्म एवं केवल मात्र अनुभव गम्य परिवर्तनों को

लेखक ने बहुत ही सहज एवं प्रभावशाली भाषा द्वारा पाठक तक संप्रेषित किया है । कथ्य एवं शिल्प की अपूर्वता समेटे राजेन्द्र यादव की यह कृति हिन्दी के सर्वोत्कृष्ट लघु उपन्यासों में से एक है ।

'मन्त्रविद्ध' (1967) उपन्यास में तारक जैसे जीवन में कुछ न कर सकने वाले और पराश्रित पात्र का चित्र प्रस्तुत करते समय राजेन्द्र यादव ने एक नवीन शैली ग्रहण की है । कहानी उत्तम पुरुष के माध्यम से कही गई है और सुनने वाला भी उत्तम पुरुष ही है । कथा सोलह काल-खण्डों में विभाजित है और सोलह बैठकों में समाप्त होती है । 'मन्त्रविद्ध' का तारक विगत तथा आगत (बीते हुए कल तथा आने वाले कल) की बात करता है और कथा की गति में ज्वार भाँटा आता रहता है । लेखक शिल्प प्रयोग के प्रति सजग है और अपनी रचना को अ उपन्यास कहलाने का इच्छुक है, जिसमें उसने कथा - रूढ़ियों को तोड़ा है ।

उपन्यास कला व शिल्प के प्रति सजग राजेन्द्र यादव का 'कुलटा' (1969) लघु उपन्यास अपनी प्रतीकात्मकता, अर्थगहनता व शैली आदि की दृष्टि से हिन्दी लघु उपन्यासों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है । इस लघु कृति में नैतिक व सामाजिक जड़ एवं मृत प्राय परम्पराओं तथा रूढ़ियों से संघर्ष करती, जीवनोल्लास व उद्दाम जीवनी शक्ति से भरपूर आधुनिक नारी के हृदय की अतल गहराइयों को परख कर लेखक ने सिद्ध कर

दिया है कि ये प्राचीन नैतिक रूढ़िगत परम्पराएं चाहे कितना भी प्रयास करें, दुर्दमनीय जीवनी शक्ति तथा मानव के स्वाभाविक मनोविकारों को बाँधकर नहीं रख सकतीं क्योंकि ये प्राणहीन हो चुकी हैं ।[1]

'कुलटा' उपन्यास का कथ्य आत्मकथात्मक शैली, पूर्वदीप्ति(Flash Back) पद्धति तथा प्रतकों आदि की योजना द्वारा अपूर्व कौशल से लेखक ने प्रस्तुत किया है । यह नारी चरित्र भी राजेन्द्र यादव के लघु उपन्यास 'अनदेखे अनजान पुल' की निन्नी की ही भांति विलक्षण और आत्मकेन्द्रित है । जहाँ 'अनदेखे अनजान पुल' की निन्नी अपनी कुरूपता के प्रति सजग होने के कारण संकुचित अन्तमुर्खी और हीन भावना से ग्रसित होने के कारण स्वयं को सबकी दया का पात्र अनुभव करती है, वहीं 'कुलटा' की मिसेज तेजपाल अपने चुम्बकीय शारीरिक सौन्दर्य के प्रति अतिरिक्त सजग, एवं जीवनोल्लास तथा स्फूर्ति से मण्डित होने के कारण अपने को सबसे ऊँचा समझती है और अपने आस-पास के वातावरण को तुच्छ समझती है तथा सबके प्रति दया दिखाती है ।

उपन्यास का शीर्षक व्यंगात्मक है एवं दोहरी अर्थ व्यंजना समेटे है । किसी गम्भीर बात को सहज ढंग से कह जाना लेखक की अपने विशेषता है। प्रतीकात्मकता दोहरी अर्थ व्यंजकता तथा अपूर्व शिल्प विशिष्टताओं से समन्वित करके राजेन्द्र यादव ने 'कुलटा' उपन्यास द्वारा हिन्दी लघु उपन्यासों में निश्चय ही नवीन आयाम जोड़ा है।

---

1. लघु उपन्यासों का शिल्प - माधुरी खोसला, पृष्ठ - 136

मन्नू भण्डारी (1931)

आधुनिक कहानी जगत् में लोक जनित हस्ताक्षर मन्नू भण्डारी कृत 'आपका बन्टी' (1971) एक प्रसिद्ध बहुचर्चित उपन्यास है। इनके अन्य उपन्यास हैं 'एक इंच मुस्कान (1962) (संयुक्त लेखन) और 'महाभोज' (1979)। राजेन्द्र यादव के साथ लिखे गये 'एक इंच मुस्कान' के बाद उनके उपन्यास 'आपका बंटी' ने काफी ख्याति प्राप्त की।

'आपका बंटी' एक ऐसे संवेदनशील बालक की कथा है, जो पढ़े-लिखे स्वतन्त्रजीवी माता-पिता की सन्तान है । बंटी के माता-पिता एक दूसरे से अलग रहने का निश्चय कर चुके हैं । उसकी स्वयं की उम्र सात आठ वर्ष से अधिक नहीं है । माता-पिता से तलाक होने पर वह माँ के पास रह जाता है । उसके माता-पिता अपना अपना पुनर्विवाह करते हैं । बंटी की माँ एक ऐसे डॉक्टर से विवाह करती है जिसके पूर्व पत्नी से दो बच्चे हैं । बंटी इस परिवार में समायोजन नहीं कर पाता । वह स्वयं को उपेक्षित महसूस करने लगता है । अपनी माँ को छोड़कर वह अपने पिता के साथ कलकत्ता चला जाता है पर वहाँ भी अपनापन महसूस नहीं करता क्योंकि वहाँ उसके पिता की दूसरी पत्नी है । उपन्यासकार ने स्त्री-पूरूष के तनावपूर्ण सम्बन्धों के बीच एक बालक के मानसिक जीवन पर प्रकाश डाला है । बंटी को छोड़कर उपन्यास के सभी पात्र अपनी अपनी कुण्ठाओं, वर्जनाओं और महत्वाकांक्षाओं को लेकर अहं की संकीर्ण परिधियों में विचरण करते रहे। बंटी का ध्यान किसी ने नहीं रखा । लेखिका ने बंटी

के जीवन की त्रासदी को संयत और निरपेक्ष दृष्टि से चित्रित किया है । बालक मन का इतना वास्तविकतापूर्ण चित्रण पहली बार हिन्दी साहित्य में हुआ है, जो बाल-मनोविज्ञान का निस्संग परन्तु कलापुर्ण उपयोग का उदाहरण है ।

यह उपन्यास हिन्दी उपन्यासों में प्रौढ़ता की विशेष पद्धती देता है। इस उपन्यास का लक्ष्य सन्तानवान् होने वाली समस्याओं का उद्‌घाटन करना है । ऐसी विपरीत परिस्थितियों में बालक के भाव विकास के अन्तर्गत विभिन्न विकारों, मनोदशाओं, प्रवृत्ति तथा मन के दु:ख आदि का अध्ययन लेखिका के उपन्यास का कथन है । इस उपन्यास का उद्‌देश्य बालक के भाव-विकास का अध्ययन करना है। वास्तव में अपने-अपने सम्बन्ध विच्छेद किए हुए माता-पिता की सन्तान का ऐसा प्रमाणिक चित्रण और किसी उपन्यास में नहीं मिलता । भाषा तथा निरीक्षण शक्ति लेखिका की अपनी है । कहीं कहीं बंटी का मनोविज्ञान बनावटी और थोपा हुआ लगता है । लेखिका ने सूचनात्मक पद्धति का प्रयोग करते हुए घटनाओं और पात्रों में तादात्म्य उपस्थित किया है । जीवन की विभिन्न स्थितियों का लेखिका ने यथावत् चित्रण किया है । अंतिम अशं में चेतना प्रवाह पद्धति का आश्रय ग्रहण किया गया है । कतिपय दोषों के रहते हुए भी 'आपका बंटी' विभिन्न पात्रों की मन:स्थितियों को आधुनिकता के सन्दर्भ में उभारने और तिरस्कृत बालक का मनोविज्ञान प्रस्तुत करने की दृष्टि से अपनी विषिष्टता रखता है । यह उपन्यास आज के महानगरीय जीवन पर एक तीखा व्यंग्य है ।

मन्जू भण्डारी का उपन्यास 'महाभोज' (1979) व्यक्तिगत दुःख - दर्द अन्र्तद्वन्द्व या आन्तरिक नाटक को देखने से भिन्न, विद्यमान परिस्थितियों के बाद राजनीति के संदर्भ में 'मनुष्य' की नियति का आलेख प्रस्तुत करता है । आज के युग में 'चुनाव' राजनीति का सबसे बड़ा प्रतीक है । प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से इस चुनाव के बीच मानवीय त्रासदी, करुणा , ममता और पीड़ा की नियति की सच्चाई को अभिव्यंजित करनेका सशक्त प्रयास लेखिका ने किया है । राजनीतिज्ञों की ऊपरी महानता और गम्भीरता के खोल के अन्दर से उनकी जो घिनौनी तस्वीर है वह छोटे-छोटे विवरणों के माध्यम से उभारी गयी है । राजनीतिक जीवनकी मूल्यहीनता, दोगलीनीति भ्रष्टाचार, अवसरवादिता, दलबदलू नीति आदि के सही रूपको मन्नू भण्डारी के उपन्यास 'महाभोज', में देखा जा सकता है । राजनीति दिनों दिन पूंजीवादों के जाल में फंसती जा रही है और मध्यवर्गीय ईमानदार परिश्रमी इनके शिकार बन जाते हैं । मूल्यहीनता ने आज के जीवन को विषाक्त कर दिया है । उपन्यास में एक ओर सामाजिक उत्पीड़न, अन्याय, शोषण है तोदूसरी ओर व्यवस्था पोषक राजनीति की तकड़म बाजी है जिनके बीच न्याय पाने के लिए द्वन्द्वरत ईमानदार व्यक्ति पिसता है । उपन्यासकार ने गाँव में रहने वाले शिक्षित युवा बिसू, बिन्दा, ईमानदार पुलिस ऑफिसर सक्सेना, विधायक त्रिलोचन सिंह के सन्दर्भ में व्यक्तिगत द्वन्द्व तथा व्यक्ति और समाज के द्वन्द्व का चित्रण किया है ।

लेखिका ने राजनीतिक वातावरण को यथार्थ की व्यापक भावभूमि पर चित्रित किया है । नेताओं का पद के प्रति लालच, स्वार्थपरता अवसरवादिता आदि का पर्दाफाश

हुआ है । बड़ी-बड़ी पार्टियों के द्वारा शोषण कुर्सी के लिए मौकापरस्ती, सत्ता प्राप्ति के लिए नैतिक, अनैतिक, स्वार्थ साधना के लिए नोच - खसोट आदि का यथार्थ चित्रण लेखिका की लेखनी समर्थ रूप से कर सकी है । जो इस शोषण और भ्रष्टाचार के विरुद्ध आवाज उठाते हैं वे या तो बिसू की तरह खत्मकर दिए जाते हैं, या बिन्दा की तरह नौकरी से सस्पेंड (मुअत्तल) कर दिए जाते हैं या फिर लोचन भैया कीतरह मंत्रिमण्डल से निकाल दिए जाते हैं । यह व्यक्ति और समाज का द्वन्द्व है ।

उपन्यास के अन्त में लेखिका ने एक प्रश्न उठाया है कि 'एकला चलो रे' गीत कितने कदम चला पाएगा किसी को भी?[1] शोषण और न्याय का संघर्ष अकेले नहीं लड़ा जा सकता । अजय तिवारी के शब्दोंमें "महाभोज" निष्क्रिय बौद्धिकता या व्यक्तिवादी क्रान्तिकारिता में नहीं उलझाता वह सकर्मक और व्यावहारिक संघर्ष की सार्थकता पर जोर देता है ।[2] स्वतन्त्रता के चौथे दशक के समकालीन सामाजिक, राजनीतिक जीवन की यथार्थ झाँकी को महाभोज में रूपात्रित कर लेखिका ने व्यक्ति - व्यक्ति के द्वन्द्व और व्यक्ति समाज के द्वन्द्व का विश्लेषण किया है ।

---

1. महाभोज, मन्नू भण्डारी, पृष्ठ 182.
2. आलोचना (64 - 65), पृष्ठ - 74.

लक्ष्मी नारायण लाल - (1927)

लक्ष्मी नारायण लाल प्रेमचन्द की परम्परा में एक सामाजिक उपन्यासकार माने जाते हैं । किन्तु उनके उपन्यासों को देखने के बाद उन्हें व्यक्तिवादी उपन्यासकार कहना ही ठीक होगा क्योंकि इनके उपन्यासों में समाज के चित्रण में व्यक्ति की प्रधानता है। प्रेमचन्द में व्यक्ति के चित्रण में समाज की प्रधानता है । लक्ष्मीनारायण लाल के उपन्यास 'धरती की आँखे' में गरीबी और जहालत में रहते हुए भी हम रोग दूर नहीं कर पा रहे हैं, यह तथ्य उद्‌घाटित किया गया है । 'बयाका घोंसला और साँप' में तहसीलदार जैसे समाज के अजगरों द्वारा सुभागी जैसी निरीह निष्कलुष बया के निगले जाने की कहानी कही गई है । बड़ी चम्पा; छोटी चम्पा में नारी समाज को चुनौती देती दिखाई देती है । पुरुष स्त्री को किसी भी रूप में चैन नहीं लेने देता उसी की प्रतिक्रिया इस उपन्यास में है। 'काले फूल का पौधा' नामक लघु उपन्यास में मध्यवर्गीय जीवन की विषमता को अभिव्यक्ति प्रदान की गई है । 'मनवृन्दावन' में उन्होंने देश और समाज के मर्मस्थल को स्पर्श किया है ।

लक्ष्मीनारायण लाल का उपन्यास 'धरती की आँखें' एक रोमानी उपन्यास है । वैसे तो इसका विषय कृषकों और जमींदारों का संघर्ष है किन्तु कथा का मूलस्रोत त्रिकोणात्मक प्रेम कहानी है । विजयगाँव के जमींदार का बिगड़ा हुआ लड़का है। संघर्ष का केन्द्र शेखपट्टी की सुन्दरी जैनब है । एकरात जैनब और गोविन्द का नाटकीय

परिस्थितियों में मिलना होता है । यही आकस्मिक मिलन अनेक घटना चक्रों की सृष्टि करता है । इस मिलन की धटना को विजय देख लेता है और गाँव के लोगों को गोविन्द के प्रति भड़काकर गोविन्द को बलि चढ़ाने का षड़यन्त्र रचता है । किन्तु असफल हो जाता है । जैनब तथा गोविन्द का गन्धर्व विवाह हो जाता है । उपन्यास की विचित्रता यह है कि इस अन्तर्जातीय विवाह का हिन्दू तो विरोध करते हैं पर मुसलमान कुछ नहीं कहते। उपन्यासकार की रोमानी दृष्टि से इस पर कोई ध्यान नहीं दिया है । गाँव वालों के भोलेपन तथा अन्धविश्वासों का अतिरंजित वर्णन है । इस उपन्यास में कई रोमाञ्चकारी घटनाओं का वर्णन है । ग्रामीणों की दशा के चित्रण के लिए घटना बहुलता का आश्रय लिया गया है । वातावरण चित्रण में लेखक को पर्याप्त सफलता मिली है ।

'बया का घोंसला और साँप' (1963) प्रेमचन्द की परम्परा की एक आदर्शोन्मुख यथार्थवादी कृति है । इस उपन्यास की कथावस्तु आकर्षक और मनोरंजक है। नवीन कथाकारों की कृतियों में डॉ0 लक्ष्मीनारायण लाल की इस कृति की काफी चर्चा हुई है । यह कहानी - गाँव की पवित्र संस्कारों और शुद्ध चरित्र वाली नारी की निरीह स्थिति और घातक वृत्तियों से संचालित कामुक पुरूष के द्वन्द्व की कहानी है । इस उपन्यास की सुभागी निम्न मध्यवर्ग का चरित्र है । धर्म, ईश्वर, भाग्य आदि में उसे अटूट विश्वास है उसकी असहाय अवस्था से अनुचित लाभ उठाने वाले अनेकों प्रयत्न करते हैं। परन्तु उसकी अद्भुत दृढ़ता और पति परायणता उसे पथभ्रष्ट होने से बचा लेती है। इस

उपन्यास के चरित्र प्रेमचन्द की स्वस्थ परम्परा में पड़ते हैं और इस परम्परा का सुन्दर ढंग से निर्वाह भी हुआ । किन्तु इससे प्रेमचन्द की परम्परा आगे नहीं बढ़ती । आज के इस युग में प्रेमचन्द के आदर्शों को उपस्थिति करना एक पुनरुथ्थानवादी दृष्टि है, जो इतिहास के गत्यात्मक पक्ष को नहीं देख पाती। मूक प्रतिरोध समाज की विकृत व्यवस्था को बदलने में समर्थ नहीं हो सकता । ऐसी परिस्थिति में इसे प्रेमचन्द के आदर्शों का अवशिष्ट कहा जाएगा ।

यद्यपि यह उपन्यास भी अनेक असंगतियों एवं अस्वाभाविक घटना प्रसंगों से भरा हुआ है किन्तु इसमें स्थान-स्थान पर ग्रामीण जीवन की झाँकियां, कस्बे की आत्मा का चित्रण बड़ा ही मार्मिक है । ताड़ के पेड़ पर बयाके घोंसले जिनमें पक्षी न थे । प्रतीकात्मक ढंग से समाज एवं भाग्य के अजगरों द्वारा बया जैसी निरीह एवं पवित्र सुभागी के सुहाग के लुटने का संकेत देते हैं आँगन की धूमती छायाएँ आकाश के बादलों की फटी चुनरी का प्रतीकात्मक प्रयोग भी प्रभाव उत्पन्न करता है । कहानी सरस, सुगठित एवं मनोरम है ।

'बड़ी चम्पा:छोटी चम्पा' (1961) एक लघुकाय उपन्यास है । इसमें वेश्या जीवन की एक समस्या को अत्यन्त मार्मिकता से चित्रित किया गया है। इस उपन्यास के माध्यम से

लक्ष्मीनारायण लाल ने यह सिद्ध किया है कि मात्र मानून बना देना ही सामाजिक समस्याओं का समाधान नही । समाज को परिवर्तित करने के लिए व्यक्तिका परिवर्तन आवश्यक है और व्यक्ति के परिवर्तन के लिए आवश्यक है कि परम्परागत धारणाओं और विश्वासों का अन्त हो। सरकारी आदेश से वेश्याओं को वेश्यालयों से हटाया तो गया किन्तु यह नहीं बताया कि वे कहाँ जाएँ । यह सत्य है कि वेश्यालय समाज के लिए अभिशाप हैं । उनका उन्मूलन होना चाहिए पर इन वेश्याओं के लिए कुछ योजनाएं तो सरकार के पास अवश्य होनी चाहिए । जिससे ये अपने इस काम को छोड़कर कुछ दूसरा कर सकें । उन्हेंआदेशहोता कि वे वसन्तपुर छोड़कर बस्ती में चाहे जहाँ रहे । परिणामतः कुछ तो विवाह के लिए तैयार हो जाती है जैसे बड़ी चम्पा और कुछ, जो वह है वही रहना चाहती है जैसे चम्पा । बड़ी चम्मा के विवाह का परिणाम होता है कि सुखी नहीं हो पाती क्योंकि उसका पति इससे उसी आचरण की अपेक्षा करता है जैसा वह वेश्या जीवन में करती थी । परन्तु वह पूर्व संस्कारों को मिटाकर पूर्ण गृहिणी बनना चाहती थी। इस द्वन्द्व में बड़ी चम्पा पिस जाती है और घर से भाग निकलती है और दयनीय मृत्यु को प्राप्त करती है ।

छोटी चम्पा पत्नी बनने के समस्त प्रस्ताव को ठुकरा देती है । वह वही रहना चाहती है जो वह है परन्तु वह भी सुखी नही हो पाती ।

इस प्रकार बड़ी चम्पा : छोटी चम्पा उपन्यास में उन वेश्याओं के कारुणिक जीवन की कहानी प्रस्तुत की गई जो कानून और समाज दोनों से मारी जाकर नहीं की भी

नही रह गई । बड़ी चम्पा, छोटी चम्पा के चित्रण के माध्यम से लेखक ने अन्य कई सामाजिक विकृतियों को भी प्रस्तुत किया है । यह उपन्यास वेश्याजीवन के सन्दर्भ में सामाजिक विसंगतियों को उभारने में अच्छी तरह समर्थ है । स्पष्ट है कि नैतिक उन्नति से ही समाज का उद्धार हो सकता है, अन्य बाहरी प्रयासों से नहीं ।

'काले फूल का पौधा' (1955) उपन्यास में उच्च मध्यवर्गीय पति-पत्नी के सम्बधों का विवेचन है । इसकी नायिका गीता एक धार्मिक परिवार की सुशिक्षित लड़की है। उसका विवाह धनी परिवार के लड़के से होता है । जो आधुनिक प्रगतिशील सभ्यता का पक्षधर है । पत्नी को वह पूर्णतः आधुनिक बनाना चाहता है तथा पूर्व प्रेयसी के साथ भी घनिष्ठता का सम्बन्ध रखता है । धैर्यपूर्वक बहुत दिनों तक सहन करने के उपरान्त वह पितृगृह जाने का निश्चय करती और पुत्र को लेकर चली जाती है । वहीं उसका एकमात्र पुत्र बीमार पड़ जाता है । वह पति को रचना देना भी उचित नहीं समझती । उसका पति स्वयं आता है परन्तु बच्चा बच नहीं पाता । बच्चे की मृत्यु मानो उसे झकझोरकर जगा देती है ।

इस उपन्यास में ही तो आप स्वयं अपनी आप बीती सुनाते हैं और कुछ अध्यायों में लेखक उनकी जीवनी का निरूपण करता है । किन्तु यह मिश्रित शैली अधिक प्रभावोत्पादक नहीं हो सकी है । भाषा शैली की दृष्टि

से यह उपन्यास पिछले उपन्यासों से कुछ परिमार्जित है किन्तु कहीं-कहीं विच्छिन्न शब्दों के प्रभाव से सृष्टि का प्रयास सर्वथा विफल होता है ।

लक्ष्मी नारायण लाल का 'मन वृन्दावन' प्रतीकात्मक शिल्पविधि का एक (1966) महत्वपूर्ण उपन्यास है । इस उपन्यास में मानव के मन को वृन्दांवन कानकर चित्रण किया गया है । कथा ब्रजधाम की परिक्रमा के प्रंसग में घटित होती है । यह यात्रा कालक्रम में अभिव्यक्ति पाती जीवन यात्रा है ।

निर्मल वर्मा (1929)

निर्मल वर्मा हिन्दी के विशिष्ट लेखक है, जो अपनी कथाओं में ऐसी अनुभूतियों और संवेदनाओं का संसार निर्मित करते हैं जो उनकी अतिशय वैयक्तिकता और अप्रतिभता से अंकित होने के कारण पाठकोंको बहुत कठिनाई में डाल देता है । अपने अतिविशिष्ट पात्रों की जटिल एवं सूक्ष्म मनोदशा का बारीकी से अंकन करने के कलात्मक - साहस के कारण ही यह कठिनाई उपजती है । इनके उपन्यास हैं - 'वेदिन', 'लालटीन की छत': अकेलेपन के वे द्वीप', 'एक चिथड़ा सुख।'

निर्मलवर्माकृत 'वे दिन' (1964) में व्यक्ति केन्द्रित सबसे अधिक उभरा है। उनका यह प्रथम उपन्यास अस्तित्ववादी दृष्टिकोण से प्ररित होकर लिखा गया है । निर्मल वर्मा ने इस उपनयास में द्वितीय महायुद्धोत्तर काल की युवा पीढ़ी की मनःस्थितियों को, जीवन की रिक्तता, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विघटन को सूक्ष्म संवेदनात्मक शक्ति द्वारा पकड़ने और चित्रित करने और सम्भवतः आधुनिकता का रूप प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। परन्तु जीवन के प्रति आस्था की नितान्त उपेक्षा की है । मानव जीवन में आस्था न होना तो जीवन से पलायन है । इस उपन्यास में व्यक्ति की स्वतन्त्रता अनेक स्थलों पर उपहास्यास्पद बन गई है । उपन्यास में कोई क्रमबद्ध कथानक नहीं है केवल नियति और रीतापन है । सम्पूर्ण उपन्यास अस्तित्ववादी सूत्रों के आधार पर कलात्मक संरचना का आभास देता है।कलात्मक सौष्ठव, प्रवाह, सक्षम भाषा, सूक्ष्म संवेदनात्मक चित्र प्रस्तुत करने

की शक्ति, कलात्मक अन्विति की दृष्टि से यह उपन्यास सफल कहा जा सकता है । उक्त उपन्यास की कथाभूमि विदेशी है । किन्तु लेखक स्वयं वहाँ रहे हैं इसलिए उसके साथ उनका अनुभवात्मक सम्बन्ध जुड़ा है, इसीलिए वहाँ की स्थितियाँ चरित्र, दृश्य सभी प्रमाणिक रूप में आए हैं । डॉ0 इन्द्रनाथ मदान के शब्दों में उपन्यास में 'आज के जटिल और गतिशील वास्तव को पकड़ने की कोशिश है।'[1] निर्मल वर्मा का साहित्य स्मृति-सर्जन साहित्य है । उपन्यास में इन्ही स्मृतियों को उकेरा गया है । एक नयी संवेदनाको कलात्मक अभिव्यक्ति देने में 'वे दिन' सफल प्रयोग है ।

'लालटीन की छत : अकेलेपन के वे द्वीप' उपन्यास में निर्मलवर्मा ने बचपन और यौवन की सीमारेखा पर खड़ी हुई लड़की की अत्यन्त आँतरिक मनोदशाओं का अतिशय सूक्ष्म रेखाकंन है । 'लालटीन की छत' में निर्मल उस शिखर बिन्दु पर स्थित है जहाँ पहुँचना अध्यवसायी और कल्पना शक्ति से युक्त पाठक के लिए असंभव नहीं तो कठिन अवश्य प्रतीत होगा । लड़की का नाम काया है । यह नादान सी लड़की सत्य और भ्रम, वस्तुस्थिति और कल्पना से उपजी मनःस्थिति, वास्तविकता और स्वप्न इनके बीच अन्तर नहीं कर पाती । अपने अकेलेपन की पीड़ा का कारण तो वह नहीं जानती परन्तु उसे भूलने के लिए सबसे किसी न किसी स्तर पर अंतरंग बनने का असफल प्रयत्न करती है और

---

1. हिन्दी उपन्यास : पहचान और परख सं0 डॉ0 इन्द्रनाथ मदान - पृ0 86

बदले में उसके अकेलेपन की तीव्रता बढ़ती जाती है । संवेदनशील पाठक के सम्मुख जिन्दगी के अकेलेपन का भयावह सर्व समावेशक रूप ही खड़ा किया गया है इस उपन्यास में।

कमलेश्वर :

एक व्यक्ति और साहित्यकार के रूप में कमलेश्वरको आशातीत सफलता प्राप्त हुई । आम आदमी की जिन्दगी को और उसकी विसंगति को कमलेश्वर ने अपने अन्दाज में प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है|इनकी कृतियों में मध्यवर्ग का यथार्थ सपष्ट दृष्टिगोचर होता है । 'कमलेश्वर अपनी रचनाओं में युगसत्य को उद्घाटित करने में काफी सफल रहते हैं|उनके लघु उपन्यासों में बड़ी सूक्ष्मता और सांकेतिकता के साथ नए सामाजिक यथार्थ को निरूपित कियागया है ।[1] इनहोंने अपने उपन्यासों में एक निश्चित जीवन और वर्ग को केन्द्र मानकर लिखा है । कस्बों में रहने वाले निम्न वर्ग और मध्यवर्ग उनकी रचनाओं के प्रतिपाद्य हैं । कस्बाई जीवन की असंगतियों, उनके अभावों और शोषण को इन्होंने अपना विषय निर्धारित किया है । शिक्षित मध्यवर्ग जो वित्तीय स्तर से अभाव ग्रस्त है, उसके जीवन का यथार्थ चित्रण कमलेश्वर की कृतियों में दिखाई देता है ।

कमलेश्वर की मूलवृत्ति कहानीकार की है पर कहानीकार के रूप में उनकी जो सजगता है वह न जाने क्यों उपन्यासकार के रूप में वह पकड़ नहीं रखती ।

---

1. डॉ0 घनश्याम मधुप - हिन्दी लघु उपन्यास पृष्ठ 160.

कलेश्वर जो भी कहते हैं वह एकदम स्पष्ट और साफ-साफ जो बहुत कम कलाकारों में मिलती है। जीवन के प्रति स्पष्ट दृष्टिकोण होने से ही उनकी कृतियों में यह साफगोई स्पष्ट झलकती है ।

कमलेश्वर नए उपन्यासकारों की उस पीढ़ी के लेखक हैं, जिन्होंने जैनेन्द्र, अज्ञेय, यशपाल और इलाचन्द्र जोशी की रूढ़ कथा चेतना को नवीन और स्वस्थ सामाजिक भूमि देने की चेष्टा की है । कमलेश्वर की कृतियाँ हैं - "एकसड़क सत्तावन गाड़ियाँ", 'डाक बंगला', तीसरा आदमी', समुद्र में खोया हुआ आदमी', 'लौटे हुए मुसाफिर', 'काली आंधी','आगामी' अतीत । इनमें से कुछ उपन्यासों पर सवाकचित्रों का निर्माण हो चुका है वे हैं 'एकसड़क सत्तावन गालियाँ, 'बदनाम गली' के नाम 'डाक बंगला', 'काली आँधी', 'आँधी' के नाम से तथा 'आगामी अतीत' 'मौसम' के नाम से । इनकी कथाओं पर बनी फिल्मों को आशातीत सफलता प्राप्त हुई ।

'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' ॥1961॥ कमलेश्वर का सर्वप्रथम प्रकाशित उपन्यास है । इस प्रथम लघु उपन्यास ने ही इन्हें प्रतिष्ठित रचनाकारक बना दिया । यह रचना का सौष्ठव ही है जिसने कमलेश्वर को प्रथम पंक्ति के उपन्यासकारों में लाकर खड़ा कर दिया । 'इस उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषत यह है कि आकार प्रकार में लघु होने के बावजूद विस्तार में काफी बड़ा है । इसके गहराई की थाह पाना मुश्किल है । कस्बाबोध की पृष्ठभूमि पर लिखा गया यह एक ऐसा उपन्यास है जो आधुनिक युगीन परिवर्तनों का

का संकेत करता है तथा साथ ही इन परिवर्तनों की व्यक्ति के मन पर प्रतिक्रिया को उद्घाटित करता है । इस लघु उपन्यास की कहानी स्वतंत्रता को उद्घाटित करता है । इस लघु उपन्यास की कहानी स्वतंत्रता से पूर्व लिखी गई और उनका अन्त स्वतन्त्रता के पश्चात हुआ । इस रचना से तत्कालीन सभी समस्याओं का चित्रण किया गया है सामाजिक चिन्तन के साथ इसमें कठोर व कोमल भावों का सुन्दर अंकन हुआ है क्योंकि लेखक की दृष्टि ही व्यापक और सरल है । निस्सन्देह कमलेश्वर का यह प्रथम प्रयास उन्हें श्रेष्ठता और प्रशंसा के योग्य बना सका ।

'डाक बंगला' (1963) उपन्यास में लेखक ने पूर्वदीप्ति पद्धति (Flash Back) का प्रयोग किया है । इसमें इरा नामक युवती की आप बीती को आत्मकथात्मक शैली में अत्यन्त प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया गया है । 'डाक बंगला' की कथा एक साथ दो मार्गों पर चलती है । वास्तव में कमलेश्वर ने इस लघु उपन्यास में इरा की काम भावनाओं को सेक्स के आधार पर मनोविज्ञान के सहारे विश्लेषित करने का प्रयत्न किया है । जीवन में अपने अस्तित्व तथा अपने आप को बनाए रखने के लिए एक सुशिक्षित युवती को किन किन समस्याओं से दो-चार होना पड़ता है, इसका मार्मिक चित्रण इस उपन्यास में हुआ है । कई स्थलों पर इरा के चरित्र में दार्शनिकता आ गई है नारी जीवन की असहाय और दयनीय परिस्थितियों का अंकन करने में कमलेश्वर सफल रहे हैं ।

कमलेश्वर कृत 'काली आंधी' (1974) राजनीतिक संस्था के मंच पर व्यक्ति की सत्ता के प्रति आंकाक्षा की कथा है । इस उपन्यास का कथा चक्र वैयक्तिक और

सामाजिक दो भिन्न स्तरों पर एक साथ चलता है । यह एक ओर तो असफल दाम्पत्य की करूण कथा प्रतीत होती है तो दूसरी ओर सम्पूर्ण देश में फैले हुए छल, कपट और कुचक्र की करुण कहानी लगती है । यह लघु उपन्यास आकार में छोटा होते हुए भी जीवन के विशाल पटल को लेकर चला है । आज के इस युग में भ्रष्टाचार और राजनीतिक जीवन के सभी क्षेत्रों में इस तरह व्याप्त है कि चाहते हुए भी व्यक्ति इससे मुक्त नहीं हो पाता । एक गहरी व्यापक वेदना इस उपन्यास में सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है । कमलेश्वर ने रोजमर्रा के यथार्थ को बहुत ही सूक्ष्मता से चित्रित किया है । कमलेश्वर के पास सही शब्दों में सही बात कहने की अद्भुत कला है । काली आँधी में अनेक स्स्थलों पर उच्चवर्गीय समाज का भी चित्रण हुआ है । व्यक्ति के आन्तरिक संघर्ष और घटनाओं को कमलेश्वर ने यथार्थ चित्रण किया है । कम से कम शब्दों में सम्पूर्ण परिवेश को प्रस्तुत करने का प्रयास उनकी रचनाओं की सबसे बड़ी विशेषता है ।

'आगमी अतीत' उपन्यास में असफल सम्बन्धों की परिणति किस प्रकार होती है इसका मार्मिक चित्रण कमलेश्वर ने किया है । आज के इस मशीनीयुग में सामन्तवादी और पूंजीवादी सामाजिक व्यवस्था को गलत तरीके से अपनाकर किस तरह सफलता मिलती है इसका चित्रण 'आगामी अतीत' में हुआ है । आज व्यक्ति के लिए उस क्षण को प्राप्त करना ही मुख्य लक्ष्य है जब वह हर कार्य ओर दृष्टि का केन्द्र हो । उसके चारों ओर लोगों की भीड़ हो । इस स्थिति को प्राप्त करने के लिए वह सब कुछ कर गुजरता है।

परन्तु ज्वार के उतर जाने पर जब मूर्छा टूटती है तो वह जान पाता हैकि उसे तो कुछ भी नहीं मिला तब यह सच्चाई उजागर होती है कि वे रोमांचकारी क्षण उसके जीवन का प्राप्य और न ही वे जीवन को सार्थक बना पाए हैं । तब व्यक्ति उन सम्बन्धों और व्यक्तियों की तलाश में निकलता है जिनसे जीवन की सार्थकता है इसी का सार्थक चित्रण उक्त उपन्यास में किया गया है । मनुष्य के भीतर जितने भी स्नेह और घृणा के भाव होते हैं, अच्छी बुरी बातें होती हैं उन सभी को तीव्र अभिव्यक्ति इस लघु उपन्यास में मिली है ।

'आगामी अतीत' में कमलेश्वर ने उन व्यक्तियों की जिन्दगी का अत्यन्त मार्मिक चित्रण किया है जिनकी आमतौर पर उपेक्षा होती है । कमलेश्वर ने जीवन के कटु यथार्थ को समाज के सम्पूर्ण परिवेश के साथ अभिव्यक्ति दी है ।

'तीसरा आदमी' (1964) कमलेश्वर का एक ऐसा लघु उपन्यास है जो बिना किसी बुनावट के सहज शैली में लिखा हुआ है । पति-पत्नी के बीच किसी तीसरे आदमी के आ जाने से दाम्पत्य जीवन में एक संघर्ष आपसी सम्बन्धों के बीच कैसे निर्मित होता है इसका प्रभावी चित्रण इसमें किया गया है । यह उपन्यास मध्यवर्गीय दाम्पत्य की मान्यताओं का अभिलेख है । मध्यवर्गीय जीवन की कुण्ठाओं, विशेषताओं तथा अभावों का सशक्त अंकन इस रचना में लक्षित होता है । जीवन की कटु इस रचना में अनेक स्तरों पर विकसित हुआ है, यही इसकी विशेषता है ।

'समुद्र में खोया हुआ आदमी' (1965) में शहरी जीवन के विखराव और टूटन को अभिव्यक्ति दी गई है । क्योंकि शहरी जीवन का मूलाधार अर्थ है अर्थ के अभाव में मानव टूटकर बिखर जाता है । सामान्य आदमी के जीवन का मूलाधार अर्थ है अर्थ के अभाव में मानव टूटकर बिखर जाता है । सामान्य आदमी के जीवन का संघर्ष और अभाव इस कृति में मुखरित हुआ है । इस लघु उपन्यास का प्रत्येक पात्र संघर्षरत है । किसी परिवार या उसके सदसयों के आन्तरिक एवं वाहय संघर्ष का पर्याप्त विस्तार और गहराई से किया गया चित्रण इस उपन्यास में परिलक्षित होता है । इस उपन्यास में न तो कोई आदर्श है और नही कोई समझौतावादी दृष्टिकोण जिसके परिणाम स्वरूप यह रचना और भी प्रभावशाली हो गई है ।

विभाजन को लेकर लिखा गया 'लौटे हुए मुसाफिर' (1963) उपन्यास वास्वत में मानवतावादी दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है।कमलेश्वर ने विभाजन की घटना के माध्यम से वास्तव में इन्सानी रिश्तों के मानवीय मानदण्डों की खोज की है । 'इस उपन्यास की अतिरिक्त विशेषता यह है कि यह केवल किन्ही दो या चार पात्रों की दुःखभरी कहानी मात्र नहीं बल्कि एक पूरे सम्प्रदाय की परिस्थिति जन्य यातनाओं को प्रस्तुत करने वाली रचना है । यह उपन्यास कमलेश्वर के महत्वपूर्ण उपन्यासों में से एक है । डॉ0 सिनहा के शब्दों में ....'लौटे हुए मुसाफिर में आस्था' आत्मविश्वास', कर्त्तव्यपरायणता एवं दायित्व निर्वाह का जो उन्होंने महान सन्देश दिया है - वह आज के परिप्रेक्ष्य में अत्यन्त महत्वपूर्ण है ओर इसलिए इस पीढ़ी के प्रकाशित उपन्यासों में कमलेश्वर का यह उपन्यास विशेष उल्लेखनीय हो जाता है ।[1]

---

1. डॉ0 सुरेश सिन्हा : हिन्दी उपन्यास उद्भव ओर विकास पृ0 558

श्रीलाल शुक्ल (1926)

स्वतन्त्रता के बाद के भारतीय परिवेश के प्रत्येक, क्षेत्र की उथल-पुथल, प्राचीन और आधुनिक द्वन्द्व, टूटन, स्वार्थपरता, संस्कार हीनता, मूल्य हीनता, आधुनिक बुद्धिजीवी वर्ग की अकर्मण्यता, पतनोन्मुखता का दर्पण है - श्रीलाल शुक्ल का 'रागदरबारी' इनके अन्य उपन्यास 'मकान' का गठन बेहद खूबसूरती के साथ दिखाई देता है ।

श्रीलाल शुक्ल कृत 'रागदरबारी' (1968), में गाँव के जीवन का वर्णन है जहाँ विकास और प्रगति के नारों के बावजूद भी निहित स्वार्थों और अवांछनीय तत्वों के आघातों का ही बोल बाला है । स्वतन्त्रता प्राप्ति के पहले जो अंग्रेजों की चाकरी करते थे आज उन्होंने देश सेवा का खोल ओढ़ रखा है । जो अभिशाप नागरिक जीवन को अभिशप्त किए हुए है वही अभिशाप ग्रामीण जीवन में भी व्याप्त है और वह है - चरित्र का पतन । इसी कारण से शिवपालगंज के जीवन के लगभग सभी क्षेत्रों में, गुटबाजी, भ्रष्टचार और तिकड़म ही व्याप्त है । सभी योजनाएं मात्र कागजी योजनाएं बनकर ही रह जाती हैं । उपन्यास के प्रमुख पात्र वैद्य जी, उनके पुत्र अपने पिता के ही समर्थक हैं । लेखक ने अत्यन्त सुन्दर ढंग से आधुनिक जीवन के भ्रष्टाचार और स्वार्थपरता पर व्यंग्योक्ति की है । लेखक घोर यथार्थवादी दृष्टिकोण रखते हैं । कई स्थानों पर हास्य निखरे हुए रूप में है । समाज में चारों ओर व्याप्त अनैतिकता को लेखक ने अनावृत्त किया है । भाई-भतीजावाद, कुनबापरस्ती, प्रशासन में अव्यवस्था आदि का यथार्थ चित्रण लेखक ने किया

है । शिवपालगंज के पुलिस थाना- न्याय-पंचायत का भी सत्यरूप उपन्यास में है । ग्रामसभा चुनाव, कालेज मैनेजर का चुनाव और को-ऑपरेटिव युनियन के मैनेजिंग डाइरेक्टर का चुनाव के माध्यम से स्वातन्त्रयोत्तर भारत में चुनावों, राजनीतिक कुचक्रों, वर्ग संघर्षों, भ्रष्टाचार आदि का अंकन करने में लेखक की लेखनी पूर्णतया समर्थ रही है । उपन्यास में मानवतावादी दृष्टिकोण व्याप्त है । चारों ओर व्याप्त अन्याय, भ्रष्टाचार, अनैतिकता, आर्थिक शोषण, नैराश्य, कुण्ठा, विघटनकारी तत्वों आदि का निराकरण समष्टिगत मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाने से ही हो सकता है । शिवपालगंज की कहानी है पूंजीवादी सभ्यता के साथ में पला हुआ आज का भारतीय जीवन विसंगतियाँ, मानव सम्बन्धों का विघटन, बुद्धिजीवी वर्ग कीनिष्क्रियता, निकम्मापन यह सभी इस उपन्यास में बड़े कौशल के साथ उभारा गया है किन्तु हास्य व्यंग्य के आधिक्य के कारण लेखक का मूल दृष्टिकोण ओझल होता हुआ सा दिखाई देता है ।

शिवप्रसाद सिंह (1929)

'अलग अलग वैतरणी' (1967) शिवप्रसाद सिंह का पहला और समर्थ उपन्यास है । शिव प्रसाद सिंह ने उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जिले के 'करैता' गाँव को केन्द्र बनाकर स्वतन्त्र भारत के ऐसे गाँव का चित्रण किया है जहाँ स्वतन्त्रता तो है किन्तु जीवन में व्याप्त भ्रष्टता ज्यों की त्यों है, आर्थिक विषमता और शोषण का साम्राज्य है, न्याय नहीं है जहाँ अर्थहीन धार्मिक सामाजिक मूल्यों मर्यादाओं को लोग पकड़े बैठे हैं । प्रशासन में सर्वत्र भ्रष्टाचार व्याप्त है, चारों ओर - चारित्रिक पतन ही दिखाई देता है । अनुशासन और आत्मसंयम का पूर्णतया अभाव है - ऐसे ही वातावरण में नई पीढ़ी पालित पोषित हो रही है । जिसके समक्ष स्पष्ट दिशा संकेत भी नहीं है । लेखक ने बदले हुए ग्रामीण जीवन का परिचय अपने उपन्यास में दिया है तथा ग्राम जीवन के विविध पक्षों का चित्रण किया है । आधुनिक मानवीय संकट की ओर लेखक का संकेत है । इस दूषित व्यवस्था में इंसान की गरिमा समाप्त हो गई है । लेखक ने अपने इस उपन्यास में स्वातन्त्रयोत्तर भारत के जीवन की विडम्बना, परस्पर विरोधी मूल्यों ओर जीवन दृष्टि के टकराव के सहारे चित्रित की है । ऐसा लगता है कि लेखक ग्रामीण जीवन के स्थान पर नगरीकरण की ओर उन्मुख होने का पक्षपाती है। औपन्यासिक कला की दृष्टि से यह उपन्यास कलात्मक अन्विति प्रदान करता है ।

शिवप्रसाद सिंह ने करैता में आई नवीन शासन प्रणाली की इकाई पंचायत का जायजा बड़ी ही प्रमाणिक किया है । टूटन 'अलग-अलग वैतरणी' का मुख्य स्वर है ।

यह टूटन करैता गाँव के निवासियों में, उनकी जीवनदृष्टियों में, उनके विभिन्न क्रिया कलापों में कई तरीकों से व्याप्त है । जिसके कारण वहाँ का सारा जीवन ही टूटता हुआ दृष्टिगोचर होता है । शिवप्रसाद सिंह के इस उपन्यास में अनावश्यक प्रसंग विस्तार भी है । अनेक कमियों के बावजूद 'गोदान', 'मैला आँचल', 'परती : परिकथा' के बाद एक महत्वपूर्ण ग्राम्य जीवन की गाथा के रूप में हिन्दी साहित्य में 'अलग-अलग वैतरणी' का नाम निस्सन्देह गौरव के साथ लिया जा सकता है ।

शिवप्रसाद ने सन् 1974 में एक और उपन्यास लिखा 'गली आगे मुड़ती है।'

भीष्म साहनी

हिन्दी कथा साहित्य भारत पाक विभाजन में उत्पन्न मानवीय घृणा, ईर्ष्या, द्वेष के तत्वों को उभारने में सक्षम है इसका ज्वलन्त प्रमाण भीष्म साहनी कृत 'तमस' है। इनके अन्य उपन्यास हैं 'कड़ियाँ' 'झरोखे', 'वासन्ती'।

भीष्म साहनी कृत 'तमस' (1973), में विभाजन से पहले के जन जीवन में साम्प्रदायिक तनाव, अलगाव, घृणा की भूमिका व साम्प्रदायिक संकीर्णता के कारण हुए दंगों में मानवीय मूल्यों का टूटना, अंग्रेजों की कूटनीति और धार्मिक कट्टरता के परिप्रेक्ष्य में रानजीतिक पार्टियों का एकांगी पड़ जाना आदि का बड़ा ही यथार्थ चित्रण हुआ है। विभाजन के पूर्व साम्प्रदायिक वैमनस्य की भावना को उभारने में कौन कौन से प्रेरक तत्व थे इसका जीवन्त चित्र 'तमस' में दिखाई देता है। लेखक ने सम्प्रदायोंके तनावमें मानवीय दृष्टि को भी उकेरा है तथा सामान्य जनता की प्रतिक्रिया को उद्घाटित किया है। उपन्यास में व्यक्ति-व्यक्ति के द्वन्द्व के माध्यम से समाज कें दो वर्गों का द्वन्द्व प्रदर्शित है। परिस्थितियों के दबाव में सूखते जाने वाले स्नेह सूत्रों ओर टूटते जाने वाले मूल्यों, आदर्शों के कारण उत्पन्न होने वाला दर्द भीष्म साहनी ने उत्कट रूप में व्यक्त किया है। उनके लेखकीय व्यक्तित्व में गम्भीरता है, भावुकता है, सरलपन ओर सादगी है परन्तु प्रसंगों को उभारने में कल्पना का जो स्पर्श स्थान-स्थान पर अपेक्षित होता है, उससे भीष्म साहनी का व्यक्तित्व वंचित है। भीष्म साहनी ने 'तमस' की नाजुक और जोखिम भरी थीम का अंत तक बड़ी समझदारी से निर्वाह किया है। इसी में उनके सृजनशील व्यक्तित्व की सफलता परिलक्षित होती है।

'कड़ियाँ, (1970), भीष्म साहनी की मनोवैज्ञानिक धरातल पर यात्रा करने वाली सामाजिक विसंगति की कथा है । पूरे उपन्यास में भीष्म साहनी की सर्जना की सादगी और पारदर्शिता लक्षित होती है । भीष्म सौ फीसदी कथाकार हैं कवि नहीं, इसलिए इनकी कथा शैली का काव्यात्मक आवर्तों में कहीं उलझती नहीं, बस बहती रहती है और 'कड़ियाँ' भले ही कोई विशिष्ट उपलब्धि न हो किन्तु रचनात्मक धरातल पर वह एक अत्यन्त सार्थक कृति अवश्य है ।

भीष्म साहनी के उपन्यास 'झरोखे' में जीवन की तलाश का बहुत सुन्दर चित्रण हुआ है ।

उषा प्रियंवदा

व्यक्तिवादी चिन्तन पर आधारित दृष्टिकोण लिए हुए उषा प्रियंवदा के पहले उपन्यास 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' (1960) के बाद रूकोगी नहीं राधिका' (1967) उपन्यास उल्लेखनीय है। उषा प्रियंवदा के ये दोनों ही उपन्यास अति आधुनिका पढ़ी लिखी स्त्री की कहानी कहते हैं किन्तु दोनों उपन्यासों में स्त्री स्वतंत्र निर्णय लेने की शक्ति रखने के बावजूद अजीव बेबसी और सामाजिक घेराव में अपने को बन्द पाती है। उन्होंने भावुकता के वातावरण में नारी की बेबसी और पीड़ा की तरल तस्वीर उभारी है। इसलिए उनकी भाषा में भी एक तरलता परिलक्षित होती है।

उषा प्रियंवदा ने इस उपन्यास में बड़ी गहरी समस्याको उठाया है और उसे व्यापक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। पर उन्होंने जिन पात्रों को चुना है, उनका निर्वाह ठींक ढंग से करने में असमर्थ रही हैं। यदि बाधाहीन उन्मुक्त प्रेम भोगने और शरीर की भूख मिटाने के लिए ही आज की नारी वैयक्तिक स्वतन्त्रता चाहती है तो वह दया की पात्र है। राधिका स्वतन्त्रता का विकास चाहती है, परम्परागत संस्कारों, रूढ़ियों को तोड़ना चाहती है, अपना स्वतन्त्र व्यक्ति स्थापित करना चाहती है। किन्तु इन सबको प्राप्त करने के बजाय उसका जीवन अन्तर्विरोधों, विसंगतियों, घुटन आदि का शिकार बन जाता है। व्यक्ति स्वातंत्र्य और आत्मसुख पाने की जगह वह अपने ही बुने हुए जाल में फँसती जाती है। लेखिका ने राधिका के व्यक्तित्व को सब प्रकार के

बन्धन तोड़ देने वाली आज की नारी के विद्रोह का प्रतीक बना दिया है । उपन्यास स्वतन्त्र भारत की संघर्षरत मध्यमवर्गीय नारी का चित्रण करने में असमर्थ है । परन्तु यह आज की भारतीय नारी की दुविधा तथा उसकी आत्मा की छटपटाहट को उभारने में सफल है इसमें कोई शंका नहीं है ।

कृष्णा सोबती

हिन्दी लघु उपन्यासकारों में सबसे अधिक चर्चित ओर विवादास्पद व्यक्तित्व सम्भवतः कृष्णा सोषती का ही है । उन्होंने अत्यन्त साहस और स्पष्टवादिता से नारी मन को सही ढंग से समझा है । नारी को उन्होंने नारी की दृष्टि से आँका है । आज के सन्दर्भ में बनते बिगड़ते मूल्यों के संघर्ष को कृष्णा सोबती के लघु उपन्यासों में सहज अभिव्यक्ति मिली है । अत्यन्त सशक्त और सार्थक भाषा तथा मौलिक शिल्प प्रयोग के कारण लघु उपन्यासकारों में उनका अपना अलग एक विशिष्ट स्थान है । इनकी रचनाएँ तृप्ति की अनुभूति के लिए आसक्त और प्रतिभा को उजागर करती हैं । सोबती के पात्र पाठकों के समीप रहने वाले लोग हैं । इनके अब तक तीन उपन्यास 'डार से बिछ़ड़ी' 'मित्रों मरजानी', और 'सूरजमुखी अन्धेरे के' प्रकाशित हुए हैं । उन्होंने नवीन युग बोध के सन्दर्भ में नारी को न तो समर्पिता बताया है और नही आदर्श प्रिया। 'मित्रों मरजानी' में कृष्णा सोबती ने एक कस्बिन विवाहिता बेटी मित्रो की असन्तुष्ट कामेच्छा का चित्रण किया है । 'सूरजमुखी अंधेरे के' में काममूलक साहसिकता और बढ़ गई है।

कृष्णा सोबती कृत 'डार से बिछुड़ी' उनका प्रथम लघु उपन्यास है । इसका एक-एक बोल अपने में सार्थक बन पड़ा है । 'पाशो' इस उपन्यास का प्रमुख चरित्र है। पाशो के जीवन में आने वाले उतार-चढाव और विभिन्न मोड़ों के प्रसंगों का बड़ा ही मार्मिक वर्णन लेखिका ने किया है । इस रचना की सबसे बड़ी उपलब्धि पाशो का

चरित्रांकन है । उसके मानसिक संघर्ष और आन्तरिक द्वन्द्व को लेखिका ने मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्रित किया है । इस संरचना को लेखिका ने वर्णनात्मकता और वातावरण से दूर रखा है और यही इस रचना की विशेषता हो गई है । कृष्णा सोबती के सभी पात्र पाठकों की संवेदना और हृदय को स्पर्श करते हैं यही लेखिका की सबसे बड़ी उपलब्धि है । नारी की बेबसी और पीड़ा की तरल तस्वीर खींचते में कृष्णा सोवती भी निपुण हैं, किन्तु वे नारी की बेबसी के बीच से ही उसकी ऊर्जा और मौन साहसिकता का भी स्पर्श करती हैं । उनकी इस कृति में पाठकों का ध्यान केन्द्र 'पाशो' है । पाशो में पाठकों को खींच कर बाँध रखने का सामर्थ्य है।

'मित्रों मरजानी' कृष्णा सोबती का वह उपन्यास है जिसके कथ्य और चरित्र ने एक लम्बें अरसे तक समस्त हिन्दी उपन्यास जगत में धूममचा दी थी । मित्रों मरजानी के रूप में जिस दृढ़ , निर्मयी और वाचाल किंतु कोमल तथा बेझिझक चरित्र का निर्माण कृष्णा सोबती ने किया वह सम्पूर्ण हिन्दी उपन्यास साहित्य में अनूठा है । बाहर से पत्थर जैसी लगने वाली मित्रों अन्दर ही अन्दर अत्यन्त कोमल है । इसे आदर्शो, समाज और ईश्वर किसी का भी भय नही। मित्रों मरजानी के रूप में नितान्त मौलिक और नया गठन लेखिका ने हिन्दी को दिया है । लेखिका नारी को नारी की दृष्टि से देखती है । 'मित्रों मरजानी' एक ऐसी नारी की कहानी है जिसे अपने यौवन

की अमिट प्यास है । इसका व्यक्तित्व विरोधी तत्वों से भरा हुआ है । यह एक वैयक्तिक उपन्यास है । कृष्णा सोबती ने इस कृति में यह दिखाया है कि 'काम' पुरूष हो चाहे स्त्री दोनों के लिए समान रूप से महत्वपूर्ण समस्या है । मित्रों जैसी विचित्र नारी चरित्र का अंकन कठिन कार्य था पर कृष्णा सोबती की लेखनी ने यह चमत्कार कर दिखाया । यह एक ऐसी नारी है जो समर्पित होते हुए भी ग्रहण की आकांक्षा रखती है । वास्तव में नारी चरित्र के सारे पुराने बिम्बों की एक चुनौती है मित्रों मरजानी । यह निश्चयात्मक रूप से कहा जा सकता है कि यह उपन्यास हिन्दी उपन्यास साहित्य की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है ।

शिवानी (1923)

आज की बहुचर्चित प्रतिभा सम्पन्न कथाकारों में शिवानी अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं । 'चौदह फेरे' उपन्यास से शिवानी की औपन्यासिक यात्रा प्रारम्भ हुई और उनकी इस प्रथम रचना ने उन्हें हिन्दी की बहुप्रिय लेखिका बना दिया । उन्हें लोकप्रियता उनके उपन्यासों के कारण प्राप्त हुई । 'श्मशान चम्पा' (1972) उनका सर्वप्रथम प्रकाशित लघु उपन्यास है । कैंजा', 'शय्या', 'माणिक'', और 'गैंडा', उनके बहुचर्चित लघु उपन्यास हैं । 'चौदह फेरे', 'कृष्णकली', और 'भैरवी' विषय और कथा की दृष्टि से लघु उपन्यास विधा के अधिक निकट पड़ते हैं। जीवन को विविध पहलुओं और विविध रंगों से लेखिका ने देखा है । यही कारण है कि उनके प्रत्येक उपन्यास में कोई न कोई नवीन प्रश्न और समस्याएं परिलक्षित होते हैं। उनके सभी उपन्यासों में विविधता दिखाई देती है । उनके उपन्यासों का आरम्भ बड़ी असाधारण और तनाव पूर्ण स्थितियों में होता है और उसका अन्त अनपेक्षित ढंग से पाठकों के सामने आता है । पारिवारिक जीवन की यथार्थ गुत्थियों को सुन्दर ढंग से सुलझाया गया है । शिवानी ने सामाजिक विषमता, पति-पत्नी के सम्बन्धों और प्रेम के विविध पक्षों का उद्घाटन उनकी रचनाओं में हुआ है । उनके उपन्यासों में संघर्षशील एवं टूटते परिवारों की मार्मिक कथाओं का वर्णन है । शिवानी के चरित्र यथार्थ जगत से ही लिए गए हैं उनके उपन्यासों की विशिष्टता है कि उनमें सर्वत्र करुणा दिखाई देती है । शिवानी ने अपनी रचनाओं में विशिष्ट व्यक्ति चेतना को काम पर प्रतिष्ठित करते हुए उसे व्यक्तिपरक दिशा में आत्मबोध की ओर अग्रसर होते हुए दिखाया है ओर इसी सन्दर्भ में विश्लेषण भी किया है ।

'कैंजा' शिवानी का बहुश्रुत लघु उपन्यास है । इसमें सुन्दरता पर आसक्त प्रेमी और सदा से हृदय में प्रेम रखकर भी एक मौन रहने वाली प्रेमिका के चरित्र का रोचक वर्णन है । नारी मन की गुत्थियों को सुलझाना कोई सरल काम नहीं है और उसके मन के भीतर जो कुछ हो रहा है उसका विश्लेषण भी अत्यन्त कठिन है पर शिवानी ने इस स्थिति और मनोदशा का सूक्ष्मतर विश्लेषण पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है । शिवानी के पात्र पाठकों के मन में रच बस जाते हैं जो कथा समाप्ति के बाद भी हृदय पटल में समाए रहते हैं । कैंजा एक अत्यन्त मनोबेधी एवं जबरदस्त चरित्रों को लेकर चलने वाला लघु उपन्यास है । लघु आकार का होने के बावजूद इसकी प्रेषणीयता एवं संवेदनशीलता प्रशंसनीय है ।

'गैंडा' (1978) शिवानी की एक सुशिक्षित आधुनिका युवती के अन्तर्मन की पीड़ा की कसक से भरी मनोव्यथा की कथा है । यह किसी भी संवेदनशील हृदय को व्यथित कर डालने में पूर्णतया सक्षम है । शिवानी नारी के परिवेश की विभिन्न समस्याओं के अनेकों पहलुओं को गहराई से देखती हैं । उनके द्वारा चित्रांकित चरित्र सहजता से नहीं भुलाए जा सकते । नारी के वास्तविक यथार्थ को शिवानी ने व्यक्त किया है ।

=====

=======
=====
===
=

बंगला के प्रमुख उपन्यासकार

बंगला साहित्य में उपन्यास के आरम्भिक युग में द्विमुखी धारा प्रवर्तित हुई-

(1) उच्चांग के ऐतिहासिक उपन्यास रचना,

(2) वास्तविकता पूर्ण सामाजिक और पारिवारिक उपन्यास रचना । इसमें गहराई और भाव समृद्धि का संचार हुआ । हमारे साधारण दैनिक जीवन में जो गहरा भाव तथा संघात निरन्तर प्रवर्तित होता रहता है और उसका समाधान करते-करते मानव जीवन की विशालता तथा वैचित्र्य का परिचय मिलता रहता है, जीवन की यह वास्तविक महिमा उपन्यासों में प्रतिफलित होने लगी । भूदेवमुखो-पाध्याय के'ऐतिहासिक उपन्यास' ॑1857॑ में उपन्यास रचना का साधारण आंगिक और मूल स्वर प्रवर्तित हुआ है । परन्तु उसका परिणत स्वरूप बंकिम रचना से प्राप्त करनेकी प्रतीक्षा रह गयी थी। भूदेव के 'अँगुरीयविनिमय' में इतिहास परिचित समूह को कुछ काल्पनिक तथा कुछ ऐतिहासिक बन्धन से बाँध कर चमत्कार घटना परिणति दिखाया गया है । शिवाजी, औरंगजेब, शाहजहाँ, रोशनआरा, जयसिंह, रामदास स्वामी, ये सभी इतिहास प्रसिद्ध चरित्र हैं। उपन्यास में वर्णित उनके पारस्परिक सम्पर्क सत्य के अनुयायी हैं । परन्तु इस सत्य के ढाँचे के बीच बीच में लेखक ने इस तरह कुछ काल्पनिक विषयों की अवतारणा की है जिससे ऐतिहासिक सत्य निष्ठा और कल्पना एक दूसरे के परिपूरक बन गये ।

भूदेवमुखो–पाध्याय का ऐतिहासिक उपन्यास लेखक के निजी औचित्यबोध और इतिहास ज्ञान से ही संभव हुआ। भुदेवमुखो-पाध्याय के पश्चात बंकिम चन्द्र से अधिक रमेशचन्द्र दत्त पर उनका प्रभाव स्पष्ट है । शिवाजी का पार्वत्य युद्ध वर्णन और जय सिंह के समक्ष उसके स्वदेश प्रेमात्मक आवेदन ने रमेश चन्द्र के जीवन प्रभात तथा उपन्यास को गहरे रूप से प्रभावित किया ।

भूदेव के 'ऐतिहासिक उपन्यास' में स्वच्छन्द गति बाधा प्राप्त है। वर्णनप्रथा और मतामत संयोग बहुत स्थान पर भार स्वरूप और नीरस तथ्यों द्वारा अभिभूत हुआ है वर्णन में भी सरसता की कमी की अनुभूति होती है । कहीं नाटकीय तीव्रता पाठक के हृदय को गहरे रूप में स्पर्श नहीं कर पाती । उपन्यास रचना के प्राथमिक युग में सामाजिक उपन्यास से ऐतिहासिक उपन्यास अधिक संख्या में रचित हुए, इसमें कोई सन्देह नहीं है । यह ऐतिहासिक उपन्यास समूह सत्य और कल्पना के, साधारण और असाधारण के तथा प्राकृत और अप्राकृत के एक अद्भुत सम्मिश्रण के रूप में आविर्भूत हुआ । वास्तविक जीवन के साथ यह योग सूत्र बहुत ही तीक्ष्ण, लगभग अदृश्य ही है। उच्चांग ऐतिहासिक उपन्यास का आदर्श इनमें नहीं था । भूदेव मुखोपाध्याय के बाद रमेश चन्द्र तथा बंकिम चन्द्र के समसामयिक ऐतिहासिक उपन्यासकारों के अभ्युदय से सार्थक और व्यर्थ अनेक रचनाएं रचित हुई । औपन्यासिक विशालता तथा बहुमुखिता को प्राप्त करने में असमर्थ होने पर भी, बंकिम चन्द्र तथा रमेश चन्द्र के समान न होने पर भी, अनुयायियों के रूप में इनका महत्व है । त्रुटियों को एक

नवीन गति देने का गौरव बंकिम की रचना में विशेष रूप से प्राप्त होता है । आदर्श कल्पना तथा दृष्टिकोण का प्रसार बंकिम रचना को नये आदर्श लोक में प्रतिष्ठित करता है ।

साहित्यिक रचना के दृष्टिकोण से बंकिम चन्द्र और रमेश चन्द्र लगभग समसामयिक है । क्रम विकास की दृष्टि से रमेश चन्द्र के उपन्यास समूह विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास समूह का निदर्शन है । बंकिम कें ऐतिहासिक उपन्यास में इनकी तुलना में जटिल और मिश्र प्रकृति के हैं । उनमें इतिहास अनेकांश में कल्पना रंजित और रूपान्तरित रूप में विवृत्त किया गया है । बंकिम के आदर्शवाद, जाति के भविष्य के विषय में उच्च आकांक्षा और आवेगपूर्ण देशभक्ति ने उनके उपन्यासों को विशेष रूप से मण्डित किया है । ऐतिहासिक उपन्यास रचयिता के सत्यनिष्ठा के सम्बन्ध में जो कठोर उत्तरदायित्व है, उन्होंने सर्वत्र रूप से स्वीकार नहीं किया है। जैसे 'आनन्दमठ' उपन्यास आदर्श और देशभक्ति के कारण ही क्लासिक बना। प्रेमी जिस तरह समस्त वास्तविक जगत को निजी आदर्श स्वप्न के समान रूपान्तरित कर लेता है कवि तथा स्वदेश प्रेमी बंकिम चन्द्र ने भी अतीत इतिहास को देशभक्ति की प्रबल धारा में बहा दिया है । इसी कारण बंकिम की रचना की विशद आलोचना करते समय कल्पना की अतिशयता का परिचय मिलता है ।

'दुर्गेशनन्दिनी', 'राजसिंह', तथा 'चन्द्रशेखर' के कुछ अंश के अतिरिक्त

बंकिम चन्द्र के समस्त ऐतिहासिक उपन्यास के सम्बन्ध में कल्पना की अतिशयता ही मुख्य है । बंकिम की प्रबल शक्ति ऐतिहासिक परिवेश संगठन में तत्पर है । इतिहास के प्राणहीन अस्थि के भीतर इतिहासानुसार प्राण संचार करने का उन्होंने प्रयास नहीं किया । 'आनन्दमठ' तथा 'देवीचौधुरानी' उनके आदर्श लोक तथा दार्शनिक अन्तर्दिष्ट का का परिचय देते है। 'देवीचौधुरानी' में दार्शनिक तत्वप्रियता ने इतिहास को आवृत्त कर दिया है ।

'देवीचौधुरानी' मूलतः चरित्र विश्लेषण का उपन्यास है । इसी तरह 'सीताराम' भी चरित्र विश्लेषाणत्मक उपन्यास के रूप में सिद्ध होता है । 'चन्द्रशेखर में भी ऐतिहासिक अशं तो है परन्तु आख्यायिका की मूलवस्तु ऐतिहासिक नही है । 'दुर्गेशनन्दिनी' और 'राजसिंह' ये दोनों उपन्यास ऐतिहासिकता के आधार पर दूसरे उपन्यासों से भिन्न हें । यह मूलतः ऐतिहासिक उपन्यास ही है । इसका नायक ऐतिहासिक है और उनका भाग्य परिवर्तन इतिहास की ही परिणति है ।

'दुर्ग्रेशनन्दिनी' की ऐतिहासिकता क्षीण होने पर भी सामाजिक चित्रांकन की दृष्टि से इसमें वास्तवप्रियता और सत्यनिष्ठा उल्लेखयोग्य है । 'राजसिंह' उपन्यास सर्वतो रूप से ऐतिहासिक सिद्ध होता है । इसमें यथार्थ रूप से इतिहास वर्णित घटनाओं का विवरण और इतिहास प्रसिद्ध चरित्रों का उल्लेख किया गया है । इतिहास

की विशाल घटनाओं के साथ साधारण जीवन का जो अन्तरंग योग्य सूत्र ऐतिहासिक उपन्यास का विशेष लक्षण है, बंकिम चन्द्र के अन्य उपन्यासों में इस तरह का प्रतिफलन और नहीं दिखाई देता है ।

एक और श्रेणी के उपन्यास ने इतिहास ने कल्पना के वर्ण में रंजित होकर अपना यथार्थ रूप विर्सजित किया है । भाव की प्रबलता ने ऐतिहासिक सत्य निष्ठा को बहा दिया है । 'आनन्दमठ' इसी श्रेणी में आता है । तीसरे श्रेणी के उपन्यासों में इतिहास बहुत क्षीण और असम्पूर्ण रूप से मूल आख्यायिका (कथानक) में ग्रथित हुआ है । इस श्रेणी के उपन्यासों में इतिहास केवल घटना वैचित्र के प्रवर्तन में समर्थ है। 'मृणालिनी' इस श्रेणी का ही उपन्यास है । 'चन्द्रशेखर' में भी अंशतः इतिहास क्षीण है ।

'सीताराम' अथवा 'दवीचौधुरानी' विशुद्ध पारिवारिक उपन्यास हैं । इनमें अतीत काल की आख्यायिका या अतीतकाल का विवरण ऐतिहासिक घटना के रूप में प्रतिष्ठित है । 'दवीचौधुरानी' में इतिहास नितान्त गौण है । इतिहास और धर्म के क्षेत्र से भावों को लेकर एक काल्पनिक आदर्श की ज्योति इस समाजिक जीवन पर प्रतिफलित की गई है। इसमें बंकिम चन्द्र के आदर्श लोक का स्पष्ट परिचय इंगित है।

बंकिम के उपन्यासों को स्थूल रूप से दो भागों मेंविभाजित किया जा सकता है - 1.सम्पूर्ण वास्तविक सामाजिक और पारिवारिक जीवन का वर्णन तथा व्याख्या इनका मुख्य उद्देश्य है । 2.ऐतिहासिक अथवा असाधारण घटना समूहों पर प्रतिष्ठित है।

बंकिमचन्द्र के निम्नलिखित उपन्यास समूहों रोमांस श्रेणी अन्तर्गत आते हैं- 'दुर्गेशनन्दिनी' (1865), 'कपालकुण्डला' (1866), 'मृणालिनी' (1869), 'युगलागुंरीय' (1874), 'चन्द्रशेखर' (1875) राजसिंह (1881), 'आनन्दमठ' (1882), 'देवीचौघुरानी' (1884), 'सीताराम' (1887)।

'दुर्गेशनन्दिनी' बंकिम का सर्वप्रथम उपन्यास है । बंकिमचन्द्र अपनी प्रथम रचना में सम्पूर्ण परिपक्वता प्राप्त नहींकर सके हैं । मुगल पठान का युद्ध वृत्तान्त बहुत ही क्षीण रेखा में अंकित किया गया है । उपन्यास का घटनाक्रम बहुत ही द्रुतगति से प्रवाहित हुआ है । दुर्गजय का विवरण वीरेन्द्र सिंह के विचार का दृश्य और कतलूखाँ के हत्या वर्णन में बंकिमचन्द्र ने उच्चांग की वर्णनशैली और कवित्व शक्ति का परिचय दिया है । कारागार के भीतर आयशा की प्रेमाभिव्यक्ति का दृश्य उपन्यास का केन्द्र बिन्दु है । यहाँ बंकिम की शैली सम्पूर्ण नवीन आधार पर प्रतिष्ठित हुई है।

बंकिम की कला का एक और लक्षण 'दुर्गेशनन्दिनी' में सृजित हुआ है। वास्तविक वर्णनमें अलौकिकता का छायापात करने की चेष्टा उनकी रचना में निरन्तर मिलती है। 'कपाल कुण्डला' उपन्यास में बंकिम की प्रतिभा और स्पष्ट व्यक्त होती है 'कृपालकुण्डला' का अन्तर्निहित भाव उसकी असामान्य मौलिकता पर प्रतिष्ठित है ।

'कपालकुण्डला' के रोमैण्टिक परिवेश रचना में बंकिम ने अपनी प्रतिभा का जो परिचय दिया है उसमें इतिहास और प्रेम को पीछे रखकर रोमांस का एक मूल स्रोत रचित कर दिया । यह रोमांस हम लोगों के वास्तविक जीवन की कठोर भूमि से उद्भूत हुआ है । सारे रोमांस का सारतत्व इस सौन्दर्य जगत का केन्द्रबिन्दु कपाल कुण्डला का चरित्र ही है। सर्वत्र रमणीय कोमलताः शिक्षा-दीक्षा भिन्न परन्तु हृदय के भीतर एक चिरन्तनीय स्त्री मूर्ति-यह चरित्र कल्पना साहित्य में विरल है ।

सामाजिक जीवन में प्रवेश करने के बाद भी बाल्यकाल का रोमाण्टिक प्रतिवेश कपाल कुण्डला को घेरकर रहता है । पारिवारिक जीवनके नियम श्रृंखल, पति का अथाह प्रेम उसके मन से बाल्यकाल के प्रतिवेशके स्वप्नावेश को हटा नहीं सका। समुद्रतीर की वन्य लता को गृहस्थ के आंगन में रोपित करने पर भी वह बद्ध मूल हो नहीं पाई ।

रेमेशचन्द्र दत्त

रमेशचन्द्र के ऐतिहासिक उपन्यासों की आलोचना करने से एक विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास का निदर्शन मिलता है । रमेशचन्द्र के चार ऐतिहासिक उपन्यासों को दो श्रेणी में बाँटा जा सकता है - (1)बंगविजेता, माधवीकंकण (2)महाराष्ट्र जीवन प्रभात, राजपूत जीवन संध्या ।

प्रथम श्रेणी में कल्पना का आधिपत्य है । केवल ऐतिहासिक परिवेश के भीतर उसे बाँधा गया है इस-लिए वह ऐतिहासिक उपन्यास के स्तर में आता है परवर्ती दोनों उपन्यास मुख्यतः इतिहास के विशुद्ध आधार पर ही प्रतिष्ठित हुए हैं । उसमें जितने काल्पनिक विषय की अवतारणा हुई है वह केवल विशाल ऐतिहासिक घटना समूहों में योगसूत्र रचित करनेमें समर्थ है ।

'बंगविजेता' (1873) रमेशचन्द्र की प्रथम रचना है । इसका ऐतिहासिक अंश सत्यनिष्ठा के आधार पर रचित होने के कारण नीरस और प्राणहीन हो गया है । जीवन वेग का आलोड़न इसमें नहीं है । इन्द्रनाथ, नगेन्द्रनाथ, शतीशचन्द्र, विमला आदि सभी चरित्र विशेषता रहित हैं।

'माधवीकंकण' (1876) मूलतः एक पारिवारिक रचना है । इतिहास इसका मुख्य अंश नहीं है । उपन्यास को नायक राजनीति के जाल में पड़ता है और

भारतीय इतिहास के रंगमंच पर जो रोमांचकर नाटक अभिनीत हो रहा था उसमें एक साधारण अंश ग्रहण कर लेता है । रमेशचन्द्र के इस ऐतिहासिक उपन्यास में विपत्तियों से भरा हुआ वीरता की कहानी से परिपूर्ण अतीत युग हम लोगों के सामने आ जाता है । माधवी कंकण में इस अतीत युग का जो खण्ड चित्र दिया गया है उस पर हम लोग अनायास विश्वास कर सकते हैं ।

रमेशचन्द्र की प्रतिभा किसी तरफ से बंकिम के बराबर नहीं हो सकती । बंकिम चन्द्र केवल सिद्धहस्त लेखक ही नहीं थे बल्कि उनकी कला जहाँ घटना-विन्यास, चरित्र चित्रण, परिवेश रचना आदि सभी विशिष्ट गुणों से भरी हुई है वहाँ रमेशचन्द्र एक ही तरह से सत्यनिष्ठा की दृष्टि से अपने उपन्यासों की रचना करते हैं ।

'जीवनप्रभात' (1878) और 'जीवन संध्या' (1879), सम्पूर्ण रूप से ऐतिहासिक उपन्यास है । इसमें साधारण मानव कीजीवन कथा बहुत कम स्थान अधिकार करती है । इतिहास की उद्दीपना, अनेक घटना समूहों के पारस्परिक संघात का जो आकर्षण है वह सभी इनमें यथेष्ट है । परन्तु इतिहास के विपुल वेग के साथ समता रक्षा करके क्षुद्र गृहस्थ के जीवन को प्रतिफलित अथवा नियमित करने की चेष्टा रमेशचन्द्र ने नहीं की ।

इतिहास की दृष्टि से इन दोनो उपन्यासों की ख्याति मूल्यवान सिद्ध होती

है। रमेशचन्द्र ऐतिहासिक उपन्यास के अतिरिक्त दो सामाजिक उपन्यास - 'संसार' (1886) और 'समाज' (1893), विख्यात हैं। 'संसार' और 'समाज' में रमेशचन्द्र इतिहास के कोलाहल से हटकर शान्त ग्रामीण सौन्दर्य के बीच हम लोगों के पारिवारिक और सामाजिक छोटे सुख तथा छोटे दुःख की कथाओं में लौट आये हैं । इन दोनो उपन्यासों में उन्होंने नवीन शक्ति का परिचय दिया है । ग्राम्य परिवारिक जीवन का जो एक सुन्दर रसपूर्ण तथा सहानुभूति पूर्ण चित्र अंकित किया है, वह बंगला साहित्य में सहज प्राप्य नहीं था। ग्राम्य जीवन की स्पष्ट छवि इनमें मिलती है । उन्होंने वर्णन की तुलना में विश्लेषण कम किया है । उन्होंने सुन्दर और सजीव चरित्रों की सृष्टि की है, जो बंग साहित्य में अतुलनीय हैं। 'संसार' उपन्यास में तारिणी बाबू और हेमचन्द्र के कथोपकथन से विषयबुद्धि शील तारिणी बाबू का चरित्र स्पष्ट हो उठा है। पुनः थाड़े से वर्णन द्वारा बिन्दु, काली और उमा के चरित्रों में जो भेद है वह सुन्दर रूप से व्यक्त कर दिया है । सरल,दरिद्र, ग्राम वासियों के प्रति करूण और गहरी सहानुभूति से इस कहानी को वास्तविक रूप से भावपूर्ण ऐक्य दिया है और कला के उच्चस्तर में उन्नीत कर दिया है । 'संसार' उपन्यास में उनके समाज संस्कार का उत्साह और कला कौशल प्रवाहित नहीं हुआ है, यद्यपि विधवा विवाह की वैधता प्रमाणित करना उनका एक विशिष्ट उद्देश्य था। फिर भी इस उपन्यास में इस उद्देश्य ने प्रबल होकर कला की सीमा का उल्लंधन नहीं किया है ।

परवर्ती उपन्यास में समाज संस्कार का यह उत्साह कला को पीछे छोड़कर

आगे बढ़ गया है। 'समाज' उपन्यास को सहज ही दो भागों में बाँटा जा सकता है। प्रथम अंश का घटनास्थल तालपुकुर और प्रधान उद्देश्य वासतविक चित्रण है । द्वितीय अंश में कहानी एक नवीन धारा में प्रवाहित हुई और एक नये परिवार का इतिहास भाग्य के साथ जड़ित हो गया है। इस अंश का घटनास्थल मुख्यतः तालपुकुर के पास सनातन बाटी गाँव में है । इसका नायक सनातनबाटी का जमींदार वंश और इसका स्पष्ट उद्देश्य जाति भेद के विरूद्ध युद्ध घोषणा है । तारिणी बाबू के वृद्धावस्था में पुनर्विवाह की घटना को लेकर इसमें हास्य रस और व्यंग्य की अवतारणा हुई है। अवहेलिता प्रथमा पत्नी की कहानी एक अल्पभाषी करूणामयी नारी का रूप उद्घाटित करने में समर्थ है ।

रमेशचन्द्र ने ऐतिहासिक और सामाजिक दोनों प्रकार के उपन्यासों में अपनी क्षमता का परिचय दिया है । इतिहास के सम्बन्ध में गहरे ज्ञान से विशाल घटनाओं का प्रभाव चित्रित करने का अवकाश उन्हें नहीं मिलता है । सामाजिक उपन्यास में रमेशचन्द्र का विशेष गुण उनकी सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति ही है । उनके सामाजिक उपन्यास में कोई गहरा विश्लेशण नहीं है । मानव जीवन के संकटमय मुहूर्तों ने उनकी कल्पना शक्ति को आन्दोलित नहीं किया है । यही बंकिम के साथ उनका प्रभेद परिलक्षित होता है । बंकिम की तरह जीवन की रहस्यमय अज्ञेयता जीवन समस्या की जटिलता की उन्होंने गहरे रूप से उपलब्धि नहीं की दूसरी तरफ बंकिम से उनकी

सत्यनिष्ठा अधिक थी। रमेशचन्द्र के उपन्यास में बंकिम के विचित्र रोमांस और इंद्रजाल का मोह नहीं है । इसलिए रमेशचन्द्र को एक विशिष्ट स्थान मिलना अपरिहार्य है।

रवीन्द्र नाथ

बंकिमचन्द्र के बाद बंगला उपन्यास साहित्य में एक नूतन अध्याय की अवतारणा होती है इसे आधुनिक अथवा अतिआधुनिक युग का नाम दिया जाता है। इसकी सूचना बंकिम चन्द्र के परवर्ती काल में मिलती है । मुख्य रूप से दो लक्षणों के के द्वारा इस युग परिवर्तन को चिन्हित किया है -

1. ऐतिहासिक उपन्यास का तिरोभाव ।
2. सामाजिक उपन्यास में एक सूक्ष्म तथा व्यापक वास्तविकता का प्रवर्तन ।

बंकिमचन्द्र ने जिस अद्भुत शक्ति द्वारा कल्पना और तथ्य को मिलाकर अपने ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की थी वह शक्ति परवर्ती लेखकों में नही पाई जाती। जिस मन्त्रबल से उन्होंने अतीत का सिंहद्वार खोलकर इतिहास को पुनर्जीवित किया था उनके साथ उनकी प्रतिभा के साथ उस सम्पत्ति का उत्तराधिकारी और कोई नहीं हुआ । परवर्ती लेखकों के हाथ में इतिहास के प्राणहीन होकर अपनी गौरवमय उद्दीपना को खो बैठा । बंकिम के परवर्ती कोई प्रतिभावान उपन्यासकार उनका यथार्थ पदचिन्ह अनुसरण करने में समर्थ नहीं हुए।

बंकिम चन्द्र के बाद उपन्यास में जो गहरी यथार्थता आयी उसकी प्रथम सूचना रवीन्द्र की सृष्टि में मिलती है । रवीन्द्र प्रतिभा के पूर्वज्ञान के बल से बंकिम प्रवर्तित उपन्यास की गति नवनिर्धारित होने लगती है । रवीन्द्रनाथ ने प्रात्यहिक जीवन की ग्लानि और विरोध का सविस्तार वर्णन करके चित्रों को पूर्णांग बनाया है । जीवन की सहज धारा प्रवाह का अनुसरण करके स्वाभाविक कारण से जो विक्षोभ सृष्टि होती है. अपने उपन्यासों में उन्ही विक्षोभों को केन्द्र करके सीमित परिधि के भीतर विभिन्न घटनाओं के समावेश से पूर्णांग मानव जीवन को रवीन्द्र नाथ ने अंकित किया है ।

रवीन्द्रनाथ के प्राथमिक उपन्यास समूह बंकिमचन्द्र के प्रभाव से मुक्त नहीं है उनका 'बउ ठाकुरानीरहाट' (1883) और 'राजर्षि' (1887) ऐतिहासिक उपन्यास के आधार पर रचित हुआ है । परन्तु इतिहास की बहुवर्णमय शोभा रवीन्द्र नाथ को आकर्षित नहीं कर सकी ।'बउठाकुरानीर हाट' और 'राजर्षि' में उपन्यास की विशेपता बहुत स्पष्ट नहीं है । इन उपन्यासों में रचियता ने मानविक मनोवृत्ति और विशिष्ट कार्यप्रणाली का परिचय दिया है । घटना विन्यास और चरित्र चित्रण दोनो में ही बहुत सरल और जटिलतावर्णित है ।

रवीन्द्रनाथ ने बंगाल साहित्य के भण्डार में जो संग्रह किया है उसका बीज वपन उन्होनें स्वयं ही किया । रवीन्द्रनाथ के स्पर्श से बंगलासाहित्य उत्कर्षता की चरम सीमा तक पहुँच गया ।

शरत्चन्द्र

रवीन्द्र प्रतिभा जब मध्याकाश पर पूर्ण ज्योति पर विराजित थी उसी समय शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय का आविर्भाव होता है । शरत्चन्द्र की प्रतिभा उनकी सृष्टि में निरन्तर व्यक्त होती है । हम लोगों के चारो तरफ अति परिचित परिवेश के पूर्ण रूप उनकी रचना में प्रतिबिम्बित होते है । उनके द्वारा सृष्ट सभी चरित्र सर्वसाधारण के अतिपरिचित हैं । परन्तु परिचितों के परिचित आचरण में जो त्रुटियाँ और विरोध रहता है वास्तविक जीवन में हम लोग उसे देख नहीं पाते परन्तु शरत्चन्द्र की रचना के भीतर से वह सब त्रुटियाँ और विरोध समूह स्पष्ट रूप से पाठक के विचार को स्पर्श करते हैं । रवीन्द्र नाथ जैसे एक विशेष स्तर के लोगों के हृदय को स्पर्श करने में समर्थ थे । परन्तु शरत्चन्द्र उसी तरह सफल श्रेणी के समस्त मानव हृदय को स्पर्श करके आलोड़ित करने में समर्थ थे ।

शरत्चन्द्र ने बंगाल के सामाजिक और पारिवारिक जीवन के जिन उपादानो के प्रति अपनी दृष्टि प्रसारित की है, विश्लेषण और मतामत व्यक्त करने का जो उपाय अपनाया है, वह सर्वतो रूप से उनकी प्रतिभा की देन है । शरत्चन्द्र के सम्बन्ध में एक धारणा हम लोगों के भीतर निहित है वह है उनकी मौलिकता । निषिद्ध समाज विरोधी प्रेम का विश्लेषण, हम लोगों के सामाजिक रीति-नीति और चिराचरित संस्कार समूह की तीव्र समालोचना में नारी - पुरुष के पारस्परिक सम्पर्क के

भयशून्य पुनर्विचार में शरत्चन्द्र ने जिस साहसिकता का, जिस सहानुभूति और उदार मनोवृत्त का परिचय दिया है उसमें उन्होने बंगाल के मन की संकीर्णता की सीमा को बहुत पीछे छोड़कर अति आधुनिक पश्चिमी साहित्य के साथ जुड़ने योग्य सदगुणों को स्थापित किया है । बंगला उपन्यास एक स्रोतहीन शुष्कधारा में प्रवाहित हो रहा था। उन्होने वहाँ विशाल समुद्र का सदा चंचल स्रोत बहाकर उसके गतिवेग को और बढ़ा दिया है । नवीन भावों की उत्तेजना से नवीजीवन का संचार कर दिया है । इस तरफ से देखने से पूर्ववर्ती उपन्यास साहित्य के साथ उनका सम्बन्ध बहुत कम है । परन्तु उनके उपन्यास में एक और धारा है जहाँ प्राचीन स्वर की तरंग निरन्तर सुनाई देती है । केवल मात्र हम लोगों के पारिवारिक जीवन के चिरन्तन घात-प्रतिघात ही उन उपन्यासों की आलोच्य वस्तु हैं ।

चरित्रहीन, श्रीकान्त और गृहदाह इन तीनों को छोड़कर अन्य उपन्यास समूहों में शरत् ने पुरातन धारा का ही अनुवर्तन किया है । 'काशीनाथ' 'देवदास', 'चन्द्रनाथ', 'परिणीता', 'बउदीदी', 'मेजदीदी', 'बिन्दूरछेले', 'स्वामी', 'निष्कृति', 'बिराजबहु', आदि समस्त कहानियाँ बंगाल के परिवार के क्षुद्र विरोध और घात-प्रतिघात की कहानी है। इनमें 'बिन्दूर छेले,' 'रामेर सुमति' आदि नितान्त प्रेमवर्जित उपन्यास हैं। शरत् चन्द्र के पारिवारिक विरोध चित्त समूह में और एक विशेषता परिलच्छित होती है। पहले के जिन उपन्यासकारों ने भ्रातृ विरोध अथवा परिवार विच्छेद के चित्र अंकित किये

हैं उन लोगों ने अक्सर समस्त दोष एक तरफ के लोगों पर लाद दिया है और दुसरी तरफ को साधु और अन्यायलेश शून्य के रूप में चित्रित किया है । शरत्चन्द्र का समस्या समूह इतना सरल और अपरिणत नहीं है । उनका मनुष्य चरित्र के विषय में जो गहरा अनुभव है उससे उन्होने समस्त मनुष्य को अच्छे और बुरे समस्त् गुणों से भर दिया है ।

शरतचन्द्र के कुछ उपन्यासों में समाज विधि का प्राधान्य मिलता है और दाम्पत्य प्रेम और विरोध कहानियों में यही समाज विधि मुख्य रूप से चिन्हित हो जाती है । यह प्रेम निषिद्ध नहीं है तथा सामाजिक विचार और निषेघ की भी अवहेलना नहीं करती । इन उपन्यासों में प्रेम का घात-प्रतिघात बहुत दीर्घ विश्लेषण से अलंकृत नहीं हुआ है । फिर भी इन उपन्यासों को हम लोग परवर्ती समाज निषिद्धप्रेम के विवरण युक्त उपन्यासों की पूर्व सूचना के रूप में प्राप्त करते हैं।

शरत् की रचनाओं में विशेषता का स्वर बंग साहित्य में परिचित है, जो नीय समाज नीति और प्रेम का आदर्श उन्होंने प्रतिष्ठित किया है उनके समस्त नारी चरित्र उसी का परिचय लेकर भिन्न-भिन्न क्षेत्र में भिन्न-भिन्न कोणों से अपने आपको उद्घाटित करने में समर्थ है । प्रेम के विश्लेषण की यह नारी चरित्र सृष्टि में शरतचन्द्र ने असाधारण प्रतिभा का परिचय दिया है । परन्तु सामाजिक विधि निषेघ

की प्रतिकूलता के संघात से जो घटना समूहों तथा चरित्र समूहों की गति तथा प्रकृति परिवर्तित की है उसी में उनकी प्रतिभा की सार्थकता है । नारी का कर्मक्षेत्र बहुत संकीर्ण है । कई निर्दिष्ट छोटी सी परिधि के भीतर विविध कर्तव्य के भीतर उनका आना जाना चलता है । उसी सीमा के भीतर हृदय का घात-प्रतिघात भी अवरूद्ध रहता है। साधारणतया नारी के लिए सामान्य कुछ दिशाएं उपन्यास में प्रतिफलित हुई हैं। अति अभिमान अथवा प्रेम की अतिशयता के लिए पति के साथ विच्छेद अथवा स्वार्थ परता के लिए गृह विरोध के सृष्टि इन उद्देश्य साधनों के लिए मुख्यतः बंगला उपन्यास में नारी की अवतारणा की गयी है । अवरोध प्रथा के कारण हिन्दू समाज में नारी-पुरुष के मिलन और पारस्परिक परिचय का रास्ता लगभग बन्द था। इसलिए स्त्री चरित्र के सम्बन्ध में उपन्यासकार की प्रत्यक्ष ज्ञान की कमी बंगला उपन्यास में एक भयंकर त्रुटि थी। नारी चरित्र में भी जो जटिलता अथवा परस्पर विरोधी भावों का सहअवस्थान संभव है, उपन्यासकार इसे स्वीकार करने पर भी अपनी रचना में उसे प्रयोग करके सफल नहीं हो पाये । इसलिए बंगला साहित्य में नारी चरित्र समूह कई परिचित श्रेणी के भीतर ही रह गये थे । व्यक्तित्व वयंजक गुणों से श्रेणी विशेष का अस्तित्व रह गया था। बंकिम चन्द्र के नारी चरित्र भ्रमर, सूर्यमुखी, प्रफुल्ल आदि मूलतः श्रेणी विशेष की प्रतिनिधि हैं केवल अवस्था भेद के कारण थोड़ा सा परिवर्तन हुआ है । रवीन्द्र नाथ के प्राथमिक उपन्यास में भी श्रेणी विशेष का चरित्र मिलता है । परवर्ती उपन्यास में नारी व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति के प्रयास का परिचय मिलता है । रवीन्द्र के उपन्यास

में नारी व्यक्ति स्वातंत्र्य की अभिव्यक्ति एक नये आलोक में प्रकटित होती है ।

शरत् के उपन्यास में नारी चरित्र में इस समाज निरपेक्ष स्वतंत्र जीवन का स्वरूप और भी स्पष्ट रूप से स्फुरित हुआ है । इनके उपन्यासों में पारिवारिक जीवन का प्रभाव बहुत कर्मोन्मुख है। लगभग कुछ जिद्दीपन लेकर दृढ़ता के साथ खड़ी होने की शक्ति इनके नारी चरित्रों में मिलती है । बिन्दु, नारायणी, बिराजबहू, शैलजा, पार्वती, ललिता, इत्यादि - इन लोगों में नारी सुलभ कोमलता और स्नेह शीलता के साथ साथ चंचल विद्युत रेखा की तरह एक तीव्र तीक्ष्ण दीप्ति है। ये नारियाँ केवल घर सजाने की सामग्री नहीं हैं । ये लोग जहाँ समाज का अनुवर्तन करती हैं, आँख मूँदकर नहीं करती वहाँ भी इनके स्वतंत्र विचार इन लोगों को अन्धे अनुकरण से मुक्त रखते हैं।

'अक्षणीया', 'बामुनेर मेये', और 'पल्ली समाज' में सामाजिक अत्याचार और उत्पीड़न के विरूद्ध प्रतिवाद ही उपन्यासकार का मुख्य उद्देश्य है । इनमें जो सामान्य तरह के प्रणय चित्र हैं समाज की हृदयहीन निष्ठुरता को व्यक्त करने के लिए ही इन प्रणय चित्रों की अवतारणा की गई है । 'पल्ली समाज' में समाज रक्षा के बहाने जो क्रूरता, स्वार्थपरता और कापुरुषता का परिचय मिलता है उसमें हम लोगों के जीवन को किस परिमाण में अक्षम कर दिया है । यही शरतचन्द्र ने स्पष्ट रूप से दिखा दिया है । शरत्चन्द्र का विश्लेषण जैसा तीक्ष्ण है करूण रस संचार करने

की क्षमता भी उसी परिमाण में असाधारण है । 'अरक्षणीया' में ज्ञानदा का अपमान असहनीयता की चरम सीमा में पहुचता है तब जब उसकी, स्नेहशीला माता भी धर्म संस्कार के निकट अपने स्वाभाविक सन्तान स्नेह को विर्सजन देकर सबके द्वारा उत्पीड़ित बालिका पर अत्याचार करने लगती हैं । समाज का सबसे निष्ठुर अत्याचार वही है जहाँ उसके विषपूर्ण प्रभाव से मात्र स्नेह तक निष्ठुर हिंसा में रूपान्तरित होता है।

'बामुनेर मेये' उपन्यास में कौलिन्य प्रथा का कुफल और कुलीन गर्व की असंगति और असार शून्यता का परिचय मिलता है । इस रोग के जीवाणु हम लोगों के समाजरूपी देह में आज उस तरह नहीं है । यह वर्तमान काल में अतीत की एक स्मृति मात्र है। कलिन्य प्रथा के ऊपर शरत्चन्द्र के आक्रमण को एक परवर्ती धारा पर प्रतिष्ठित किया जा सकता है ।

साम्प्रतिक काल की महिला उपन्यासकार

साम्प्रतिक काल के महिला तथा पुरुष उपन्यासकारों के दृष्टिकोणों में भिन्नता पहले की तरह इतनी स्पष्ट नहीं रह जाती है। शिक्षा-दीक्षा में अभिन्नता, अनायास सामाजिक मेल-जोल का अवसर और पहले की जीवन यात्रा की पद्धति में परिवर्तन के कारण ही ऐसी परिणति हुई । विशेषतया वास्तविक अवस्था के प्रभाव, जीवन के अर्थनैतिक उपादानों के गुरूत्व, नारी के अधिकार को प्रतिष्ठा की आवश्यकता

से कोमल वृत्तियों का अवरोध और दृढ़ आत्मनिर्भरशीलता की चर्चा, जीवन के प्रति मोह-मुक्त, रोमांस वर्जित दृष्टिकोण का प्रयोग आधुनिक उपन्यास में नारी उपन्यासकार की रचनाओं को विशिष्टता से चिन्हित करने का अवसर नहीं देता । फिर भी विषय निर्वाचन और आलोचना शैली में नारी की जीवन आलोचना में कुछ स्वातंत्र्य रह गया है आज पारिवारिक जीवन में एक नवीन समस्या का उद्भव हुआ है, पारिवारिक आदर्शवाद के क्रमशः विलोप होने के साथ साथ उग्र व्यक्ति स्वातंत्र्य और परिवार के नर-नारियों में स्वार्थ-संघात, ईर्ष्या, असहयोग, उदासीनता, आदि वृत्ति समूहों का आविर्भाव नारी के उपन्यास में चित्रित होता है ।

अब जीवन रहस्य संयुक्त परिवार से खिसककर एकक क्षुद्र परिवार रूपी संस्था के भीतर ही अपनी क्षेत्र रचना करता है । वर्तमान काल में सास और बहू के मत विरोध अथवा देवरानी-जिठानी में मनमुटाव एक गौण संघर्ष के रूप में गिना जाता है । इस संघर्ष में यथार्थ गहराई नहीं रह गयी है । भ्रातृ-विरोध के मामले की तरह भ्रातृ विरोध के उपन्यास, कहानी एक ही लीक पर रचित होने लगे हैं । शरतचन्द्र के बाद बंगाल के संयुक्त परिवार में उपन्यास के क्षेत्र में अपने स्थान को खो दिया है ।

आज की महिला उपन्यासकारों की रचना में रोमांस का मोह अथवा नवीन विषय की घटनाओं का रोमांच कम होने पर भी अनुपस्थित नहीं है । आधुनिक

लेखिका जीवन की वास्तविक जटिलता का समाधान खोजने के लिए उत्सुक होती हैं। इस बीच रोमांस की आकस्मिक अवतारणा से और कोमल भावना से जटिल परिस्थितियों में थोड़ी सांस लेने के अवसर की रचना करना चाहती हैं । हम लोगों के सारे प्रथा बन्धन से मुक्त स्वस्थ विचार बुद्धि द्वारा नियंत्रित जीवन बोध में आवेग और आदर्श का प्रभाव सुप्त रूप से निहित है । उपन्यास के घनीभूत संकट के क्षणों में इन प्रेरणाओं का आकस्मिक आर्विभाव दिखाई देता है । इसलिए महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में प्रगतिशीलता के साथ अतीत भी समाविष्ट है। वास्तविकता के अनुसरण के साथ अतीत की भाव प्रेरणा का एक अद्‌भुत समन्वय दिखाई देता है ।

आशालता सिंह के उपन्यास 'समर्पण' और छोटी कहानी 'अन्तर्यामी' में साहित्यिक स्थायित्व का उपादान है । उनके उपन्यास का प्रधान गुण एक सूक्ष्म अनुभूति में निहित है । प्रकृति का शान्त प्राणपूर्ण सौन्दर्य उनके उपन्यास के चरित्रों को गहरे रूप से प्रभावित करता है । आधुनिक युग की अतिवास्तविकता की नग्न वीभत्सता ने उनके सौन्दर्य बोधको पीड़ित किया है और इस संयम तथा रूचि की तरफ से उनहोंने बंग साहित्य की इस नवीन परिणति के विरूद्ध अपना प्रतिवाद घोषित किया है।

ज्योतिर्मयीदेवी का 'छायापथ' उपन्यास उल्लेख योग्य है इसके विषय में कुछ विशिष्टता नहीं है । मोटे तौर के मनस्तत्व विश्लेषण और उसके रूप के वर्णन द्वारा

इनका उपन्यास समृद्ध है। इनके उपन्यास में एक विशिष्टता यह मिलती है कि विवाह के साथ-साथ समस्त समस्या समाप्त नहीं हो जाती । विषयों की आलोचना में लेखिका की चिन्तनशीलता और निपुण विश्लेषण की अभिव्यक्ति विकसित हुई है ।

साहित्य क्षेत्र में आशापूर्णादेवी का अभ्युदय एक विशिष्ट स्थान प्राप्त कर चुका है। इनके साथ-साथ और कई महिला उपन्यासकारों के नाम का उल्लेख किया जा सकता है - महाश्वेता देवी, वाणीराय और प्रतिभा बसु। आशापूर्णादेवी और प्रतिभा बसु बंगाल के सामाजिक जीवन के नव प्रतिष्ठित पारिवारिकता की चित्रकार के रूप में प्रतिनिधि मूलक आसन प्राप्त कर चुकी हैं । नवीन युग के गृहस्थ रूप विन्यास की समस्त चंचलता और छन्द विकार उनकी रचनाओं में प्रतिबिम्बित हुआ है ।

उपन्यास की संख्या की दृष्टि और जीवन आलोचना की विशिष्टता की दृष्टि से आशापूर्णा देवी का स्थान पुरोभाग में बन गया है । उनके उपन्यास समूहों में अधिकांश सन्तुलतन खोये हुए पारिवारिक जीवन की अन्तःसार शून्यता सम्बन्धी विषय का विश्लेषण स्पष्ट और सरस रूप में किया गया है । 'मिन्तिर बाड़ी' (1947) 'वलय ग्रास' 'अग्नि परीक्षा' (1952), 'कल्याणी (1954),'निर्जन पृथ्वी', 'शशिबाबूर संसार' (1956) 'अतिक्रान्त' 'उन्मोचन', (1957) 'जनम जनम के साथी', नेपथ्य नायिका' (1958),'छाड़पत्र' 'समुद्रनील आकाश नील' (1960),'योग वियोग' (1960) 'नवजन्म'(1960) आदि आशापूर्णा देवी के इसी तरह के उपन्यास हैं।

आशापूर्णादेवी के पारिवारिक उपन्यासों में 'आंशिक' 'छाड़पत्र', और 'उन्मोचन' विशिष्टता युक्त सिद्ध होता है । 'आंशिक' में सांसारिक जीवन के कठिन बन्धनों से चारों तरफ आबद्ध अस्तित्व के पूर्ण विकास के लिए नितान्त रूप से आग्रहशील मुक्ति कामना करने वाली नारियों का पिजड़े के सींखचे के विरूद्ध कठिन संग्राम और उसमें आंशिक विजय का इतिहास वर्णित हुआ है ।

महाश्वेतादेवी ने उपन्यास के क्षेत्र में परिधि और विषय के वैचित्र्य को बहुमुखी बना दिया है । उनके जीवन की अभिज्ञता जैसे विचित्र धारा में प्रवाहित हुई है, उनकी रूपायन क्षमता भी उसी तरह हत्चकित कर देने वाली है । साधारणतया नारी की जीवन दृष्टि में एक संकीर्णता तथा सीमाबद्धता दिखाई देती है । पारिवारिक जीवन के छोटे-छोटे घात-प्रतिघात के प्रति नितान्त मनोयोग लक्षित होता है । महाश्वेतादेवी ने इन सब छोटी-छोटी बातों का अनायास अतिक्रमण करके अनेक नवीन पथ और अनुभव को निपुणता के साथ ग्रहण कर लिया है और अनेक अपरिचित जीवन यात्रा की धारा हम लोगों के समक्ष उद्घाटित की है । उन्होंने जीवन दर्शन की एक नया संज्ञा और प्रतिश्रुति लेकर हम लोगों के जीवन बोध को जिस तरह उच्चकित किया है उसी तरह परितृप्त भी किया है ।

'नटी' (1957) और 'मधुरे-मधुर' (1958) उनके प्रथम प्रकाशित उपन्यास

है। संगीत नृत्य तथा चारूशिल्प के मोहमय सौन्दर्य पूर्ण परिवेश के प्रति लेखक की अनुभूति तीक्ष्ण और संवेदनशील सिद्ध होती है । इसके सन्धान में वे विगत इतिहास के वर्ण सुषमामय प्रतिष्ठाभूमि में स्वच्छन्द विचरण करती हैं ।

'मधुरे-मधुर' उपन्यास में इतिहास का गतिवेग और आडम्बर जैसे एक तरफ दिखाया गया है उसी तरफ वस्तु प्रक्षेप और आकस्मिकता की अवतारणा की गयी है परन्तु धर्म प्रेरणा के उपजाति और भक्ति कल्पना से प्रभावित नृत्य, गति, अभिनय, कल्पना, सौन्दर्य, के एक जगत सृष्टि में समर्थ है, उसी को अनुभूति गोचर करने की प्रक्रिया महाश्वेता देवी ने अपना ली है ।

'प्रेमतारा' (1969) सर्कस दल के नारी-पुरुष की जीवन कहानी का परिचय पतिष्ठित करता है । इसमें लेखिका ने नये तीरके की अभिज्ञता का परिचय दिया है । महाश्वता देवी की रचनाओं में उपन्यास के गति परिवर्तन की प्रक्रिया के भीतर एक सुन्दर संगति के विन्यास में इनकी प्रतिभा का परिचय मिलता है । 'एतटुकू आशा' (1959) महाश्वेतादेवी का बहुत साधारण उपन्यास है । 'तिमिर लगन' (1959) उपन्यास लेखिका के विषय वैचित्र्य सृष्टि का एक और निदर्शन है ।

इसी तरह 'तारार आँधार' (1960) - एक साधारण उपन्यास होते हुए भी आत्मप्रतारित का जीवन रहस्य कितना मर्मस्पर्शी हो सकता है इसमें उसी का उदाहरण

दिया गया है । इस उपन्यास के परिवेश अंकन में जो कुशलता है वह यथार्थ रूप से प्रशसा योग्य है ।

महाश्वेता देवी आज भी लिख रही हैं और भारत के मनुष्य के जीवन की असंख्य समस्याओं की अवतारणा करके उसकी गति और प्रकृति का विवरण दे रही है। परन्तु सभी जगह हम देखते है आदमी मौलिक रूप से अपने हृदय के भीतर अपने लिए जो तश्वीर बनाता है वह सभी के अनजाने में ही किसी मुहूर्त, किसी भी मोड़ में अभूतपूर्व परिणति को प्राप्त कर लेती है ।

वाणीराय की रचना में एक उग्र और तीक्ष्ण मानसिकता का परिचय मिलता है। लगता है व्यंग्य रसिक की तरह गलती ढूंढ़ना अथवा एक विशेष मानसिकता के उद्‌देश्य द्वारा नियंत्रित समीक्षा ही उनके उपन्यास की मूल प्रेरणा है । 'प्रेम' (1946) 'श्रीलता ओशम्पा' (1948-49), 'कनेदेखा आलो' (1957) 'आराओ कथा बलो', (1960)'सुन्दरी मंजुलेखा' (1961) वाणी राय के उपन्यास समूह है ।

बंगला साहित्य में श्रेष्ठ उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में ह्यूमर के प्रति झुकाव नही दिखाया है परन्तु उन लोगों द्वारा सृजित कुछ चरित्रों में उन लोगों के वार्तालाप में और लेखकों के मतामत के बीच-बीच में ह्यूमर का परिचय मिलता है। इन

लोगों के बाद हास्य रसात्मक उपन्यास के सृष्टा के रूप में बंगवासी के प्रतिष्ठाता योगेन्द्र चन्द्र बसु, पंचानन्द छद्मनाम से - छद्मनामधारी इन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय प्रसिद्ध हैं। इन्दनाथ की रचना रीति द्वारा प्रभावित होकर योगेन्द्र चन्द्र ने हास्य रसात्मक उपन्यास लिखा । इन्द्र नाथ उपन्यासकार नही थे बैठकी हास्य रसात्मक रचना में अभ्यस्त थे । इनके बाद प्रमथ चौधरी ने जो हास्य रस सृष्टि की है वह एकदम नयी है। अपनी सृजनी शक्ति की प्रेरणा के साथ समालोचना शक्ति की विचार बुद्धि के प्रयोग से उनका हास्य रस नया हुआ है । उनकी कहानियों का स्तर विभाजन नही किया जा सकता है । उनके सदा क्रियाशील परिहास कुटिल मनोभाव ने समस्त श्रेणी को तोड़कर बराबर कर दिया है । प्रणय मूलक आख्यान को उन्होंने सर्वदा ट्रेजडी से ट्रेजी कॉमिडी में रूपान्तरित किया है । इनकी कई कहानी केवल व्यंग्य चित्र के रूप में ही परिकल्पित हुई है । प्रमथ चौधरी के बाद हास्य रसात्मक और कथा साहित्य राजशेखर बसु उर्फ परशुराम का समय आता है । इनकी 'गड्डालिका' और 'कज्जली' नाम से दो रचनाओं ने अपने आविर्भाव के समय पाठक और रसग्राही समाज में एक तहलका मचा दिया था । सभी ने स्वीकार किया कि बंगला साहित्य में एक पृथक श्रेणी के हास्य रसित का अभ्युदय हुआ है । इनका हास्यरस योगेन्द्र चन्द्र बसु अथवा प्रमथ चौधरी से भिन्न है । योगेन्द चन्द्र का अतिरंजन और प्रमथ चौधरी के अनेक बेकार प्रसंगों की अवतारणा हास्यकर सूक्ष्मतर्क और आडम्बरपूर्णआलोचना तथा एकाएक विपरीत रस का प्रवर्तन करके कॉमेडी रचना करने का प्रयास इनमें नहीं है । राजशेखर बसु के हास्य

रस में स्वतः स्फूर्त, प्रचुरता और स्वच्छता मिलती है । उनका हास्यरस बुद्धि की क्रीड़ा से मटमैला नहीं होता है । वह सहज और बलिष्ठ हास्यरस विकीर्ण करने में अनायास समर्थ होता है । हास्य रसिक का मुख्य लक्षण हास्य रस प्रधान मौलिक परिकल्पना की उद्भावनी शक्ति के भीतर ही है । गम्भीर चिन्तन क्षेत्र में जो लेखक हास्य रस प्रयोग करना चाहे कभी-कभी उनकी प्रशंसा हो सकती है । किन्तु उनमें मौलिकता की कमी है । परन्तु राजशेखर बसु ने ऐसा नहीं किया क्योंकि उनमें मौलिकता थी ।

उनकी मौलिक पारिकल्पना के उदाहरण स्वरूप 'गड्डालिका' में श्री श्री सिद्धेश्वरी लिमिटेड' 'चिकित्सा संकट' और 'भुसुण्डीर माठे' और 'कज्जर्ली' में 'विरिंचीबाबा' में हम लोगों के धर्म के नाम से जो ठगने की प्रवृत्ति है उसके प्रति कटाक्ष किया गया है । राजशेखर बसु के हास्य रस का प्रधान उपादान हास्य जनक परिस्थितियों के उद्भावन की निपुणता पर टिका हुआ है । उत्तर और प्रत्युत्तर मूलक हास्य रस उनकी रचना में नहीं है उन्होंने हास्सरसिक की दृष्टि से जीवन की सामंजस्यहीनता को देखा और उसके भीतर के यथार्थ रूप को वर्णित करके हास्य धारा प्रवाहित की है। 'गड्डालिका' पर रवीन्द्रनाथ के अभिमत को थोड़ा बताने से चित्रकला की सहयोगिता के सम्बन्ध में हास्य रस के सम्बन्ध में स्पष्ट धारणा होगी । 'इहाते आरओ विस्मय विषय आछे से जतीन्द्र कुमार सेनेर चित्र। लेखनीर संगे तूलिकार कि

चमत्कार जोड़ मिलियाछे, लेखार धारा रेखारधारा समान ताले चले, केओ काहारों चेये खाटो नये ताई चरित्र गुलो भाषाय ओ चेहाराए, भावे ओ भंगी ते, दाहिने ओ बामे एमन करिया धरा पड़ियाछे जे, ताहादेर आर पालाइबार फाँक नाइ।'[1]

केदारनाथ वंद्योपाध्यायऔर राजशेखर वसु के परिहास के भीतर कहींविराग की तीव्रता नहीं है। अस्वीकृति का थोड़ा सास्वर भी सुनाई नहीं देता । हृदय की प्रसन्न ग्रहण शीता कहीं छिन्न नहीं होती । केदार नाथ ने बंगाल की जीवन समस्या से निकली हुई वेदना को हंसी में रूपान्तरित कर दिया है और इस हंसी के पीछे जो अश्रुधारा प्रतिरूद्ध है यह जैसे क्रन्दन का ही एक तिर्यक रूपान्तर है ।

केदारनाथ वन्द्योपाध्याय का स्थान शायद सबसे उच्च है । हास्य रस की अनन्त प्रचुरता व्यक्त करने की शैली में भावपूर्णता और अर्थ गौरवपूर्ण संक्षिप्तता ने उनकी समस्त रचनाओं को समृद्ध किया है । राजशेखर बसु के हास्य रस की अन्तर्निहित शक्ति उनकी परिकल्पना की मौलिकता पर टिकी हुई है । उनके वार्तालाप भी इस हास्यकर परिकल्पना की असंगति के स्पर्श से हास्योद्दीपक हुए हैं। राजशेखर बसु के हास्यरस की और एक विशेषता यह है कि यह बहुत सूक्ष्म नापतौल की चेतना द्वारा संयम ज्ञान के ऊपर प्रतिष्ठि हैं। उनका हास्यरस परिमार्जित और सुरूचिपूर्ण है।

---

1. बंगसाहित्ये उपन्यासेर धारा - श्रीकुमार बन्द्यो पाध्याय पृष्ठ 399.

केदारनाथ वन्द्योपाध्याय की हास्य रसात्मकता उनकी प्रथम रचना 'चीन यात्री' ※1918※ में व्यक्त होती है । यह भ्रमण वृतान्त की कहानी है फिर भी इसमें कहानी की विचित्रता से हास्योद्रेक अधिक होता है । इस प्रथम रचना से ही उनकी हास्य रसिकता का भविष्य निर्णीत हो जाता है ।

उनकी द्वितीय रचना 'शेषरवेया' ※1925※ उपन्यास में हास्य रस करूण रस के समक्ष अपना प्राधान्य खो डालता है । यही केदार बाबू की एक मात्र विशुद्ध गम्भीर रचना है। केवल मात्र 'निमाई नन्दी' के चरित्र और वार्तालाप में हंसी के साथ प्रच्छन्न कटाक्ष का संयत स्वर सुनाई देता है ।

विभूति भूषण वन्द्योपाध्याय हास्य रसात्मक रचना में सिद्ध हैं । उनका 'सनूर प्रथम भाग ※1937※, 'रानूर' द्वितीय भाग ※1938※, 'रानूर' तृतीय भाग ※1940※ 'वसन्ती' ※1941※ 'रानूर कथामाला'※1942※ इन रचनाओं में एक नये शक्तिशाली लेखक के आविर्भाव की सूचना मिलती है । ये कहानियाँ विशेषतया हास्य रसात्मक हैं। हास्य रसिक के लघु दृष्टिकोण के पीछे जो कविजनोचित सौन्दर्य बोध और सूक्ष्मदर्शिता प्रच्छन्न थी वह क्रमशः रचनाओं में स्पष्ट हो उठी है । अतः विभूतिनारायण का स्थान केवल हासयरसात्मक रचयिताओं में नहीं है बल्कि गंभीर जीवन बोध के स्तर तक प्रवाहित है।

विभूतिभूषण के हास्य रसात्मक उपन्यासों में 'पोनूर चीठी' (1954), 'कांचनमूल्य' (1956) उल्लेख योग्य है ।'कांचनमूल्य' एक परिपूर्ण उपन्यास है। इसकी धारावाहिक रूप में और कुमप्रसार से कहानी एक विशेष सत्य को प्रकटित करती है।

विभूतिनारायण की गम्भीर रचनाओं की धारा 'रिक्शारगान' (1959) 'मिलनान्तक' (1959), 'नयानबऊ' और 'रूफलो अभिशाप' (1961) आदि कई उपन्यासों के माध्यम से प्रवाहित हुई है। 'पंकपल्वल' (1965) शरणार्थी समस्या के आधार पर विभूति भूषण नेइस उपन्यास की रचना की । साम्प्रतिक रचनाओं के स्तर में इसकी गणना होती है।

विभूतिनारायण की शक्ति का मूल स्रोत और जीवन को देखने की परिधि का विसतार साधारण उपन्यासकारों से बहुत अलग है। इसलिए बहुमुखी सम्भावनापूर्ण रचनाओं का विकास इनसे सम्भव हुआ है ।

नया उपन्यास

बंगला उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में नई परिकल्पनाऔर उद्देश्य प्रवर्तन के लिए जिन लोगों ने प्रयास किया है उनमें नरेश चन्द्र सेनगुप्त और चारू चन्द्र वन्द्योपाध्याय का नाम उल्लेख योग्य है। नरेशचन्द्र की सृष्टि शक्ति सहज ही पाठक

के मन को आकर्षित करती है । उनके रचित उपन्यासों की संख्या अनेक है। उनके प्रथम रचित उपन्यासोंमें उन्होंने यौन और अपराध तत्व विश्लेषण को ही मुख्यस्थान दिया है । उद्देश्य मूलक उपन्यास की दुर्बलता इन सब उपन्यासोंमें पूर्ण मात्रा में है । पाप अथवा यौन आकर्षण के तथ्य आविष्कार के सम्बन्ध में लेखक इतना अधिक मन लगाते हैं कि चरित्र सृष्टि उनके समक्ष गौण हो जाती है । उनके उपन्यास के नर-नारी केवल मात्र तत्व के वाहन के रूप में चित्रित हुए हैं। सजीव अथवा प्राणवन्तता उनमें नहीं मिलती है । ऊपर से एकाएक घटनाओं का समावेश भी बहुत आकस्मिक है। बहुत जल्दी चरित्र परिवर्तन ने इन लोगों की वास्तविकता को और भी नष्ट कर दिया है । सामाजिक उपन्यास के सूक्ष्म और अनेक तथ्यों द्वारा जटिल घटना प्रवाह तथा चरित्रों के विश्लेषण के साथ रोमांस की तरह एकाएक परिवर्तन के कारण इनके उपन्यास में त्रुटियां आ गई हैं । इनके 'शुभा' (1920), उपन्यास की नायिका की जीवन कहानी इसका उदाहरण हो सकता है।

'अभयेरविये' और 'तारपर' (1931) युग्म उपन्यास हैं । इसमें सांसारिक ज्ञानरहित परम पण्डित अभय के साथ माया और सरमा दोनोंबहनों के सम्पर्क की जटिलता की कहानी वर्णित हुई है। नरेशचन्द्र के अनेक उपन्यासों में नारी की धर्म साधना का इतिहास, धर्म जीवन में शान्ति प्राप्ति का प्रयास वर्णित हुआ है । 'तृप्ति' उपन्यास में मिनति की जीवन समस्या ने धर्मोन्मुखता में समाधान पाया है परन्तु धर्म

जीवन की व्याकुल तन्मयता अंकित करनेकेलिए जिस परिमाण, अन्तदृष्टि और कल्पनाशक्ति की आवश्यकता होती है, उपन्यासकार उतनी दूर तक पहुँच नहीं सकते है। यहाँ के वल रसहीन विश्लेषण और तथ्य समावेश द्वारा पाठक को विश्वास दिलाने का प्रयास किया गया है । परन्तु विश्वास दिलाने में लेखक असमर्थ ही रह गए।

अति आधुनिक उपन्यास

अति आधुनिक उपन्यास के समालोचकों के समक्ष कुछ कठिन प्रश्न उपस्थित होते हैं।(1) इसका प्रसार और संख्या इतनी अधिक है कि इसकी गणना करना मुश्किल लगता है । इसका श्रेणी विभाग करना भी सरल काम नहीं है । (2) इसके रूप और प्रकृति भीतर एक परीक्षामूलक अनिश्चयता लक्षित होती है । इसकी विस्तृत परिधि के भीतर तरह-तरह की विचार वितर्कपूर्ण आलोचना और मतामत के समावेश के लिए पूर्ववर्ती सुषमा और सामंजस्य नष्ट होगया है । परन्तु एक नये रूप की प्रतिष्ठा नहीं हो पायी है । इसका अनिश्चित उद्देश्य भी लेखक और पाठक दोनों के मन को स्थिर करने के लिए अनुकूल नहीं होता है । (3) इसके दृष्टिकोण और जीवन समालोचना की विशेषता भी पहले के उपन्यास की धारा का अनुसरण नहीं करते हैं । इसकी मौलिकता भी सबके द्वारा समर्थित नहीं है । इसलिए इसके विचार में प्रचलित रूचि के विरोधको दूर करके रसग्राहिता का परिचय देना पड़ता है । (4) यह अपने ही भीतर

एक ऐसी नई वस्तु है जिनकी कड़ियों को खोजकर निकालना पड़ता है।

इस उपन्यास के आविर्भाव के मुहूर्त में एक प्रबल कोलाहल में साहित्य के क्षेत्र को आलोड़ित किया था । इसकी दुनीर्ति परायणता और यौन आकर्षण के असंकोच में निर्लज्ज स्तुतिगान तीव्र विरोध और भंयकर विक्षोभ को जन्म दिया । इस उत्तप्त वाद-प्रतिवाद में साहित्य विचार के निर्पेक्ष आदर्श की सदा सर्वदा रक्षा करना संभव नहीं हो सकता। यह अस्वाभाविक अस्वस्थ उत्तेजना क्रमशः प्रशमित हुई और समस्त प्रश्न क्रमशः साहित्यिक आदर्शानुसार आलोचित होने लगे जो लेखक इस अस्वस्थ दुर्नीतिपरायण उपन्यास के साथ जड़ित थे उन लोगों ने अपने आप अथवा विरूद्ध समालोचना की ताड़ना से इस मलिन अतिशयता को छोड़कर निर्दोष और स्वस्थ विषय में स्वयं को युक्त किया।

अति आधुनिक उपन्यासकारों में बुद्धदेव वसु, अचिन्त्यकुमार सेन गुप्त सर्वप्रथम उल्लेख योग्य है । पुरातन की सीमा रेखा तोड़मरोड़ कर उपन्यास को नया आकार देना और नये रास्ते में परिचालित करने का कृतित्व इन्हीं का है । परिकल्पना और रचना शैली की मौलिकता ने इन लोगों को पूर्ववर्ती उपन्यासों के प्रभाव से अलग कर दिया है बंकिमचन्द्र से शरतचन्द्र तक उपन्यास साहित्य के विवर्तन की मुख्य धारा प्रवाहित हुई है । इन लोगों ने उस स्रोत में अपने आपको न मिलाकर एक शाखा - धारा का प्रवर्तन किया । इस शाखा धारा का स्रोत वेग स्थायी होगा अथवा मूल धारा से विच्छिन्न होने

के कारण इसका रस प्रवाह थोड़े ही दिन में सूख जाएगा एसी शंका रह जाती है। फिर भी यह निश्चित है कि ये लोग उपन्यास के भविष्य परिणति की नई संभावना सृष्टि करने में समर्थ हुए हैं।

इन लोगों के उपन्यास की मुख्य विशेषता यह है कि यह बहुत व्यापक और गहरे रूप से गीतिकाव्य धर्मी है । यह बात सही है कि उपन्यास के भीतर गीतिकाव्य की उन्मादना और झंकार कोई नई बात नहीं है । परन्तु अचिन्त्य कुमार बुद्ध देव आदि के कवित्व उपन्यास में सर्वव्यापी और स्पष्ट है। उन लोगों का दृष्टिकोण और विश्लेषण प्रक्रिया नितान्त रूप से काव्यात्मक है । उपन्यास में जो घात प्रतिघात और मानसिक क्रिया प्रतिक्रिया का वर्णन होता है उनमें मनस्तत्व विश्लेषण के बदले काव्यावेग मुख्य हो उठा है ।

जीवन के विशेष पल को देखने की प्रक्रिया, जीवन समालोचना की प्रणाली इन लोगों की रचनाओं में काव्य द्वारा अनुप्रेरित होती है । इन लोगों का प्रकृति वर्णन ऐसा है कि वेशभूषा अथवा गृहसज्जा वर्णन के चारों तरफ एक सांकेतिकता की परिवेष्टनी अनुभव की जा सकती है । इन लोगों के लगभग प्रत्येक उपन्यासों से ही इस विशेषता का उदाहरण दिखाया जा सकता है । बुद्धदेव वसु का 'जे दिन फूटलो कमल' के 'वर्षा' अध्याय में वर्षा का और 'दुःखानि चीठी' में रात्रि की अन्धकारमय सत्ता की रहस्यमय उपलब्धि : 'एकदा तुमि प्रिये', में पलाश के अन्तर्द्वन्द्व के वर्णन में

अन्धकार और स्तब्धता की पृष्ठभूमि पर मानवात्मा की नग्न असहायता की अनुभूति 'तार थेके जेगे उठछे अन्तरेर चिरन्तन निस्संगता, चिरंतन विरह, जखन आमरा उन्मोचित उद्‌घाटित, उन्मथित, चेतनार तीरे पड़े - नग्न, आक्रमणीय, निस्सहाय।'[1] इसके बाद 'वासरघरे कालपुरूष' अध्याय में मध्यरात्रि में नवविवाहिता दम्पत्ति की अतीन्द्रिय अनुभव शीलता-'चेतनार शक्त श्वेत दीप्ति थेके से मुक्ति पेयेछे। दुजनेर मध्ये जन्म निल विश्वास, रहस्यमय नदी, रात्रैर हृदय एइ द्वैत निस्संगता ।'[2] अचिन्त्य कुमार के 'आसमुद्र' में वन जंगल का समाप्त होता हुआ अस्तित्व और उसकी निगूढ़ चेतना के अन्धकार से मुक्ति। पुनः सन्ध्या के अन्धकार में सौम्य की अतृप्त आत्मा का अपना सत्य, गहरा परिचय प्राप्त करने की व्याकुल कामना से अशान्त चंचलता इसी तरह हृदय और प्रकृति का काव्यात्मक महामिलन इनकी रचनाओं में मिलता है ।

बुद्धदेव और अचिन्त्यकुमार के समस्त जिन उपन्यासों की आलोचना की गयी है उनकी क्रम परिणति की धारा का अनुसरण करने से दोनो में किस आधार पर समता है यह समझ में आ जाता है । बुद्धदेव वसु का प्रथम उपन्यास 'अकर्म' ()1931() 'फिर रडोड्रेनड्रन ()1932(), 'सानन्दा' ()1933() 'जे दिन फूटलो कमल' असूर्यंपश्या, 'एकदा तुमि प्रिये' ()1934() 'वासर घर' ()1934() आदि उपन्यासों से उनकी रचना की परिणति की धारा स्पष्ट हो जाती है । 'जे दिन फूटलो कमल' उपन्यासकार की परिपक्वता का परिचय मिलता है । उपन्यास के गठन चरित्र सृष्टि, घटना प्रवाह, भाषा

---

1. बंगसाहित्ये उपन्यासेर धारा - श्री कुमार बन्द्यो पाध्याय पृष्ठ 452.
2. वही ....

प्रयोग, आदि का परिचय मिलता है । एक गहरी अनुभूतिपूर्ण प्रेम कहानी की परिणति की तरफ लक्ष्य करके ही उनकी रचना विशिष्टता अर्जन करती है । इसमें नायक-नायिक के चरित्र भी काव्य प्रतिवेश से अलग एक व्यक्तित्व अपने भीतर जो अनुभव कर सकते हैं उसका परिचय भी मिलता है । इसके साथ-साथ काव्य प्रवणता स्पष्ट और प्रतिष्ठित होती है ।

बुद्धदेव के द्वितीय स्तर के उपन्यास समूहों में 'तिथिडोर' (1949), 'निर्जन स्वाक्षर' (1951), 'शेषपाण्डुलिपि' (1956), 'दुईढेउ एक नदी' (1958) 'शोनपांशु' (1959) 'हृदयेर जागरण' (1961) में एक नवीन जीवन समीक्षा रीति का परिचय मिलता है । 'निर्जन स्वाक्षर' और शेष पाण्डुलिपि में कवि साहित्य के प्रेरणारहित विषय का परिचय मिलता है । इनमें गहरी अनुभूति है परन्तु घटना विन्यास (क्रम) और चारित्रिक क्रम विकास के विषय में कोई उच्चांग कला कुशलता का परिचय नहीं मिलता है ।

अचिन्त्य कुमार की परिणति की धारा 'वेदे' (बंजारा), 'ऊर्णनाभ' (मकड़ी) (1933) और 'आसमुद्र' (1934) आदि कई उपन्यासों के भीतर से प्रवाहित हुई है । 'बेदे' और 'टूटा-फूटा' नामक की छोटी कहानी के संकलन में लेखक जीवन के ग्लानिमय रूप, दरिद्रता का आघात, विद्रोह का क्षोभ और पाप के मार्ग से फिसलन में एक अस्वस्थ मानसिकता का परिचय उनकी रचनाओं में मिलता है । दरिद्रता और जीवन

के अविचार के विरूद्ध एक तिक्त और नैराश्यपूर्ण नैतिक विद्रोह हम लोगों के तरूण उपन्यासकारों के हृदय की वेदना को व्यक्त करने के एक सहज उपाय के रूप में प्रयोग किया जा रहा था । परन्तु इस क्षोभ में स्वाभाविक आन्तरिकता और प्रत्यक्ष अनुभव से आडम्बरपूर्ण विद्रोह घोषणा और अतिरंजन का परिचय इसमें मिलता है । विषयवस्तु की कमी भी इसका एक कारण प्रतीत होती है । दरिद्र के प्रति सहानुभूति और निष्ठुर समाज व्यवस्था के विरूद्ध अभियान चलाना सदा सर्वदा उच्चांग साहित्य सृष्टि की प्रेरणा नहीं दे सकता है । विषय निर्वाचन के ऊपर साहित्यिक उत्कर्ष निर्भरशील नहीं है । इस सम्भावना के प्रति तरूण साहित्यिक लोग सचेत है, ऐसा नहीं लगता । पुनः इस मलिन प्रतिवेश के भीत अप्रत्याशित रूप से सौन्दर्य सृष्टि करना उपन्यासकार के लिए एक विशिष्ट बात हो जाती है । 'बेदे' उपन्यास में 'बातासी' अध्याय इस तरह काव्य सुषमा मण्डित हुआ है । अचिन्त्य कुमार की परवर्ती परिणति लक्ष्य करने से लगता है कि मलिनता के प्रति उनकी कोई स्वाभाविक आसक्ति नही हैं बल्कि कुत्सित ऊसर मरूस्थल का उल्लंघन करके एक सौन्दर्य लोक में उत्तीर्ण होना ही उनका यथार्थ उद्देश्य है ।

बुद्धदेव और अचिन्त्यकुमार की परिवेष्टनी में प्रेमेन्द्र मित्र का एक स्वाभाविक स्थान निर्मित हो जाता है । इस सत्य का आभास इन तीनों लेखकों द्वारा एक ही उपन्यास रचना में सहयोगिता में मिलता है परन्तु प्रेमेन्द्र मित्र की प्रणाली सम्पूर्णतः भिन्न हैं। इन्होनें अनेक छोटी कहानियाँ सफल और नवीन आधार पर लिखी हैं ।

काव्य की अतिशयता के विषय में बुद्धदेव और अचिन्त्य कुमार से प्रेमेन्द्र मित्र सम्पूर्ण रूप से भिन्न हैं । कल्पना विलास अथवा काव्य चर्चा का आभास इनके उपन्यासों में नहीं है । एक तरह की आवेग हीन बौद्धिक स्तर पर प्रतिष्ठित जीवन समालोचना और बंगला साहित्य में सुलभ भावार्द्रता का इन्होनें सम्पूर्ण वर्णन किया है । कठोर नियंन्त्रण ही उनकी मुख्य विशेषता है । जिस करूण रस उद्दीपना की क्षमता को बंगला उपन्यासकार अपनी सर्वश्रेष्ठ सम्पत्ति मानते हैं, प्रेमेन्द्र मित्र थोड़ा सा व्यंग्य विद्रूप और अवश्यम्भावी दुःख तथा विषाद के मनोभाव द्वारा उसका प्रतिरोध करने की चेष्टा करते हैं। 'बेनामी बन्दर' उपन्यास में मनुष्य की जो हृदय वृत्ति सबसे विशुद्ध और स्वार्थशून्य विवेचित होती है वही सन्तान स्नेह के भीतर भी जो व्यर्थता और आत्मप्रतारणा है, उन्होनें उसी का उद्घाटन किया है ।

दीर्घ उपन्यास रचना में प्रेमेन्द्र मित्र परीक्षा मूलक अनुसन्धान कार्य करते गए। 'कुयासा' उपन्यास में उनकी परिपक्व शक्ति का निदर्शन मिलता है । इसमें परिपक्वता की मौलिकता बहुत स्पष्ट रूप से पाठक को स्पर्श करती है । एक युवा पुरुष की एकाएक स्मृति लुप्त हो जाती है और परिणत मनोवृत्ति तथा हृदयावेग लेकर जीवन के साथ नया सम्पर्क स्थापित करने की तीव्र व्याकुलता उसके भीतर जागृत होती है । उपन्यास का यह आकर्षण कुछ नये ढंग का है । प्रेम का आविर्भाव वर्णन ही इस उपन्यास का चरम गौरव है।अन्त में लेखक की स्वाभाविक रोमांस विमुखता नायक के

अनचाहे अतीत को उद्‌घाटित करके उसके जीवन में एक अप्रत्याशित जटिलता ला देती है । यह अवस्था कुछ असुविधापूर्ण होने पर भी उपन्यास रचना की विशिष्टता में प्रेमेन्द्र की श्रेष्ठता का स्वाक्षर रखता है ।

उपन्यास के अतिप्रसार और जनप्रियता के युग में ऐसे अनेक लेखक उपन्यास के क्षेत्र में आकर्षित हुए । जिन लोगों की रूचि ठीक उपन्यास की स्वाभाविक विशेषता के अनुवर्ती नहीं थी वैसी ही उपन्यास रचना लोगों ने की । बंगला साहित्य में बंकिम युग में इस तरह के एक लेखक संजीव चन्द्र हैं । प्रबोध कुमार सान्याल भी इस श्रेणी के लेखकों में से हैं । संजीव चन्द्र का 'पालामो' जैसे उनकी मानसिकता का दर्पण है । प्रबोध कुमार के 'महाप्रस्थानेर पथे' भी उसी तरह उनके जीवन रस आहरण की विशिष्टता का मूल स्रोत है । दोनों ने ही अपने-अपने उपन्यास में इस मानसिक प्रवणता को कहानी के माध्यम से प्रसारित और प्रतिष्ठित किया है । प्रबोध कुमार सान्याल का 'महाप्रस्थानेर पथे'मुख्यतः भ्रमण कहानी है । इसके दृश्य परिवर्तन के बीच-बीच में इसकी गतिशीलता के छन्द में उपन्यास का रस कुछ संचित हुआ है। इस ग्रन्थ में लेखक की दार्शनिक अनासक्ति उदार मननशीलता और जीवन अनुसन्धित्सा प्रकटित होती है । इसका मानवीय आवेग गतिशीलता के कारण क्षणिकता में समाप्त हो जाता है इसलिए लेखक कहीं आसक्ति के जाल में फंसे नहीं । जीवन स्रोत की कई तरंग उन्होंने लक्ष्य किया है । प्रबोध कुमारकी रचना में भ्रमण की यह मायारहित मानस

मुक्ति देखते-देखते आगे बढ़ जाने की स्वच्छन्दता उनकी रचना का प्रधान आकर्षण है।

प्रबोध कुमार के मानवजीवन की आलोचना जैसे प्रयोगागार में परीक्षण और निरीक्षण मूलक मानसिकता से उद्भूत हुई है । मनुष्य को तरह-तरह की नवीन अवस्था में प्रतिष्ठित करके नवीन आदर्श में उसके हृदय की सहज गति को शासित करके मानव प्रकृति के सम्भाव्य परिवर्तन के सम्बन्ध में सचेतन रहकर उन्होंने नर-नारियों सम्बन्धों के विचित्र रूप अंकित किये है ।

मानिकवन्द्योपाध्याय के 'दिवा रात्रिर काव्य' और 'पूतूल नाचेर इति कथा' (1936) दोनों उपन्यासों में असंलग्न और अवास्तविकता के साथ आश्चर्यजनक रूप से परिपक्व चिन्तनशीलता और विश्लेषण की निपुणता का परिचय मिलता है । 'दिवारात्रिर काव्य' को एक वस्तु संकेत का कल्पनामूलक रूपक कहा जाता है। चरित्र समूह की अवास्तविकता के सम्बन्ध में कहा जाता है कि 'चरित्र गुलि केउ मानुष नय, मानुषेर प्रोजेक्शन (प्रक्षेप), मानुषेर एक-एक टुकरो मानुषिक अंश' [1] प्रत्येक परिच्छेद की भूमिका स्वरूप जो छोटी कविता संलग्न है उसमें कहानी की इस सांकेतिकता के सार संकलन का प्रयास मिलता है । विश्लेषण के बीच-बीच में चरित्र समूह के ऊपर एक-एक सांकेतिक संज्ञा आरोपित हुई है ।

---

1. बंगसाहित्ये उपन्यासेर धारा - श्रीकुमारवन्द्यो पाध्याय, पृष्ठ 512.

लेखक का यह रूपक विलास एकदम आधारशून्य नहीं है जैसे कुछ स्थूल वस्तुएं एकाएक प्रकाश में रखने से उसके भीतर तक स्वच्छ और रंगीन लगता है। उसी तरह इनके उपन्यास के नर-नारियों के जटिल सम्पर्क जाल के भीतर से एक आकस्मिक संकेत लोक की ज्योति निकलने लगती है । उनकी समस्या आलोचना के प्रसंग में मानव प्रकृति के गहरे रहस्य के विषय में मतामत व्यक्त किया गया है उसमें उन लोगों के व्यक्ति जीवन का अतिक्रमण करके प्रतिनिधित्व अधिक प्रकाशित हुआ है । समस्त कहानी के भीतर अवास्तविकता की छाया इतनी घनी है कि लगता है कि लेखक नैर्व्यक्तिक (ऐब्सट्रेक्ट) परिकल्पना को केन्द्रित करके अपनी रचना आरम्भ करते हैं और बाद में इसके ऊपर रक्त मांस का आवरण देते हैं फिर भी इसके भीतर की निर्वयक्तिकता झाँकने लगती है ।

मानिकवन्द्योपाध्याय 'पद्मानदीर माझि', 'जननी', 'अहिंसा' अमृतस्य पुत्र' (1938), 'सहरतली' 'चतुष्कोण', 'प्रतिबिम्ब' (1943), आदि उपन्यास और कई कहानियों के प्रकाशित होने के पश्चात बंगला साहित्य के क्षेत्र में विशिष्ट उपन्यासकार का गौरव प्राप्त कर लेते हैं । इन सभी रचनाओं में उनका स्वर और दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है तथा जीवन आलोचना की निजी रीति स्पष्ट हो उठी है । पहले के दोनों उपन्यासों में जो अद्भुत कल्पना विलास लक्ष्य किया गया है यह दोनों गुण कभी एकक रूप से और कभी दोनों एक साथ उनकी समस्त रचनाओं में मिलते हैं । यह नया स्वर प्रवर्तन उनकी मौलिकता का परिचय देने में समर्थ है ।

आधुनिक रोमांस युगीन उपन्यास

वास्तविकता के युग में रोमांस के प्रति अनुराग बहुत थोड़े लेखकों के भीतर सीमित रहता है। बंकिम चन्द्रके बाद ऐतिहासिक रोमांस का दरवाजा एकदम बंद हो गया है । रवीन्द्र नाथ का रोमांस काव्यिकता पूर्ण है । प्रकृति का रहस्य अनुभव उसका आधार है । रवीन्द्रनाथ प्रवर्तित धारा का ही आधुनिक लेखकों ने अनुसरण किया है । इन लेखकों में विभूतिभूषण वन्द्योपाध्याय और ताराशंकर वन्द्योपाध्याय सम्मानित स्थान अधिकार किए गए हैं ।

ताराशंकर अपनी कहानियों में एक कुमवर्द्धमान शक्ति का सुन्दर परिचय देते हैं । 'जलसाघर' (1937), 'रसकली' (1938) और 'हारानोसूर' (1938) - कहानियों में तब तक साहित्य क्षेत्र में उपेक्षित राढ़ बंगाल की जीवन यात्रा के कई छोटे-छोटे शाखा चित्र अंकित करके विशिष्टता लादी है । हम लोगों के सामाजिक इतिहास लेखक और उपन्यासकार यह बात याद नहीं रखते हैं कि मध्ययुग से आरम्भ करके पिछली दो तीन शताब्दी तक जमींदारवंश ही राज्य की जीवनशक्ति के केन्द्र स्थल और आधार थे। ये कार्यतः स्वाधीन अप्रतिहत भूस्वामी अपनी आदर्श आंकाक्षा विलास-व्यसन, अत्याचार आश्रित वात्सल्य सौन्दर्य रूचि और गुण ग्राहिता को केन्द्र करके जीवन आवर्तित करते रहे। पिछले दो तीन सौ वर्षों को समझने के लिए जमींदारों को समझना पड़ेगा ।

जाति के मुख्यपात्र और नेता के रूप में इस अभिजात वर्ग का साहित्य में

और इतिहास में स्थान है परन्तु साहित्य में इस श्रेणी के प्रति सुविचार हुआ है ऐसा नहीं कहा जा सकता । प्रमथनाथ विशी ने 'जोड़ा दीघिर चौधरी परिवार' नामक उपन्यास में इस नेतृशक्ति का परिचय दिया है और ताराशंकर ने बहुत छोटी परिधि के भीतर और कई उपन्यासोंमें इसी के सुदूर प्रसारी प्रभाव की कहानी लिखी है।

ताराशंकर वन्द्योपाध्याय के उपन्यासों में अकृत्रिमता और भाषा के ऐश्वर्य का परिचय मिलता है । उन्होने श्रमिकों के जो अतृप्त, अशान्त भूख और क्षोभ का चित्र अंकित किया है उसमें सचमुच हृदय की वेदना का ताप अनुभूत होता है । अनेक लेखकोकं ने श्रमिकों की दुर्गति का वर्णन करते हुए के केवल तथ्य सन्निवेश किया है । उन लोगों की अवस्था और दीनता पर सहानुभूति दिखाया है । उन लोगों के शून्य विडम्बित जीवन कहानी में करूण रस संचार करने का प्रयास किया है । परन्तु ताराशंकर की भाषा की कठोर भाव व्यंजक शक्ति और सांकेतिकतापूर्ण रचना से एक धूसर उदास मरूस्थल की तरह ज्वालामपी छायालेश हीन जीवन परिवेश की रचना हुई है ।

'धात्रीदेवता' (1969) 'कालिन्दी' (1940) 'गणदेवता' (1942) और 'पंचग्राम' (1944) ताराशंकर वन्द्योपाध्याय के क्रमपरिणतिका एक उच्चतर स्तर सूचित करता है । इन उपन्यासों में राढ़ जीवन यात्रा की धारा के भिन्न-भिन्न स्तरों की सुन्दर आलोचना हुई है । प्रथम दोनों में मध्ययुगीन आदर्श द्वारा वर्णित जमींदार समूह के जीवन

में आधुनिक प्रभाव का विक्षोभ दिखाया गया है । अन्तिम दोनों में राढ के जनपद में समस्त प्रजा साधारण के पारिवारिक जीवन कीनई नई जटिल समस्याओं का उद्भव ही उनकी आलोचना का विषय है । पहले के उपन्यासों के साथ तुलना में ये सभी उपन्यास विषय गौरव, गठन सुषमा रस की गम्भीरता और वर्णन तथा विश्लेषण शक्ति की दृष्टि से उत्कृष्ट औरअग्रगतिपूर्ण लगते हैं। इन्ही उपन्यासों के माध्यम से ताराशंकर उपन्यासकार के रूप में प्रथम श्रेणी का स्थान प्राप्त करते हैं।

इसके बाद उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में नारायण बंगोपाध्याय, मनोज वसु प्रमथ नाथ विशी, सुबोध घोष और शरदिन्दु वन्द्योपाध्याय मुख्य रूप से नित्य नवीन उद्भावना से पाठक हृदय को आकृष्ट कर रहे थे । भारतके अन्य-अन्य प्रदेशोंके आर्य जाति की तुलना मेंबंगाल की रक्त धारा और हृदय वृत्त में आदिम अनार्य प्रभाव का विचित्र सम्मिश्रण सुप्त रूप मेंहै । बंगाल जीवन के इस प्रत्यन्त प्रदेश ने आधुनिक युग के जिन उपन्यासकारों के हृदय में तीव्र कौतूहल और ऐतिहासिक अनुसन्धान की इच्छा जाग्रत की है उनमें नारायणगंगोपाध्याय सबसे बाद में आते है। परन्तु उनकी प्रतिभा सर्वश्रेष्ठ है । अने तीन पर्व में समाप्त 'उपनिवेश' उपन्यास में इस भूगर्भ लुप्त तीव्र चेतना धारा को आदिम अरण्य के संस्कार को नवीन रूप में उपलब्धि करके चमत्कार सृष्टि का प्रयास इन्होनें किया है । इस उद्देश्य को सफल करने के लिए उन्हें बंगाल के भौगोलिक सीमान्त में सुन्दर वन के जंगलों में जाना पड़ा है । यहाँ मानव जीवन के

ऊपर प्राकृतिक परिवेश का ही एकाधिपत्य है । समुद्र का ज्वार भाँटा तथा तंरग उच्छवास मानविक हृदया वेग का छन्द नियंत्रित करता है । चर इस्माइल के अधिवासियों में 16वी-17वीं शताब्दी में भयंकर पुर्तगीज जलदस्युके आधुनिक वंशधर, अराकानी और मोंग के वन्य असामाजिक उच्छंखल कई नर-नारी उत्तर और पूर्व बंग के साहसिक भाग्यन्वेषी यायावार परिवार और सरकारी नौकरी करने वाले तथा नियमित व्यापार करने वाले कुछ मध्यम वर्गीय बंगवासियों का उल्लेख इस उपन्यास में आता है।

उपनिवेश का तीन खण्ड (1944) नारायण गंगोपाध्याय की प्रथम रचना है और इसी में उनकी नवीन जीवन दृष्टि व्यक्त हुई है । इन तीनों खण्डों में उन्होंने बंगाल के रक्त प्रवाह में आदिम वन्य प्राण चंचलता के आवेग का आविष्कार किया है । 'सम्राट ओ श्रेष्ठि' (1944) 'मन्द्रमुखर' (1945) 'महानन्दा' 'स्वर्ण सीता' (1946) 'ट्राफी' (1949) 'लालमाटी' (1951) आदि उपन्यासोंने उनकी प्रतिष्ठा को बंगला उपन्यास साहित्य में दृढ़ कर दिया है । समस्त उपन्यासों में उनकी इतिहास चेतना और राजनैतिक बोधका प्राधान्य है ।

शरदिन्दु वन्द्योपाध्याय नें सम्पूर्ण उपन्यास और कहानी दोनों विधाओं में प्रचुर रचनाएँ की है । 'चुयाचन्दन' (1936) 'विषेरधुआँ' (1945), 'छायापथिक' (1950) 'कानूकहे राई' (1955) 'जातिस्मर' (1957) उनके उपन्यास हैं । उनके उपन्यास

समूह सर्वसाधारण को आकृष्ट करने में समर्थ है परन्तु इनमें किसी तरह के गहरे जीवन परिचय का निदर्शन नहीं मिलता है । विशेषतया उनकी जासूसी कहानियाँ साहित्यरस समृद्ध हैं । इतनी लोकप्रियता के साथ सयोंग की सार्थकता इसमें नहीं मिलती।

बंगला उपन्यास का नवरूपायण

उपन्यास के उद्‌भव युग में हम लोगों ने देखा है कि अनेक स्रोत से उपादान संग्रह करके मानव चित्त विश्लेषण को संयमित करके एक नए साहित्य का जन्म हुआ। उपन्यास के स्वर्ण युगक का यह संयमित गठन उसके समसत वैचित्र्य और आख्यान वस्तु की बहुमुखिता के भीतर उसको एक आंगिक समता में प्रतिष्ठित किया गया। परन्तु उसकी अभ्यन्तरीन शिथिलता और बहुमुखी होने की प्रवणता एकदम रूक नहीं गई थी। अति आधुनिक युग में उपन्यास का विकेन्दित रूप हम लोगों के समक्ष प्रकटित हो रहा है । क्योंकि इस युग में मानव जीवन के सम्बन्ध में निरपेक्ष सत्य अनुसन्धान करनेकी इच्छा का अतिक्रमण करके इस विषय के अनेक नये-नये मतवाद, उसकी प्रवृत्ति समूहों की अद्‌भुत व्याख्या, तथाकथित वैज्ञानिक नियम श्रृंखला की लोहे की जंजीर से मानव मन के अनेक अप्रत्याशित कामों को आबद्ध करने की चेष्टा द्रुत परिवर्तन शील सामाजिक परिवेश में सम्भावित समाज विन्यास के काल्पनिक रूपान्तर की कहानी उपन्यास क्षेत्र में मुख्य हो उठी है । पूर्व युग में व्यक्ति सत्ता का दृढ़ रेखा विन्यास और तरह-तरह के वाह्य रूपों के भीतर अटूट महिमा लेकर प्रतिष्ठित था।

वह वर्तमान युग में चूर-चूर हो गया है । अब चरित्र घटना स्रोत से बह जाता है। अब मनुष्य परिवेश श्रृंखलित जीव मात्र रह गया है ।

बनफूल की रचना में परिकल्पना की मौलिकता आख्यान वस्तु समावेश मेंविचित्र उद्भावनी शक्ति तीक्ष्ण मनन शीलता और तरह तरह के परीक्षण-निरीक्षण के भीतर से मानव चरित्र को जाँचने की पद्धति पाठक का विस्मय उत्पादन करने में समर्थ है। उपन्यास के आंगिक अथवा रूप रीति के भीतर अनेक नवीनता का प्रवर्तन भी उनका प्रशंसनीय कृतित्व है। एकतरफ उनका कलाकार हृदय नवीन सौन्दर्यके आकर्षण को अनुभव करता है दूसरी तरफ डाक्टर की छुरी ने उपन्यास के अंग विच्छेद द्वारा उसके विभिन्न उपादानों को अलग करके अपनी वैज्ञानिक जिज्ञासा को पूर्ण करना चाहा है । उपन्यास के कंकाल के ऊपर रक्त माँस का एकसूक्ष्म आवरण देकर अपनी मानसिकता के अनुकूल नवीनता को प्रचुर रूप से इसमें संचारित कर दिया है । अर्थात् मनस्तत्व घटित जटिल समस्या और प्रागैतिहासिक मानव के विवर्तन धारा के सरस और तथ्यपूर्ण चित्र उपन्यास में प्रवर्तन करके उन्होंने उपन्यास की परिधि को सम्प्रसारित किया है ।

बनफूल के रचना के प्रथम पर्व में जो कई उपन्यास रचित हुए हैं वह उनके डॅाक्टरी जीवन के अनुभव के उपादान से ग्रहण किए गए हैं । रोगग्रसत जीवन में मानव मनस्तत्व का जो विकार और टूटे हुए संयम का आत्म केन्द्रिक रूप उद्घाटित हुआ है इसके साथ लेखक के निजी काव्य प्रवण मनन क्रियायुक्त व्यक्तित्व का

परिचय भी मिलता है । मनोजगत का यह विशिष्ट रूप एक-एक संकीर्ण कक्ष को आलोकित करता है । 'तृणखण्ड' (1935) 'वैतरणी तीरे' (1936) किक्षुक्षण' (1937) 'से ओ आमि' (1943) 'अग्नि' (1946) आदि उपन्यासों को इसी स्तर के अन्तर्गत कहा जा सकता है ।

'तृणखण्ड' में डॉक्टरी व्यवसाय के अनुभव के माध्यम से एक भाबुक लेखक के मानव जीवन की असहायता की उपलब्धि का विवरण दिया हुआ है ।

'अग्नि' (1946) समय की दृष्टि से परवर्ती होने पर भी रचना शैली में प्रथम पर्व के अनुरूप ही है । अनेक खण्डों के उपाख्यानों को मिलकार गठित और अनेक विच्छिन्न भावोंच्छवास को एकमुखीनता मेंकेन्द्र बद्ध करके इस उपन्यास की सृष्टि हुई है । इसका विषय बंगला उपन्यास का अति परिचित अगस्त आन्दोलन है परन्तु बनफूल की स्वकीयता के निदर्शन से इसका स्वरूप एकदम नवीन हो गया है ।

द्वितीय स्तर के उपन्यासों में 'द्वैरथ' (1937) 'मृगया' (1940) निर्मोक (1940) एक अन्य भाव की अवतारणा मिलती है । इनमें लेखक ने साधारण तौर से परीक्षामूलक मनोभाव कोकुद्ध संयमित किया है । 'द्वैरथ' में कुछ पारिवारिक सम्पर्क की तरफ से निकट आत्मीय दो जमींदारों के पारस्परिक संघर्ष और प्रतियोगिता की कहानी मिलती है ।

'मृगया' (1940) उपन्यास में एक तरफ लेखक ने विषय निर्वाचन में और पृष्ठभूमि रचना में निपुणता दिखाई है तो दूसरी तरफ उन सबके सार्थक प्रयोग के सम्बन्ध में उदासीनता दिखाई है । इसलिए परिकल्पना अपूर्ण होने के बावजूद असमाप्त रह जाती है । अर्थात् परिकल्पना के अनुरूप रचना सिद्ध नहीं हो सकी ।

बनफूल की रचना के तृतीय पर्व के उपन्यास समूह 'मानदण्ड' (1948), 'नवदिगन्त' (1949) 'कष्टि पाथर' (1943) 'पंचपर्व' (1954) 'लक्ष्मीर आगमन' (1954) में विषयगत और रीतिगत परिवर्तन का निदर्शन मिलता है । ये उपन्यास समूह घटना और मनस्तत्व विश्लेषण मूलक हैं । इनमें एकमात्र 'लक्ष्मीर आगमन' को छोड़कर अन्य सभी स्थानों पर स्वप्नमय सांकेतिकता और आख्यान की धारावाहिकता परिहार का प्रभाव इतना लक्षणीय नहीं है। बनफूल के मानदण्ड उपन्यास में वैज्ञानिक आदर्शवाद और ललितकला में मत्त अभिजात्य बोध, हिंसा प्रेरित ध्वंसात्मक मन्त्र द्वारा दीक्षित राजनैतिक मतनिष्ठा और द्रुत परिवर्तन की हवा द्वारा आन्दोलित, राजनैतिक मतवाद और मानवीय कोमलता के बीच द्विधा विभक्त नारी प्रकृति यह सब अनेक विपरीत हृदयवृत्ति युक्त चरित्र और घटना के अद्भुत आलोड़न में विश्रृंखलता का स्वरूप उद्घाटित होता है । इतने भिन्न तरह के उत्केन्द्रिक चरित्रों के एकत्र समावेश से रचनाओं में कुछ अद्भुत और असंगतिमूलक भाव का जाना स्वाभाविक हो गया है फिर भी लेखक ने अपनी सृष्टि निपुणता के बल से चरित्रों को एकदम से अवास्तविक होने से बचा लिया है ।

सृजनमान उपन्यास साहित्य

उपन्यास की तरह प्रतिदिन नए-नए रूप में सृज्यमान नई-नई प्रेरणा द्वारा जीवन्त पाठक की रूचि और चाह की आवश्यकतानुसार निरन्तर आत्मप्रसारणशील साहित्य की आलोचना के लिए कोई सीमा रेखा खींचना असम्भव है । इसे न तो पंजिका की तिथि द्वारा सीमा बद्ध किया जा सकता है न तो वर्ष की गति द्वारा। साहित्य के इतिहास को एकदम अति आधुनिक युग तक प्रसारित करने से हो सकता है अनेक जीवित लेखकों की उन्नत रचना को जानकर अथवा न जानकर छोड़ देना होगा, नहीं तो साधारण लक्षण निर्देश की श्रृंखला को विसर्जन देकर सद्य प्रकाशित ग्रन्थ तालिका से नाम चयन करके आलोचना के कलेवर को सम्भवहीन रूप से विस्तार देना पड़ेगा।

आज जो उपन्यास साहित्य की सृष्टि चल रही है उसमें कई स्पष्ट धाराओं को लक्ष्य किया जा सकता है । (।)राजनैतिक मतवाद और स्वाधीनता संगाम की आवेगमय साधना) यह विषयवस्तु क्रमशः पुरानी होती गई इसके स्थान गणतन्त्र में राजनैतिक सामाजिक तथा अर्थनैतिक आधार में जो भ्रष्टाचार के सहस्त्र छिद्र हैं उन छिद्रों से निरन्तर तरह तरह के विनाश बीज प्रवेश, दुष्टता और धृष्टता का प्रवाह चारों तरफ कीचड़ बना रहा है उसका परिचय ही उपन्यास साहित्य की सामग्री बन

गया है । स्वतन्त्र भारत का उज्ज्वल रूप अपने अपने ढंग से सर्व क्षेत्र में प्रतिबिम्बित था। अब जब मूल्याकन करने बैठा जाता है कि कहाँ तक हम लोगों ने क्या प्राप्त किया? तब कहीं निराशा कहीं पश्चाताप और कहीं केवल दुर्दशा ही मिलती है । ऐसे ही जीवन ऐसे ही मनन युक्त मानव गोष्ठी का परिचय आज के उपन्यास साहित्य में मिलता है । आज के उपन्यास में केवल घरेलू जीवन, सामाजिक सम्पर्क और पारिवारिक चित्र ही चित्रित नहीं किये जाते बल्कि स्वतन्त्र भारत में सबसे बलिष्ठ अंश छात्र-छात्राएं बालक बालिकाएं कर्मव्यस्त सरकारी कर्मी तथा अनेक वृत्ति में लगे हुए लोगों के जीवन के विचित्र प्रवाह का परिचय दृष्टिगोचर होता है । आज के नवयुवक तथा नवयुवतियों की जो अथाह शक्ति है उसकी गति और परिणति के लिए सवतन्त्र सरकार का प्रयास और व्यर्थता का चित्रण भी किया गया है । यथार्थ रूप से आज का समाज आज का ही है । कल का समाज दूसरे तरह का होगा।

राजनैतिक उत्थान पतन देश विभाजन और देश त्याग की प्रतिक्रिया के स्वरूप पूर्व बंग के हिन्दू और मुसलमान की मिलित और मधुर जीवन यात्रा का परिचय मिलता है । इन उपन्यासों में हमेशा के लिए खोई हुई हजारों स्मृतियों के लिए जड़ित जन्मभूमि को एक आदर्शयित मधुर यादों को उपस्थापित करने की प्रक्रिया में सुन्दर रूप से कल्पना करने की स्वाभाविक शक्ति का परिचय मिलता है । पारस्परिक

सहयोगिता और संघर्ष से जीवनधारा के चित्र अंकित करने का निदर्शन मिलता है।

शरणार्थी जीवन की कहानी लेकर जो उपन्यास रचित हुए हैं - 'नारायण सान्याल' का 'वल्मीक' (1958) और 'शक्तिपद राजगुरू' का 'तबुविहंग' (1960) इन दोनो उपन्यासों में पूर्व बंगाल के शरणार्थियों की अस्थिर, विक्षुब्ध और दुर्दैव कण्टकित जीवन समस्या उपन्यास की प्रतिष्ठाभूमि और चरित्रों के केन्द्र को निर्दिष्ट करके तत्परता के साथ वास्तविकता की तरफ आगे बढ़ी है । घटनाचक्र नाना-आवर्त रचना करते करते अन्धकार विभीषिका की तरफ मूढ़ मानवीय गुण समूह एक निर्दिष्ट लक्ष्य स्थिर करके इनके जीवनबोध परिवेश के प्रवाह से स्वाभाविक स्पष्ट परिणति प्राप्त करता है। जो इतना दिन विशुद्ध घटनाश्रयी समस्या थी वही अब धीरे धीरे आत्म निर्दिष्ट हृदय समस्या बन बैठी । हृदय विदारक आघात से जो जड़ता आती है उस जड़ता से धीरे धीरे मुक्त होकर पुनः चिरन्तन मानवीय वृत्ति समूह पुनः जाग्रत हो उठा है । भाग्य पीड़ित जीवन के गतिविधि में उपन्यासकारों ने जैसे एक सचेतन उद्‌देश्य प्रर्वतन का सूत्र ढूँढ़ निकाला है । नारायण सान्याल का 'वल्मीकि' ऐसे ही शरणार्थियों की कथा कहता है।

शक्तिपद राजगुरू का 'तबु विहंग' पश्चिम गढ़ बंगाल के वनभूमि के प्रान्त में ऊसर प्रान्त में बने हुए शरणार्थियों के शिविर जीवन की एक सूक्ष्म अनुभूतिमय हृदय रहस्य की विचित्र कहानी है ।

राजनैतिक संग्राम और राष्ट्र चर्चा के स्तर पर रचित उपन्यास समूहों में दो उच्च श्रेणी के साहित्य गुण मण्डित उपन्यासों में (1) सतीनाथ भादुड़ी का 'जागरी' (2) (2)दीपक चौधु री का 'पाताले एक ऋतु' है। प्रथम उपन्यास में जेल में बन्दी एक स्वतंत्रता सेनानी के मृत्यु मुहूर्त प्रतीक्षा का स्मृति भारपूर्ण चित्र अंकित हुआ है । आसन्न मृत्यु संभावना ने उसकी समस्त अनुभूति को ऐसा एकाग्र कर दिया है कि इसी से उसके पूर्व जीवन की इधर-उधर फैली हुई स्मृतियों का समूह उनके समस्त हृदय का केन्द्र बिन्दु बन जाता है ।

राष्ट्र सर्वस्व जीवनबोध के साथ ऐतिहासिक कल्पना और समाज विश्लेषण युक्त होकर 'पाताले एक ऋतु' उपन्यास रचित हुआ है । भारत में कम्युनिस्ट राष्ट्र प्रतिष्ठित होने से उसका सम्भाव्य रूप शासन व्यवस्था और मानवीय प्रतिक्रिया इस उपन्यास में विवृत किया गया है ।

राजनैतिक संघर्षमय श्रमिक जीवन कहानी

विशाल कारखाने के यांत्रिक आवर्तन में श्रमिक आन्दोलन का तथा तरह तरह के मतभेद और षड़यन्त्र के श्रमजीवी जीवन यात्रा का नवीन रूप गौरी शंकर भट्टाचार्य के 'इस्पातेर स्वाक्षर' (1956) और शक्तिपद राजगुरू का 'केउ फेरे नाई' (1960) इन दोनों उपन्यासों में स्मरणीय रूप से लिखा गया है । नवीन जीवन बोध की

संभावना में अंकुरित गण जीवन की छवि जिन उपन्यासों में अंकित हुई है । उनमें समरेश बसु का 'जी0टी0 रोडेर धारे' 'श्रीमती काफे' ﴾1953﴿ और विमलकर का 'त्रिपदी' प्रमुख है ।

श्रीमती काफे में 'भजुलाट' मुलुगाड़ीवान, चरण, मनियाआदि मनुष्य समूह राजनैतिक आन्दोलन के प्रतिवेश में रहते हैं । राजनैतिक आँधी के स्पर्श ने उन लोगों के जीवन पथ को बार बार विपर्यस्ति किया है । फिर भी उन लोगों का हृदय राजनीति पर निर्भरशील नही है । 'श्रीमती काफे' में राजनैतिक विक्षोभ एक मुख्य स्थान अधिकार करता है । उपन्यास के नर-नारियों की जीवन धारा इसी ज्वार से उच्छ्वसित होती है । इसी के उत्ताप से उन लोगों की शिराएं और स्नायु स्वप्नावेश में आच्छन्न होते है ।

विमलकर के 'त्रिपदी' उपन्यास में कोयले के खान के शिल्पांचल के तीन मित्र मन्मथ, चारू और देवल के फुर्तीले, रंगीन जीवन की वक्र गति और उसके चारों तरफ तरह-तरह की घटनाओं के आघात से शिथिल होने का प्रभाव और विच्छेद प्रवणता की कहानी लिखी गयी है । इन तीनों मित्रों का योगसुत्र नितान्त आकस्मिक है। उसके बाद मन्मथ का सांसारिक ज्ञान और स्वेच्छा से संयम के लिए दूसरे दो मित्रों की विशिष्टता कहानी का अंग बन जाती है । इस कहानी में आगे चलकर सिद्ध होता

है कि नारी का आकर्षण मित्रता के बन्धन से अधिक शक्तिशाली है । सर्कस दल की लड़कियों को लेकर ही इन तीनों मित्रों का बन्धन विच्छिन्न होता है। देवल किस तरह अपने दैहिक शक्ति की श्रेष्ठता प्रमाणित लीलावती के पूर्व प्रणयी को हटा देता है वह भी एक आधुनिक समाज की विचित्र गति और स्वरूप का परिचय देता है । इस उपन्यास में एक देवल चरित्र ही थोड़ा गहरे रूप से अभिव्यक्त होता है । अन्यान्य चरित्रों का परिचय कुछ शिथिल रूप से सामने आता है परन्तु लेखक का कृतित्व प्रतिवेश रचना की सुन्दर संगतिबोध पर आधारित है । सर्कस के जीवन के व्यंजनामय चित्रण में और सुन्दर रूप से परिकल्पित आख्यानवस्तु के विन्यास में भी उनकी प्रतिभा का परिचय मिलता है ।

आधुनिक युग में तरह तरह का नवीन अनुसन्धान तथा गवेषणा करके अनेक तत्य संग्रह के फलस्वरूप जो अनेक ऐतिहासिक चेतना तथा सामग्री प्राप्त हुई है उनकी प्रेरणा से तरूण उपन्यासकारों ने किसी-किसी में इतिहासाश्रित उपन्यास रचने का प्रयास किया है । साम्प्रतिक ऐतिहासिक उपन्यास ने अतीत युग के ऐतिहासिक उपन्यास के आदर्श का अनुसरण न करके भिन्न मार्ग अपनाया है इसमें युद्ध सघर्ष की उन्मादना नहीं है। अथवा रोमांस की आकस्मिकता की दीप्ति भी नहीं है। कोई इतिहासाश्रित नायक भी इनके केन्द्र स्थल में रहकर घटनाओं के प्रभावों और कल्पना की अनायास गति का नियन्त्रण नहीं करते हैं । आज का ऐतिहासिक उपन्यास नितान्त रूप से तथ्य संकलन

और अर्थनैतिक परिस्थिति रचना की सहायता से एक विशेष युग का वास्तविक परिचय प्रकटित करने का प्रयास करता है । वर्तमान युग का इतिहास व्यक्ति केन्द्रिक नहीं है । जनसाधारण की जीवन यात्रा की रीति और अर्थनैतिक मान. का विवरण ही है । अतः इतिहास के परिवर्तन के साथ समता रखकर ऐतिहासिक उपन्यास भी अब वास्तविक जमीन के बहुत पास उतर आया है ।

ऐसा नवीन ऐतिहासिक दृष्टिकोण शरदिन्दुवन्द्यो पाध्याय का 'गौड़ मल्लार' (मल्हार), समरेश बसु का 'उत्तरंग' और स्वराज्यवन्द्यो पाध्याय का 'चन्दनडाँगार हाट' आदि उपन्यासों में मिलता है । 'गौड मल्लार' बीते हुए बहुत पुरानी अतीत की कहानी है और 'चन्दन डाँगार हाट' और 'उत्तरंग' बहुत पास के अतीत की घटना है । अर्थात जिसे बहुत कम समय हुआ है । 'चन्दनडाँगार हाट' में अंग्रेजों के वाणिज्यिक प्रतिष्ठा का इतिहास है । 'उत्तरंग' में सिपाही विद्रोह के रणक्षेत्र से भाग हुए एक हिन्दुस्तानी सिपाही के एक बागदी परिवार में आश्रय ग्रहण करने की उसी परिवार के अन्तर्भुक्त बन जाने की कथा है ।

'चन्दन डाँगार हाट' उपन्यास में विदेशी व्यापारियों के अत्याचार तथा विदेशी सूत तथा कपड़ों की आमदनी से बंगाल के वस्त्र शिल्प पर तीव्र आघात की कहानी दी हुई है । बंगाली दलाल की सहयोगिता से जुलाहों के जीवन विपत्तियों से

भरपूर हो जाते है, यही चित्रित हुआ है । इस उपन्यास के समस्त चरित्र और जीवन नीति में अतीत युग की विशिष्टता नहीं मिलती है । फिर भी लेखक ने प्राचीन समाचार प्रत्रिका से पत्रोद्वार करके इसमें जोड़े हैं । ताकि एक ऐतिहासिकता का स्वर इसमें गूँजे परन्तु उस पत्र की भावना और उपन्यास की भावना तथा जीवन दृष्टि एक नहीं है ।

प्रमथ नाथ विशी का 'केरी सहाबेर मुंशी', और गजेन्द्र कुमार मित्र का 'वह्निवन्या' आधुनिक ऐतिहासिक उपन्यास के क्षेत्र में एक विशिष्ट संयोजन है। 'वह्निवन्या' सैनिक विद्रोह की कहानी है । आज बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में भी ऐतिहासिक उपन्यास की अवतारणा हो रही है । जैसे सुनील गंगोपाध्याय का 'सेइ समयं' 19वीं शताब्दी के बंगाल के नवजागरण की पृष्ठिभूमि पर रचित इस उपन्यास में भी निकट अतीत के विशिष्ट वातावरण का चित्र मिलता है ।

गृहस्थ जीवन का साधारण रूप और समस्या समूह वास्तविक अवस्था के आधार पर नरेन्द्र नाथ मित्र के उपन्यास समूह में आलोचित हुआ है । इससे लगता है कि अत्यधिकआदर्शवाद, भावोच्छ्वास और जटिल मनस्तात्विक अतिशयता के विरोध में प्रतिक्रिया स्वरूप पुनः सहज जीवन यात्रा में लौटने के लिए कई उपन्यासकार आकृष्ट हुए हैं । नरेन्द्र नाथ मित्र के 'दीप पुंज', 'देहमन' (1952), 'दूरभाषिणी (1952) उपन्यासों में इस परिवर्तन का स्पष्ट निदर्शन मिलता है । इसमें 'दीपपुंज' पूरी तरह

से ग्राम्य जीवन की कहानी है । उनकी छोटी छोटी समस्याएं और हृदय संघात का सुन्दर और वास्तविक चित्र अंकित हुआ है । 'देहमन' उपन्यास में रूबी बाधारहित यौन सम्पर्क में आस्थाशील, भोग-विलास की परितृप्ति के लिए उत्सुक आधुनिक स्तर की युवतियों का प्रतिनिधि स्वरूप है । उसकी परिकल्पना में नारी प्रगति का एक विशेष दृष्टिकोण है ।

'दूरभाषिणी' (1952) में टेलीफोन कर्मचारी लड़कियों की जीवन कहानी और हृदय चर्चा का विवरण है परन्तु इनकी समस्या किसी भी आफिस में काम करने वाली युवतियों की समस्या हो सकती है । टेलीफोन के साथ इसका कोई विशेष सम्पर्क नहीं है ।

गजेनद्रकुमार मित्र का 'कलकातारकाछेइ' (1957), 'उपकण्ठे' (1961) और 'पौषफागुनेरपाला' (1964) - 19वीं शताब्दी के अंतिम भाग में अत्यन्त दरिद्र और भद्र परिवार के कठोर जीवन की कहानी है । इस परिवार में अद्भुद जीवन निष्ठा और भयंकर दुर्भाग्य में टिके रहने का अजेय संकल्प दिखाई देता है । दरिद्रता के साथ निरन्तर संग्राम में जीवन का कोमलवृत्ति समूह उखड़ जाता है और आत्म मर्यादा विलुप्त हो जाती है । ऐसा होते हुए भी वह जीवित रहते हैं और देह तथा मन में एक कठोरता की छाप लक्षित होने लगती है । सारा जीवन कठिन साधन के प्रभाव से

ग्रन्थ की नायिका श्यामा का सदा संदिग्ध आत्म क्रेन्द्रिक जीवनयात्रा में आवर्तित होते-होते अस्थि चर्मसार वृद्धा में परिणत हो जाती है । इस उपन्यास में जो समस्याएं हैं उसी में जो आकृत्रिम जीवनावेग का रूप प्रस्फुटित हुआ है उसी में इस उपन्यास का मानवीय आवेदन और साहित्यिक रस प्रवाह परिपूर्णता प्राप्त करता है ।

'उपकण्ठे कलकातार का छेड़' उपन्यास में कही हुई कहानी का परवर्ती अंश है । श्यामा की कहानी के साथ-साथ उसकी बहन कमला और उमा का विडम्बित गृहस्थ जीवन, श्याम की दो बेटियों महाश्वेता और ऐन्द्रिला के ससुराल की जीवन यात्रा इनकी भी कहानी विस्तृत रूप से वर्णित हुई है । उपन्यासकार जीवन धारा के चित्र को समग्र रूप से वैचित्र्य मण्डित करके उपस्थापित करते हैं । प्रथम उपन्यास में सभी शिशु और बालिका बड़े हो जाते हैं और अपनी अपनी चारित्रिक स्वतन्त्रता को स्पष्ट रूप से प्रतिष्ठित करने में समर्थ हो जाते हैं । इसकी जीवन समस्या भी आधुनिक काल की उपयोगी जटिलतापूर्ण हो जाती है । थोड़ा सा रोमांस का स्पर्श भी घटना तथा कहानी में संयुक्त हुआ है ।

गृहस्थ जीवन में नारी की भूमिका का सुन्दर परिचय स्वराज वन्द्योपाध्याय के 'एक छिलकन्या' (1960) में मिलता है ।

आधुनिक युग के जीवनबोद्ध की अनिर्देश्य अस्थिरता और आश्रय रहित

शून्यता कई लेखकों के पारिवारिक जीवन चित्रण में प्रतिबिम्बित हुई है । इनमें साहित्योत्कर्ष और निपुणता की दृष्टि से समरेश वसु की रचना महत्व रखती है ।

आधुनिक लेखकों में रमापदचौधुरी एक विशेष स्थान प्राप्त कर चुके हैं। इनका 'वनपलाशीर पदावली' (1962) साम्प्रतिक ग्राम्य जीवन एक नवीन रूप रेखा जाग्रत करता है । यह केवल वास्तविकता का वर्णन और घटनाओं का विवरण नहीं है आदर्शायित भाव चित्र भी नहीं है । परन्तु तीनों को मिलाकर एक सम्मिश्रण के आधार पर गठित हुआ है ।

धर्म जीवन जो अति आधुनिक बंगला उपन्यास के विषय वस्तु निर्वाचन में और भाव परिमण्डल रचना में आज भी प्रभावशाली है उसका अनेक निदर्शन मिलता है द्वारेशचन्द्र शर्माचार्य का 'भृगुजातक' (1957), स्वराजवन्द्यो पाध्याय का 'माथुर' (1957) और अवधूत का 'उद्धारण पुरेरघाट' इसी का साक्षी है ।

बंगाल की अन्तर्निहित जीर्णता का और एक निम्न स्तर आया है । देश-विभाजन और शरणार्थियों के प्रवाह के अनिवार्य आगमन, चरम अधोगति का स्वरूप निर्णय उपन्यासकारों ने किया है । क्रमवर्द्धमान विचित्रता अनेक शाखाओं में प्रवाहित होंकर आधुनिक परिप्रेक्ष्य में परिणत हो रही है । आज इसकी प्रेरणा केवल अपने देश

के प्रत्यक्ष समाज में विवर्तन में सीमित नहीं है । आज समस्त विश्व में जहाँ नवीन जीवन परीक्षा चल रही है जहाँ विज्ञान और दर्शन नूतन जीवन भाष्य रचना करने की चेष्टा कर रहा है, जहाँ पुरातन अनुभव की सीमा पार की जा चुकी है, उसी का सम्मिलित प्रभाव बंग भूमि पर निरन्तर आ रहा है । आधुनिक नवीन सृष्टि संभावना अभावनीय रूप से बढ़ गयी है । इसी के अनिवार्य फलस्वरूप उपन्यास साहित्य की कोई समाप्ति रेखा नही खींची जा सकती है । उपन्यास की संज्ञा और विचार का मानदण्ड दिन - प्रतिदिन रूपान्तरित हो रहा है । जीवन अग्नि शिखा बड़े नाना आकार की तरह समस्त बन्धन अस्वीकार करके छोटे सृष्टि से बलिष्ठ बन रहा है । मनुष्य के अन्तर्लोक के जटिल परस्पर विरोधी प्रवृत्ति समूहों का मूल कारण खोज निकालने की चेष्टा उसके पूरे मानचित्र को बदल डाल रही है । उपन्यास साहित्य आज इस रूपान्तर के सन्धि क्षण में खड़ होकर भीतर और बाहर से संशयपूर्ण दृष्टि डाल रहा है । जितने दिन मानव रहेगा । इस संशय का अस्तित्व भी उतने दिन दूर नहीं हो सकेगा ।

=======
=====
===
=

हिन्दी उपन्यासों का शिल्प विधान

धर्मवीर भारती की रचना 'गुनाहों का देवता' नाटकीय शिल्पविधि का उपन्यास है। इस उपन्यास में मनोवैज्ञानिक चित्रण की एक अन्तर्वर्ती धारा चलती रहती है । 'गुनाहों का देवता' एक दु:खान्त प्रेमकथा है । भारती का यह उपन्यास अपनी आध्यात्मिक ,मनोरम एवं करुणा युक्त प्रेमकथा के कारण प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका है । इस उपन्यास में सीमित अभिरूचि, सीमित द्रृष्टिकोण सीमित स्थान और सीमित समय का अंकन हुआ है । भारती ने इस रचना में वासना के अन्तर्द्वन्द्व को नाटकीय रूप देने का प्रयत्न किया है । हिन्दी उपन्यास में नाटकीय शिल्प विधि के रूप में 'गुनाहों का देवता' का योगदान विस्मरण करने योग्य नहीं है । आधुनिक युगचेतना के बहुस्तरीय जटिल यथार्थ को प्रेम और वासना के सन्दर्भ में नाटकीय प्रभाव के साथ संप्रेषित करने में भारती सिद्धहस्त हैं। धर्मवीर भारती ने भारतीय मध्यवर्ग के शिक्षित, सुसंस्कृत व्यक्ति की विचारणा, सिद्धान्त और यथार्थ जीवन के अन्तराल को नाटकीय शिल्प में रुपायित किया है। वर्णनात्मक

शिल्प के कथाकार की भाँति भारती आधुनिक पुरुष द्वारा नारी पर अनगिनत अत्याचारों का विवरण नहीं देते , वे एक पुरुष द्वारा तीन नारियों पर किए गये अत्याचार और क्रूरता का नाटकीय प्रभाव संप्रेषित करते हैं ।

भारती के उपन्यासों में प्रेम और विवाह जैसी शाश्वत विडम्बनाओं का चित्रांकन हुआ है । चन्दर अनेक बार सोचता है कि क्या पुरुष और नारी के सम्बन्धों का मार्ग

केवल प्रणय, विवाह और तृप्ति ही है । सुधा का कैलाश से विवाह करा देने पर वह संतुष्ट भी है और असंतुष्ट भी । वहमन में अनेकों बार विचार करता है कि उसने सुधा के व्यक्तित्व को खण्डित किया है पर साथ ही यह भी नही भूलता कि वह स्वयं निरुपाय है । जातिवाद , परम्परावाद, आदर्शवाद, उसे निराशा और कुण्ठा से नहीं बचा सकते । उपन्यासकार नाटकीय शिल्प विधि द्वारा इस रचना की एक- एक पंक्ति पर व्यंग्य करता है । 'गुनाहों का देवता' एक ऐसी प्रेम कथा है जो शुद्ध भाव-भूमि पर टिकी हुई है । कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि भारती का यह उपन्यास कथ्य की दृष्टि से तो सफल है पर शिल्प की दृष्टि से साधारण है ।

भारती का दूसरा उपन्यास ' सूरज का सातवाँ घोड़ा' शिल्प प्रधान उपन्यास है। टेकनीक की दृष्टि से यह गठा हुआ विशिष्ट उपन्यास माना जाता है । सीधी सादी खुली हुई कहानियों में परस्पर एक सधी हुई बुनावट है जो उन्हें संश्लिष्ट रूप देती है । शिल्प की सामयिकता तथा नवीनता ने इसका स्वरूप रोचक तथा मोहक बनाया है । यह उपन्यास प्रतीकात्मक शिल्पविधि की रचना है । माणिक द्वारा कही गई सात कहानियाँ मिलकर एक उपन्यास बन जाती हैं । लेखक की मौलिकता यही है कि उसने पुराने ढंग में शिल्प के माध्यम से मौलिकता की स्थापना की है । 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' का शीर्षक भी प्रतीकात्मक है । उपन्यास में शिल्प की दृष्टि से कहीं भी एकरसता या ऊब नहीं है । कहानियाँ तो अपने आप में विविध भाषी हैं ही कहानी के बाद आने वाले अनध्याय भी

विविध शिल्प रूपात्मक है ।

इस उपन्यास में क्रमबद्ध कथानक नहीं है। इसमें कथानक के नाम पर अलग-अलग अनेक कहानियों के संयोग से अक्रमबद्ध कथानक का निर्माण किया गया है। इस उपन्यास की अलग-अलग एवं स्वतंत्र कहानियाँ आपस में मिलकर एक सम्बन्ध-सूत्र में आबद्ध होती हुई एक कहानी के रूप में समाहित हो जाती है और नये तथा एक पूर्ण कथानक को जन्म देती हैं । शिल्प की यही विशेषता इस उपन्यास की उपलब्धि है । शिल्प के इस तरह के नवीन प्रयोग की सफलता सधी हुई कौशलपूर्ण लेखनी पर निर्भर है जिसमें भारती जी सफल रहे हैं । इस उपन्यास के शिल्प की सराहना सभी आलोचकों ने एक स्वर से की है। निस्सन्देह यह शिल्प है भी मौलिक । इस शिल्प की बारीकियों एवं खूबियों से युक्त यह एकदम अपने ढंग का नया प्रयोग है । "उपन्यास की कथा इस ढंग से कही गई है कि उसमें प्रवाह, आकर्षण, जिज्ञासा, मानसिक आघात प्रतिघात स्वतः आ गये हैं"।[1]

समग्र रूप से 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' प्रचीन लेख कथात्मक पद्धति का आधुनिक

---

1. 'दिशाओं का परिवेश' -सम्पादक ललित शुक्ल -' प्रेम -एक माध्यम ' रणवीर सिन्हा - पृ0 102

संस्करण है,जिसमें शिल्प का ऐसा कुशल विनियोग हुआ कि यह लघु उपन्यास भी व्यापक विषय के विभिन्न पक्षों को अपने में एकत्र कर पाने में समर्थ हो सका। इस उपन्यास की प्रयोगिक शिल्प नवीनता अपने आकर्षण के साथ विषय को भी ऊँचा उठाने में समर्थ हो सकी है ।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि शिल्पगत दृष्टिकोण से यह उपन्यास हिन्दी उपन्यास क्षेत्र में अकेला है । काल्पनिक कथाकार माणिक को इस रूप में चित्रित किया गया है कि उसके जीवन से सम्बन्धित ये कहानियाँ यथार्थ का भ्रम उत्पन्न करती हैं । शिल्प की दृष्टि से यह एक विशिष्ट प्रयोग है जिसका महत्व मात्र प्रयोग तक ही सिमटा हुआ नहीं है, जनजीवन तक फैला हुआ भी है । नेमिचन्द्र जैने के शब्दों में - 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' अपनी शिल्प गत नवीनता और ताजेपन, उन्मुक्त हास्य और व्यंग्य तथा उनके पीछे निहित निम्न मध्य वर्गीय जीवन के खोखलेपन और करूणा की अभिव्यक्ति के लिए निस्सन्देह उल्लेखनीय है।'[1]

---

1. अधूरे साक्षात्कार - नेमिचन्द्र जैन, पृ0 119.

फणीश्वर नाथ रेणु' कृत ' मैला आँचल' ने संवेदना और शिल्प के नये आयाम उद्घाटित किए । यह उपन्यास आँचलिक उपन्यासों की सृजन यात्रा का प्रारम्भ है। 'रेणु' के 'मैला आँचल' में आँचलिकता के साथ- साथ स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद भारत के ग्रामों में होने वाले परिवर्तन के सूत्रों का व्यापक धरातल पर अत्यन्त सूक्ष्मता से अंकन हुआ है । इनके उपन्यासों में समस्या तो है ही पर उसके साथ-साथ व्यक्ति का अद्भुत समन्वय करने का प्रयत्न भी दिखता है । इसी से इस उपन्यास में स्थूलता नहीं है बल्कि सूक्ष्मता की कलात्मक अभिव्यक्ति है। ' मैला आँचल' एक उत्कृष्ट रचना है । आँचलिक परिवेश के रहते हुए भी इसमें सहज व्यापकता है। इस दृष्टि से तो यह उपन्यास पुष्ट है किन्तु शिल्प की दृष्टि से कुछ बातें सोचने योग्य हैं । रेणु का उद्देश्य मेरीगंज, पूर्णिया के जन-जीवन का समग्र सजीव चित्रण है । उपन्यास में चित्रात्मक वर्णन की बहुलता है तथा कथानक भी पर्याप्त संगठित नहीं रह पाया है। सम्पूर्ण कथानक निखरा हुआ है । कोई भी दृश्य अपना स्थायी प्रभाव नहीं छोड़ता । प्रधान कथा सूत्र के साथ- साथ प्रासंगिक कथा सूत्र के विकास से यह तथ्य स्पष्ट व्यक्त होता है कि इस उपन्यास की कथा समष्टि कथा है । रेणु ने वर्णनात्मक शैली में वातावरण के यथातथ्य चित्रण को बहुत महत्व दिया है । हिन्दी में पहली बार किसी अंचल विशेष के उपेक्षित जीवन की समस्त छवि और कुरूपता, सीमा, विवशता और सम्भावना को इतनी मानवीय ममता औस सूक्ष्मता से रूप दिया गया है । रेणु ने बड़े ही संतुलित ढंग से गाँव की घुटनभरी जिन्दगी की कसमसाहट व्यक्त की है । व्यवस्थित और सुगठित कथानक ही इस पुस्तक

की एक मात्र कमजोरी है । यही कारण है कि इसके किसी भी पात्र के साथ हम अपने को तादात्म्य नहीं कर पाते । वर्णन रीति भी सुसम्बद्ध नहीं है । बिखरे हुए खण्ड चित्रों का वर्णन पढ़ते-पढ़ते प्रायः पाठक का धैर्य विचलित हो उठता है । आँचलिक वातावरण के निर्माण एवं स्थानीय रंग देने के प्रयास में लेखक ने प्रचुरता से स्थानीय बोली एवं लोकगीतों का प्रयोग किया है । 'मैला आँचल' से पूर्व किसी भी हिन्दी उपन्यास में लोक संस्कृति का इतना विस्तृत, अर्थपूर्ण और प्रभावशाली चित्रण नहीं हुआ । मेरीगंज की सामाजिक स्थिति की सूक्ष्म से सूक्ष्म सतहें आलोकित हो उठी हैं यदि पूर्णिया अंचल की राजनैतिक चेतना तथा स्थिति को 'मैला आँचल' में देखा जाय तो लगता है कि 'रेणु' ने इसे गहराई से देखा-परखा है और उसे सुन्दर अभिव्यक्ति दी है । जहाँ तक अभिव्यक्ति और सूक्ष्मातिसूक्ष्म वर्णन की ताजगी का सम्बन्ध है 'मैला आँचल' के साथ हिन्दी के कम उपन्यासों का ही नाम लिया जा सकता है । इस उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि इसमें मिथिला के निरन्तर बदलते हुए आज के एक गाँव की आत्मा की गाथा है और यह गाँव सर्वथा विशिष्ट होकर केवल मिथिला का ही नहीं जैसे उत्तर भारत का प्रत्येक गाँव है जो सदियों से जागकर अँगड़ाई ले रहा है । भारतीय देहात का मर्म इतना सरस और भाव प्रवण चित्रण हिन्दी में सम्भवतः पहले कभी नहीं हुआ । 'रेणु' का उपन्यास शिल्प भी इस उपन्यास में यथार्थवादी ही रहा है । "यह उपन्यास आज के युग की जनवादी भावना और नए औपन्यासिक मूल्यों के लिए प्रसिद्ध है । कथा का कोई

मजबूत मेरुदण्ड नहीं रहने पर भी आज का जीवन किस प्रकार रेखाओं में अंकित है, उसका शुद्ध एवं सफल अंकन इस उपन्यास में हुआ है फिर भी यह मात्र यथार्थवादी कृति से अधिक एक सफल जनवादी एवं कलात्मक कृति के साथ-साथ भविष्य के जीवन की सूचना देने वाली कृति है ।[1]

'परती: परिकथा' हिन्दी के लब्ध प्रतिष्ठित उपन्यासकार फणीश्वर नाथ'रेणु' का दूसरा आंचलिक उपन्यास है। 'परती: परिकथा' के केन्द्र में बिहार अंचल के परानपुर गाँव की समग्रता एवं मुख्यतः भूमि की समस्या है । उपन्यास की कथा 'मैला आँचल' की भाँति ही समष्टि कथा है । कथा का क्षेत्र सीमित है। उपन्यास में रेणु ने पूर्वदीप्ति पद्धति का प्रयोग किया है । 'मैला आँचल' से भी अधिक 'परती: परिकथा' में रेणु' ने लोकसंस्कृति का चित्रण किया है । परानपुर निवासियों के धार्मिक विश्वासों का भी उपन्याससकार ने विस्तृत चित्रण किया है ।'परती: परिकथा' ने हिन्दी औपन्यासिक साहित्य को कथ्य और रूप दोनों दृष्टियों से ताजगी और नवीनता प्रदान की है । 'रेणु' के सामाजिक आशय में जो भविष्यवाणी थी, उसी का यथार्थता तथा औचित्य की परख आज की जा सकती है । इस उपन्यास में रेणु समस्त भारत के मूल स्वरूप की खोज करना चाहते हैं और सामयिक

---

1. आज, साहित्य विशेषांक - 58, प्रकाशचन्द्र गुप्त पृष्ठ 13

सन्दर्भ में उत्पन्न हुए नानाविध उलझे सूत्रों को समग्रता से पकड़ने का प्रयास करते हैं । 'रेणु' वाध्य यथार्थ को मूर्त्त करते हुए मनुष्य के आन्तरिक यथार्थ को प्रकट करने में भी अपनी अन्तर्द्रृष्टि एवं मनोवैज्ञानिक सूझ-बूझ और पकड़ का परिचय देते हैं , कथानक के प्रस्तुतिकरण का ढंग कलात्मक है। उपन्यास में जहाँ एक ओर संघर्ष और अन्तर्विरोधों की श्रृंखला है वहाँ मनुष्य की उभरती हुई आत्मा भी है। लेखक में संवेदनशीलता है , कलात्मक प्रौढ़ता है। किन्तु इतने पर भी यह उपन्यास कोई नवीन दृष्टि प्रदान नहीं करता। 'मैला आँचल' में जो शिल्पगत त्रुटियाँ हैं वही इस उपन्यास में भी हैं । उपन्यास की वर्णन शैली बिखरी - बिखरी सी लगती है उसमें प्रवाह की कमी है । लगता है लेखक केवल व्यक्ति वैचित्र्य, यथार्थ सामाजिक वातावरण ही चित्रित करना चाहता है । शब्द चित्र अंकन में ही लेखक का अधिक कौशल दिखता है । यथार्थ वर्णन कला की दृष्टि से यह उपन्यास एक अभिनव प्रयोग हैं । लेखक में आँचलिक चित्रण की अभूतपूर्व क्षमता है। आँचलिक स्पर्शो के कारण ही इन उपन्यासों में एक नवीनता और ताजगी का अनुभव होता है । इन सब गुणों के होते हुए भी जहाँ तक एक सुगठित कथानक के सहज, क्रमिक एव मनोरम विकास तथा स्थायी एवं प्रभावपूर्ण चरित्र सृष्टि का सम्बन्ध है । 'रेणु' असफल रहे हैं। इनके चित्र एवं चरित्र स्थिर एवं स्थायी रूप में पाठक के सामने नही रह पाते । कुछ त्रुटियों के होते हुए भी यथार्थवादी परम्परा का यह एक उत्कृष्ट 'आँचलिक' उपन्यास है। अन्य उपन्यासों 'दीर्घतपा' कितने चौराहें' और 'जुलूस' आँचलिक समाज परक वैयक्तिक उपयास हैं ।

इन लघु उपन्यासों में रेणु ने नवीन शिल्प आयामों को उद्घाटित किया है । लघु होते हुए भी यह उपन्यास विशाल तथा शक्ति शाली उपन्यास की सम्भावनाएं समेटे हुए हैं ।

मोहन राकेश के उपन्यास 'अन्धेरे बन्द कमरे', स्वतन्त्रता के बाद के भारत में महानगरी से जुड़े नर-नारियों के जीवन, उनकी आशाएं महत्वकाक्षाएँ और फिर उनकी निराशा में आत्मपीड़न घुटन, संत्रास ऊब अकेलापन, विसंगति, छटपटाहट एवं तनाव का सफल अंकन है । दिल्ली के भीड़-भाड़ वाले जीवन में आदमी-आदमी से अपरिचित है दिल्ली का सांस्कृतिक, राजनीतिक और पारिवारिक जीवन कितना खोखला है इनका स्पष्ट चित्रण मोहन राकेश के इस उपन्यास में मिलता है । महानगर की चमक-दमक और भीड़ में मनुष्य कितना असहाय और अकेला है, मानवीय सम्बन्ध कितने तनावपूर्ण और अर्थ हैं? लेखक की दृष्टि इन तक तो पहुँच गई है लेकिन इनको चीरकर जीवनके यथार्थ की गहनाता को नहीं पा सकी है । स्त्रियों के प्रति लेखक की सहानुभूति है । मोहन राकेश नीलिमा और मधुसूदन की कथाओं में सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाएं है ।प्रतिभाहीन दम्पत्ति हरबंस और नीलिमा मध्यवर्ग के ऐसे चरित्र हैं जिनमें शिक्षा और संस्कारवश महत्वाकांक्षा का जाग्रत हो जाना स्वाभाविक है । आधुनिकता की फैली हुई पृष्ठभूमि पर प्रेम एक दुःखान्त नाटक है, जिसका हर पात्र संग-संग अभिनय करने तथा विभिन्न मुद्राओं में जीवित रहने के लिए बाध्य है । कहीं कहीं अनावश्यक विस्तार और

मधुसूदनका आदर्शवाद अवश्य खटकने वाली बातें हैं । इस उपन्यास में आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है । परिवेश वर्णन चित्रात्मक है । 'अन्धेरे बन्द कमरे' में मोहन राकेश महानगरी में अकेलेपन की उस गहरी अनुभूति को अभिव्यक्ति देना चाहते हैं जिसके मूल में मानव सम्बन्धों की अर्थहीनता है । जिसके मूल में मानव सम्बन्धों की अर्थहीनता है इससे उपन्यास एक सम्भावना बन गया है । व्यक्ति के अकेलेपन की अनुभूति मधुसूदन सुषमा, हरबंस और ठकुराइन आदि पात्रों के संवेदन के रूप में अभिव्यक्त हुई है । उल्लेखनीय है कि इस उपन्यास के सभी पात्र कलाकार हैं । हरबंस और नीलिमा का अन्तर्द्वन्द्व उपन्यास में सार्थक रूप से चित्रित हुआ है उपन्यास के सभी पात्र आधुनिकता के रंग में रंगे हुए सम्बन्धो में दरारें और बदलाव को तनावपूर्ण स्थितियों में झेलते व सहते हैं । 'अन्धेरे बन्द कमरे' में पति-पत्नी या दो मित्रों में एक दूसरे को समझ पाने का सन्दर्भ महत्वपूर्ण है । भारतीय और पाश्चात्य संस्कृति का संघर्ष उपन्यास की रेखाओं में से उभरता है । परम्परागत और आधुनिक संस्कारों के बीच का द्वन्द्व सूक्ष्मता से अंकित हुआ है । वर्तमान जीवन में मनुष्य की विभिन्न सामाजिक समस्याओं को विघटित मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में रूपायित किया है । भारतीय परिवेश पाश्चात्य आधुनिकता का अन्धाअनुकरण कर रहा है परिणामस्वरूप न तो अपने पुरातन संस्कारों से मुक्ति पा सका है और न ही आधुनिकता को पूरी तरह अपना सका है । उपन्यासों में प्रतीकों का बहुतायत से वर्णन है जिनके विषय में यह कहा जा सकता है कि वे लघु हों या प्रौढ़ कुल मिलाकर मूल कथ्य से सम्पृक्त हैं तथा वैयक्तिक

प्रतीकों की संज्ञा पाने के अधिकारी हैं । उनमें कथ्य को उभारने का सजग प्रयास मिलता है। ये उपन्यास के कलात्मक गुंफन के साथ इस तरह एकाकार हैं कि प्रवाह की सहजता में बाधक नहीं बनते । इस उपन्यास में शिल्पगत कोई नवीनता नहीं है। भाषा बहुत प्रभावशाली नहीं, बेजान सी लगती है इसीलिए कहीं-कहीं सशक्त अभिव्यक्ति असमर्थ रही है । यथार्थ यात्रा जितनी स्फीत है, उतनी गहन नहीं ।

मोहन राकेश कृत एक अन्य उपन्यास "न आने वाला कल" के भी सभी पात्र अपने चारो ओर खिंची हुई परिधि में विचरण करते रहते हैं। वे यह भी नहीं जान पाते कि आखिर वे चाहते क्या हैं? वे अपने कल को पहचानना चाहते हैं पर इसकी स्पष्ट रूप रेखा नहीं है । उपन्यास जीवन के यथार्थ से सम्बद्ध कम किताबी अधिक लगता है । इस उपन्यास में 'अन्धेरे बन्द कमरे' जैसी ऊँचाई नहीं है। मोहन राकेश के उपन्यास 'अन्तराल' में मानसिक द्वन्द्व अच्छी तरह चित्रांकित हुआ है । स्त्री-पुरुष की मनःस्थितियों का सार्थक चित्रण इस उपन्यास में हुआ है । उक्त उपन्यास में भी मोहन राकेश ने प्रतीकों का आश्रय लिया है । भाषा और कला की दृष्टि से यह उपन्यास उनके अन्य उपन्यासों से अलग स्थान रखता है । मोहन राकेश के "अन्धेरे बन्द कमरे" में समस्त त्रुटियों के बावजूद संवेदन क्षमता की जो ताजगी थी, वह क्रमशः "न आने वाला कल" और "अन्तराल" में मरती गयी । उपन्यास की जीवन्तता पर परिवेश हावी होता गया ।

राजेन्द्र यादव कृत "प्रेत बोलते हैं (संशोधित रूप "सारा आकाश") में निम्न मध्य वर्गका चित्रांकन है जो परम्परागत संस्कारों और विश्वासों को छोड़ जीवन के नूतन दृष्टिकोण को आसानी से ग्रहण नहीं कर पाता । समर इस निम्न मध्य वर्ग का प्रतिनिधि चरित्र है जो एक ओर तो आदर्शवादी और महत्वाकांक्षी है और दूसरी ओर कायर और समाजभीरू है । वह जीवन को सुखी बनाने की कल्पना करता है परन्तु सामाजिक संस्कार उसकी स्वप्निल इच्छओं को ध्वस्त कर डालते हैं। भारतीय सस्कृति का मोह, अतीत का मोह प्रेत बनकर उसकी मानवीय चेतना को कुण्ठित कर उसे जड़ बना देता है। एक शिक्षित युवक की विवशताओं और विषमताओं को प्रतीकात्मक शैली में चित्रित करने का प्रयास लेखक ने किया है । इस विचार प्रधान उपन्यास में पात्र सजीव न होकर प्रतीकात्मक बनकर रह जाते हैं । विचार प्रधान होने के कारण उपन्यास समस्यामूलक है इसलिए इसमें विविधता नहीं है । चारित्रिक स्पष्टता भी नहीं है । लेखक ने उपन्यास में नायक की मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करने के लिए नवीन मानवता अथवा प्रगतिशील मानवता की अवतारणा की है । जिसके मूल में मार्क्सवादी विचारधारा है । इस विचारधारा का प्रतिनिधि शिरीष है जो उपन्यास में नास्तिक तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रतिपादन करता है । पात्र व्यक्ति ओर व्यक्तित्व मूलक न होकर प्रतिनिधि, प्रतीक और टाइप ही रह गए हैं ।

रचनाप्रक्रिया के दौरान राजेन्द्र यादव का रचनाकार अपने सम्प्रेषण की कलात्मकता में बेहद सतर्क और चौकन्ना रहता है । परन्तु रचना अपनी परिणति की उपलब्धि में पहुँचने के प्रयास में परिवार विघटन की वस्तु स्थित को उभारने में निश्चय

ही सक्षम है । कृति अपनी उपलब्धि की पूर्णता में आशा और आस्था का संचार तो करती है लेकिन समस्या के बहुआयामी स्वरूप एवं उसके राष्ट्रीय चरित्र की समग्रता में नहीं उभर पाती । पूरी रचना में प्रतीकों और बिम्बों की भरमार होने से कथ्य उलझ कर रह जाता है । एक तो कथ्य की अनिश्चयता दूसरे शिल्प का उलझाव पाठक को उलझाए बिना नहीं रहते । परन्तु यह उपन्यास सामाजिक यथार्थ की दृष्टि से महत्वपूर्ण है ।

मोहभंग की सबसे अधिक तीव्र अनुभूति युवा उपन्यासकारों में मिलती है । और आधुनिकता बोध पर इन लेखकों को आग्रह भी सबसे अधिक है। पिछले पीढ़ी के लेखकों की भाँति इनमें पूर्वाग्रह भी कम है । यह अलग बात है कि नवीन सन्दर्भो की खोज में इन्होंने तथ्य तो एकत्रित कर लिए हैं लेकिन उनकी गहराई में जाकर मूल्य दृष्टि की स्थापना वे नहीं कर पाए । राजेन्द्र यादव का "उखड़े हुए लोग" आधुनिक चेतना का समर्थ उपन्यास है । उखड़े हुए लोग राजनीति के षड़यन्त का शिकार हैं । वे अपने परिवेश से कट गये हैं । वे विवश हैं । वे फिर से स्थापित होना चाहते हैं । वे अपने अस्तित्व की खोज में है और इस यात्रा में उन्हें यातना, यन्त्रणा, शोषण, समझौता-हर प्रकार की विडम्बना से होकर गुजरना पड़ता है । राजेन्द्र यादव का यह उपन्यास अधिक सफल उपन्यास है । नेता कहलाने वाले अनुचित साधनों से प्राप्त पैसे का जाल शिक्षित बेकार युवक - युवतियों पर किस प्रकार फेकते हैं । यही उपन्यास

मूल विषय है । यह उपन्यास युद्धोत्तर कालीन नर-नारी के बदलते बनते-बिगड़ते सम्बन्धों का चित्राकंन प्रस्तुत करता है । कथा वस्तु के काल विस्तार की दृष्टि से यह उपन्यास बहुत कम अवधि का है, परन्तु घटना विस्तार अपेक्षाकृत अधिक है । कथासूत्र के प्रारम्भ का मूल कथा से कोई सम्बन्ध नहीं है । कथानक की क्षीड़ता का कारण उपन्यास का "चरित्र प्रधान" होना है । इस उपन्यास की एक विशेषता यह है कि इसकी क्रियाओं के विस्तार के लिए केवल सात दिनों का समय लिया गया है । वातावरण के निर्माण और चरित्र चित्रण के निर्वाह के लिए भाषा पात्रोचित है । इस उपन्यास में कुछ अत्यन्त सशक्त प्रतीक मिलते है जो कथा को आगे बढ़ाते हैं तथा स्थितियों को सम्पुष्ट करते हैं । कुल मिलाकर "उखड़े हुए लोग" एक महत्वपूर्ण उपन्यास है और आधुनिक उखड़े समाज के चित्रण को लेकर इसे अत्यधिक सफलता मिली है ।

राजेन्द्र यादव के उपन्यासों में प्रगतिवादी चेतना है, समाज की विसंगतियों का चित्रण है । प्रगतिवादी विचारधारा को यादव व्यैक्तिक स्तर पर झेलते हैं तथा उनके पात्र भी अपनी व्यक्तिगत जिन्दगी में ही सनातनी और प्रगति विरोधी तत्वों के विरूद्ध संघर्ष करते हैं । इसलिए राजेन्द्र यादव की मूल पकड़ व्यक्ति और उसके परिवेश के परस्पर विरोधी संघर्ष पर ही है । यादव मूलतः व्यक्तिमन का सूक्ष्म चित्रण करने वाले सजग कथाकार हैं । 'शह और मात' की कथा वस्तु यादव के अन्य उपन्यासों की भांति व्यक्तिनिष्ठ और आत्मपरख है तथा सामाजिक सम्बन्धों का अन्तर्भाव केवल परिवेश के रूप में किया गया है।"[1] डॉ0सत्य पाल चुघ इस उपन्यास को आत्म कथात्मक या डायरी

---

1. हिन्दी उपन्यास : डॉ0 महेन्द्र चतुर्वेदी, पृष्ठ 207

शैली में लिखा गया उपन्यास मानते है । लेखक की भूमिका भी डायरी शैली में है। उन्होने स्वयं इसे 'प्रथम पुरुष डायरी में लिखी गयी कहानी' कहा है । निस्सन्देह सुजाता के व्यक्तित्व का प्रकाशन इस शैली के कारण ही हुआ है । डायरी लेखन में कही न कही आत्मविश्लेषण की प्रवृत्ति होती है कोई बुराव छिपाव नहीं होता परन्तु उपन्यास में सुजाता के कथन से स्पष्ट होता है कि वह डायरी लिखने में बहुत कुछ ऐसा है जिसे छिपा गयी है ।

परन्तु यह उपन्यास हिन्दी उपन्यास जगत में साहित्य की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है । मनुष्य की मन:स्थिति उस समय कैसी थी तथा उस मन:स्थिति का व्यक्तित्व परिवर्तन की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य - यही इस उपन्यास की विशिष्ट कथा है जो अपने में मौलिक है ।

राजेन्द्र यादव का लघु उपन्यास "कुलटा" शिल्प की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है । इस उपन्यास में ऐसी आधुनिक नारी का चित्रण लेखक ने किया है जो सड़ी - गली मान्यताओं, परम्पराओं और रूढ़ियों से संघर्ष करती है । जीवन जीने की जिसमें अदम्य लालसा है । लेखक ने आधुनिकता के परिवेश में नारी के मनोभावों का स्वाभाविक चित्रण किया है । उन्होंने इस उपन्यास में यह सिद्ध कर दिया है कि प्राचीन परम्पराएं कितनी भी प्रयत्नशील हो जायें पर मनुष्य के मनोविकारों को दबा नहीं

सकती क्योंकि यह परम्पराएं निर्जीव हो चुकी हैं । यह उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है और फ्लैश बैक पद्धति का प्रयोग किया गया है । प्रतीकों का प्रयाग अत्यन्त कुशलता के साथ किया गया है । इस उपन्यास का नारी चरित्र विलक्षण है । वह अपने सौन्दर्य के प्रति आवश्यकता से अधिक सजग है । उपन्यास का शीर्षक भी व्यंग्यात्मक है और इसी व्यंग्यात्मकता ओर प्रतीकात्मकता ने उपन्यास के शिल्प को निखार प्रदान किया है । कथोपकथन छोटे-छोटे और तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त करने वाले है। उनकी शैली में कहीं-कहीं काव्यमयता भी परिलक्षित होती है । राजेन्द्र यादव का यह उपन्यास दोहरी अर्थ व्यंजकता को अपने में समेटे हुए है तथा अपूर्व शिल्प विशिष्टताओं से युक्त है ।

राजेन्द्र यादव के "मन्त्रविद्ध" उपन्यास में एक नवीन शैली है । कथा की गति ज्वार-भाटे के बीच बढ़ती है । लेखक शिल्प प्रयोग के प्रति सजग है । इन्होंने इस उपन्यास में कथारूढ़ियां तोड़ी हैं । लेखक ने इस उपन्यास में वर्णनात्मक शिल्प विधि का प्रयोग किया है ।

"आपका बन्टी" उपन्यास बाल मनोविज्ञान की कुछ समस्याओं का स्पर्श करता है। इस उन्यास में बन्टी विशिष्ट परिस्थितियों के कारण माँ-बाप दोनों से कट जाता है। उपन्यास में तनाव की यह परिस्थिति इसे अधिक विश्वसनीय और प्रामाणिक बना

देती है । 'आपका बन्टी' में तलाक शुदा पति-पत्नी के प्रश्न को बच्चे की समस्या के बिन्दु से उठाया गया है । यह एक नया प्रश्न है । लेखिका ने बच्चे, पति और पत्नी तीनो की मानसिकता चित्रित करते हुए बच्चे के जीवन की अनिश्चितता और उसकी ट्रेजडी का एहसास उभारा है क्योंकि यह अनुभव का ही प्रभाव है कि लेखिका केन्द्र में बच्चे के होने के बावजूद पत्नी के दर्द को अधिक प्रमाणित रूप से उभार सकी है । मन्नू भण्डारी ने भावुकता के वातावरण में नारी की बेबसी और पीड़ा की तरल तस्वीर अधिक उभारी है । उसकी ऊर्जा की खुरदरी तस्वीर, कम । इसलिए इनकी भाषा में तरलता ही दिखाई पड़ती है । उपन्यास में प्रतीकों और बिम्बों का प्रयोग सर्वत्र ही दिखाई देता है । 'आपका बन्टी' के संवेदनशील बालक के माता-पिता उसकी मन:स्थिति को समझने का कतई प्रयास नहीं करते और उनमें आपस में तलाक हो जाता है । बच्चा माता-पिता के बीच बंट जाता है । उसकी कुछ समस्याएं ऐसी हैं जो माता-पिता से न जुड़ पाने की विवषता से उभरती हैं । बालक के मस्तिष्क का इतना सर्वांगपूर्ण और वास्तविक चित्रण पहली बार हिन्दी साहित्य जगत् में हुआ है । 'आपका बन्टी' बन्टी के व्यक्तित्व के अत्यधिक जटिल, कुँठित एवं उलझनपूर्ण बनते जाने की क्रमिक प्रक्रिया का कलात्मक अंकन है । मन्नू भण्डारी की कलात्मक क्षमता का वैशिष्ट्य यह है कि इस प्रक्रिया को उन्होंने अत्यन्त प्रतीतिपूर्ण ढंग से मूर्त रूप में परन्तु प्रौढ़ कलात्मक संयम के साथ प्रस्तुत किया है । इस प्रकिया को उत्तरोत्तर विकसित रूप में देखते हुए लेखिका की शिल्प कुशलता का सुखद प्रत्यय भी मिलता है ।

उपन्यास का अन्त भी पाठक के सामने एक प्रश्न छोड़ता है कि क्या बन्टी होस्टल में सुधरेगा? और यही मन्नू की सफलता है ।

परन्तु मन्नू भण्डारी के 'महाभोज' को ऐसी सफलता नहीं मिली जैसी उनके उपन्यास 'आपका बन्टी' ने प्राप्त की है । कृति का प्रवेश आज का राजनैतिक जीवन है । आज की कुर्सी राजनीति को कथा सूत्रों में आबद्ध किया गया है । देश में फैली राजनीतिक भ्रष्टता के अन्य रूपों को भी इसमें समेटने का प्रयास किया गया है । महाभोज का प्रयास बड़ा ही कमजोर तथा निराशाजनक है । मन्नू भावुक लेखिका हैं शायद विषय नया होने से उसके साथ पूरी तरह न्याय नहीं कर पायीं । हिन्दी उपन्यासों में शुद्ध राजनीतिक उपन्यासों की संख्या कम है । इस अभाव को देखते हुए मन्नू भण्डारी का 'महाभोज' एक अच्छी शुरूआत है । राजनीतिक उपन्यास की प्रथम रचना होने के कारण इसकी अपनी विशिष्टता है । 'महाभोज' में मुख्यतया बोलचाल की सरस एवं सुबोध शैली ही प्रयुक्त हुई है । उपन्यास में गंभीर एवं परिष्कृत भाषा के भी दर्शन होते हैं । परन्तु ऐसे स्थान संक्षिप्त और संख्या में कम हैं । भाषा में निजता एवं स्वाभाविकता है । अधिकांश कथा वर्णनात्मक प्रणाली द्वारा गतिशील हुई है । स्मृत्यावलोकन शैली के भी कुछ आकर्षक उदाहरण दिखाई देते हैं ।

लक्ष्मीनारायण लाल व्यक्तिवादी उपन्यासकार हैं इसलिए इनके उपन्यासों में समाज के चित्रण में व्यक्ति की प्रधानता दिखाई देती है । इनके उपन्यास 'धरती की आँखें'

एक रोमानी उपन्यास है । कथा का मूल स्रोत प्रेमकथा है । लेखक ने ग्रामीणों की दशा के चित्रण के लिए घटना बहुलता का आश्रय लिया है । लेखक ने सामन्तों के अत्याचारों को भी उपन्यास में प्रदर्शित किया है । लेखक ने अन्तर्जातीय विवाह को इस उपन्यास में सफलता दिलाई है । नायक हिन्दू है और नायिका मुसलमान । उपन्यास में कई रोमान्चकारी घटनाएं घटती हैं किन्तु अनेक मौतों तथा बलात्कारों के वर्णन के बिना ही पर्याप्त प्रभाव उत्पन्न किया जा सकता था । वातावरण चित्रण में लेखक को पर्याप्त सफलता मिली है । भाषा, शैली आदि की दृष्टि से उपन्यास में कोई विशिष्टता दृष्टिगोचर नहीं होती ।

'बया का घोंसला और साँप' लक्ष्मीनारायण लाल का लघु उपन्यास है । कथा के अन्तिम भाग को प्रारम्भ में रखकर उपन्यास शुरू किया गया है । कथा के प्रकरण विभाजन से उसमें कलात्मकता लाने का प्रयास किया गया है । उपन्यास की पृष्ठभूमि भारतीय ग्रामीण सामजिक जीवन है । इस उपन्यास में चरित्रों का महत्व सामाजिक या सामूहिक दृष्टि से ही अधिक है । कथा की गति की तीव्रता कहीं-कहीं कलात्मक दृष्टि से दोषपूर्ण लगती है । ग्रामीण जीवन का चित्रण किसी-किसी जगह बड़ा ही मार्मिक बन पड़ा है । प्रतीकात्मक प्रयोग प्रभावोत्पादक है । कहानी सरस तथा कथन का ढंग आत्मीय है । परन्तु इस उपन्यास में शिल्प की कोई नवीनता नहीं मिलती ।

'काले फूल का पौधा' एक छोटे से परिवार की कथा है । इस उपन्यास में मध्य वर्ग की विषमताओं, असन्तोष एवं ऊब का ही चित्रण है । लेखक ने इसके लिए वर्ग भेद पर आधारित अर्थव्यस्था को जिम्मेदार ठहराया है । इस उपन्यास की विषय वस्तु नगर से सम्बन्धित है । उपन्यास समस्या प्रधान है और इन्हीं समस्याओं पर व्यावहारिक दृष्टिकोण से प्रकाश डालता है । कथानक प्रासंगिक रूप से समाविष्ट हुए वर्णनात्मक सूत्रों के बोध से मुक्त है । कथानक में सरल स्वाभाविकता आरम्भ से अन्त तक मिलती है और इसीलिए कथानक की गुत्थियाँ और उलझाव उपन्यास में बिल्कुल नहीं मिलते कथानक का प्रसार खण्डों के अन्तर्गत किया गया है । खण्ड विभाजन के आधार पर कथानक का निर्धारण करने में कुछ व्यावहारिक कठिनाइयाँ अवश्य आती हैं किन्तु इसकी प्रभावात्मकता बढ़ जाती है । इस तरह की खण्ड प्रणाली का निखरा हुआ रूप 'नदी के द्वीप' में मिलता है । उपन्यास में वातावरण उपस्थित करने में लाल सफलता नहीं प्राप्त कर सके हैं । भाषा शैली की दृष्टि से यह उपन्यास किंचित परिमार्जित है किन्तु कहीं-कहीं विच्छिन्न शब्दों से प्रभाव सृष्टि का प्रयास सर्वथा विफल रहा है । यह उपन्यास लेखक को दूसरे उपन्यासों 'धरती की आँखे' तथा 'बया का घोंसला और साँप' से भिन्न है । इस अर्थ में कि लेखक ने इस कृति में छायावादी स्वच्छन्दता से ऊपर उठकर संवेदनशील यथार्थ का चित्रण करने का प्रयत्न किया है । 'लघु मानव' के उदय का कारण केवल लेखक की मूल्य दृष्टि का अभाव ही नहीं बल्कि मनुष्य को एक सीमित बौद्धिक परिवेश में देखने का परिणाम भी है । अपनी रचना में निपुणता

और संवेदनशीलता के होते हुए भी लक्ष्मीनारायण लाल इस उपन्यास में उस स्तर को नहीं छू पाते जहाँ एक महत्वपूर्ण रचना महान कृति बन जाती है ।

'अन्धा कुआँ' डॉ0 लक्ष्मीनारायण लाल का मुख्यतः ग्रामीण जीवन पर आधरित उपन्यास है । कथानक की पृष्ठभूमि भारतीय ग्रामों का सामाजिक जीवन है । प्रधान कथासूत्र का सम्बन्ध एक परिवार से है । जिसमें पहले तीन-चार पात्र रहते हैं बाद में एक जेठानी सौत के रूप में आती है जो परिस्थितिवश वहाँ से भागने पर विवश होती है। ग्रामीण परिवारों की पारस्परिक कलह, ईर्ष्या द्वेष, नाटकीय यन्त्रणाएं आदि घटनाएँ इस उपन्यास के कथानक निर्माण का आधार हैं ।

'बड़ी चम्पा छोटी चम्पा' लक्ष्मीनारायण लाल का लघु उपन्यास है । इसमें वेश्या जीवन की समस्या को मार्मिकता से लेखक ने चित्रित किया है । लेखक का कहना है कि किसी समस्या के निराकरण केलिए मूर्त योजना का होना आवश्यक है । व्यक्ति का परिवर्तन ही समाज का परिवर्तन कर सकता है और इसके लिए परम्परागत धारणाओं और विश्वासों का अन्त होना जरूरी है । सरकारी आदेश के फलस्वरूप वेश्याएं वेश्यालय छोड़ तो देती हैं पर समाज भी उन्हें नहीं स्वीकारता । बड़ी चम्पा विवाह करने के बाद भी सुखी नहीं होती और छोटी चम्पा विवाह न करके संघर्ष ही करती रह जाती है । लेखिका ने इन दोनों चरित्रों के चित्रण के माध्यम से सामाजिक

विसंगतियों को बहुत अच्छी तरह उभारा है । लेखक के अनुसार नैतिक उन्नति ही समाज का उद्धार कर सकती है अन्य बाहरी प्रयास नहीं ।

निर्मल वर्मा ने अपने लघु उपन्यास 'वे दिन' में उपन्यास के परम्परागत प्रेम और ढाँचे को तोड़ने का प्रयत्न किया गया है । सीमित कालावधि में घटने वाली घटनाओं की संगति में उभरने वाले अतीत का औपन्यासिक संयोजन कलात्मक संयम और सादगी से इस उपन्यास में कियागया है । लेखक ने अतीत के उन्हीं प्रसंगों की ओर संकेत किया है जो संवेदना को गहराते हैं या चरित्रों की मौजूदा हालत में प्रासंगिक हैं । ऐसे प्रसंगों को लेखक ने कौशल पूर्वक रचना में गूँथा है । कथा का जैसा संयोजन और सन्तुलन इस उपन्यास में है वह इसे परम्परागत उपन्यास से अलग करता है । इनका यह लघु उपन्यास संवेदनशीलता तथा कथन शैली दोनों दृष्टियों से लघु उपन्यास क्षेत्र में सर्वथा नवीन, मौलिक तथा महत्वपूर्ण प्रयोग है । निर्मल वर्मा की कहानियों की तरह इसमें भी कथा तत्व का प्रायः अभाव सा है । इस उपन्यास का कथा विधान ही नहीं, चरित्र विधान भी परम्परागत उपन्यासों से भिन्न है । चरित्र सूक्ष्म और जटिल है । हर चरित्र स्वयं में एक अलग अनुभव वृन्त समेटे हुए है । सम्पूर्ण कथा युद्ध के बाद के यूरोप के परिवेश में चलती है । उपन्यास के अधिकांश विदेशी पात्र ऐसे हैं जिन्होंने युद्ध की विभीषिका को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में झेला या भोगा है । सम्पूर्ण उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है । लेखक आरम्भ से अन्त तक

स्वाभाविकता बनाए रखने में सफल रहा है । उपन्यास की वर्णन शैली डायरी शैली से सामीप्य स्थापित करती चलती है ।

'वे दिन' के शिल्प की सबसे बड़ी विशेषता है उसकी भाषा और शैली जो बहुत ही सहज और काव्यात्मक है । कथोपकथन बहुत छोटे-छोटे हैं । शैली अधिकतर सांकेतिक है । वाक्ययोजना और शैली का नयापन निर्मल वर्माकी प्रयोगशीलता का आभास देता है । 'वे दिन' की भाषा निर्मल की कहानियों जैसी सूक्ष्मता और सरल सीधी रेखाओं से हलके-हलके प्रभाव उत्पन्न करने में समर्थ हैं । अतः भाषा शिल्प की दृष्टि से ताजगी होने पर भी निर्मलवर्मा जीवन के प्रति आस्था की नितान्त उपेक्षा कर गए हैं । इस उपन्यास में व्यक्ति की स्वतन्त्रता अनेक स्थलों पर उपहासास्पद बन गई है । परन्तु एक नई संवेदना को कलात्मक अभिव्यक्ति देने में 'वे दिन' निश्चय ही सफलतम प्रयोग है ।

'लालटीन की छत', 'अकेलेपन के वे द्वीप' की कथा बचपन और यौवन की दहलीज पर खड़ी एक लड़की की कथा है । इस लड़की की आन्तरिक मनोदशाओं का अतिसूक्ष्म रेखांकन लेखक ने इस उपन्यास में किया है। 'लालटिन की छत'में निर्मल उस शिखर बिन्दु पर खड़े हैं जहाँ पहुँचना कल्पनाशक्ति से युक्त पाठक के लिए कुछ कठिन है, इनके उपन्यासों को सांस्कृतिक रूचि वाले ही पढ़ सकते हैं। जो केवल समय व्यतीत करने के लिए पढ़ते हैं उनके लिए

यह लाभकारी नहीं काया (लड़की का नाम) अपने अकेलेपन को किसी के साथ बाँट नहीं पाती। 'लालटीन की छत' में संवेदनशील पाठक के सामने जिन्दगी के अकेलेपन का भयावह सर्व-समावेशक रूप ही खड़ा किया गया है । प्रकृति के हर बदलते रूप को निर्मल वर्मा ने मूर्त बना दिया है । हर छोटी चीज शब्दोंके माध्यम से व्यक्तित्व धारण कर लेती है जो पाठक के ऊब का कारण बनती है । इस उपन्यास के पात्र जबरदस्त रूप में आत्म केन्द्रित हैं । अतः ये पात्र निष्क्रिय से हैं परन्तु भीतर से अति चौकन्ने, सतर्क और हर क्षण खतरे की आशंका से ग्रस्त । लेखक ने इतनी निष्पापता इन पर थोपी है कि ये अविश्वसनीय से लगने लगते हैं । चरित्र के लिए जो दृढ़ता अपेक्षित होती है वह इनमें अंश भर भी नहीं । पाठकों के प्रति अत्यधिक निर्ममता . निर्मल वर्मा की रचनाओं के प्रति उदासीनता उत्पन्न करती है ।

श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास 'राग दरबारी' में आधुनिकता का बोध एक सर्वथा भिन्न धरातल और नए अंदाज में है । इसमें एक पैनी व्यंग्य दृष्टि के जरिये सामाजिक स्थितियों की फूहड़ता को खोल कर सामने रख दिया गया है । यह उपन्यास अपने पूरे विन्यास में - वस्तु, अन्दाज, मुहावरे और भाषा में कला सम्बन्धी मान्यताओं के विरूद्ध खड़ा दिखता है । अपने रुप - बन्ध में कथात्मक अनुभवों की अनन्त व्यंग्यात्मक छवियों के माध्यम से नगर से कुछ दूर बसे हुए गाँव शिवापालगंज की कथा कहता है ।

'रागदरबारी' की कथा कोई सिलसिलेवार कथा नहीं है । लेखक ने अपनी सूक्ष्म और सशक्त हास्य व्यंग्यपूर्ण शैली से शिवपालगंज के समस्त जीव तन्तुओं को विविध कोणों से पकड़ने का प्रयत्न किया है । इस प्रयत्न में यथार्थ के प्रति लेखक का बड़ा ही निर्मम रवैया रहा है । गाँव के क्रूर यथार्थ को लेखक ने निर्मम निस्संगता के साथ देखा है। सम्पूर्ण उपन्यास में व्यवस्था के प्रत्येक जोड़ और प्रत्येक अंग पर व्यंग्य है । 'रागदरबारी' का व्यंग्य विधान वस्तु और शिल्प दोनों दृष्टियों से मूल्यवान है । 'राग दरबारी' का लेखक एक ही साथ कई-कई विसंगतियों को गूँथता चलता है और इस प्रकार प्रसंग को आहत या खण्डित किए बिना अवान्तर प्रसंगों को सहज भाव से कथा में जोड़ देता है । इस तरह लेखक अनेक कथाओं और प्रसंगों की अवतारणा किए बिना ही उसके प्रभाव को व्यंजित कर देता है।'[1]

'रागदरबारी' में शिवपालगंज की सांस्थानिक स्थिति अपनी आड़ी - तिरछी रेखाओं में उभरकर वहाँ के परिवेश की यथार्थवादी पहचान प्रस्तुत करती है । श्रीलाल शुक्ल के इस उपन्यास की भाषा बड़ी पैनी और व्यंग्यात्मक है । पाठक लेखक के उबाऊ प्रसंगों, यथार्थ के सारहीन विवरणों को भी रोचकता के साथ उस बहाव में पढ़ जाता है । इस उपन्यास की औपन्यासिक संरचना में बिम्बों, प्रतीकों और रंगों का रचाव भी थोड़ा अलग ही दिखलाई पड़ता है ।

---

1. डॉ0 रामदरश मिश्र : 'आजकल' मासिक अगस्त 1972, पृष्ठ 8

'रागदरबारी' में कसी नए शिल्प साधन से लाभ नहीं उठाया गया है । इसमें वही पुरानी वर्णन पद्धति और टीका पद्धति प्रयुक्त हुई है । पर व्यंग्यात्मक बुनावट के कारण औपन्यासिक संवेदना और शिल्प नए रूप में प्रकाशित हो उठे हैं । समाज में चतुर्दिक फैली हुई अनैतिकता को अनावृत्त करना ही 'रागदरबारी' के लेखक का मुख्य ध्येय है । यह उपन्यास भारतीय स्वतन्त्र्योत्तर जीवन के चारित्रिक ह्रास तथा जीवन के विभिन्न सदोष अंगो के चित्रणके माध्यम से आत्म साक्षात्कार कराता है, यही उसकी महती उपलब्धि है ।

शिवप्रसाद सिंह के उपन्यास 'अलग-अलग वैतरणी' में आधुनिकता के भाव-बोध का प्रामाणिक रूप प्रस्तुत हुआ है । इसमें नए पुराने मूल्यों, नई पुरानी पीढ़ियों भिन्न-भिन्न वर्गों, जातियों की टकराहट में समस्त मूल्य समाप्त हो जाते हैं प्रत्येक व्यक्ति अपनी - अपनी वैतरणी में घिर जाता है । यह अलगाव और टूटन कई स्तरों पर घटित होते हैं - वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक और समूचे गाँव के स्तर पर 'अलग-अलग वैतरणी' गाँव के यथार्थ को एक दर्द के साथ देखता है । इस उपन्यास की कथा यात्रा करैता ग्राम में देवी धाम पर होने वाले सालाना रामनवमी के मेले से प्रारम्भ होती हैं । लोक-जीवन की विविध छवियों को लेखक ने फोटोग्राफिक शैली में प्रस्तुत किया है । शिवप्रसाद सिंह ने गाँव का जीवन अपनी आँखों से देखा है, वहाँ की परम्पराओं और रूढ़ियों का अनुभव किया है; विभिन्न जातियों, वर्णों और वर्गों के

स्त्री-पुरूषों की गहरी पहचान उन्हें है और उनके सुख-दुःख, हास विलास, व्यथा-वेदना को पर्याप्त सहानुभूति भी वे दे सके हैं ।

'अलग-अलग वैतरणी' में आंचलिकता साध्य के रूप में नहीं साधन के रूप में प्रयुक्त हुई है । इस उपन्यास का विस्तृत एवं व्यापक परिवेश तथा फलक इसके आँचलिक होने से बाधक है । करैता गाँव की समस्या किसी - एक गाँव की समस्या नहीं बल्कि सम्पूर्ण उत्तर भारत के गाँवों की कथा है । पात्रों के चरित्र-चित्रण में भी लेखक ने ऐसा कुछ नहीं किया है कि वे क्षेत्र विशेष के पात्र प्रतीत हों सभी पात्र अपनी अच्छाईयों और बुराइयों के साथ चित्रित हुए हैं । सम्पूर्ण उपन्यास मनुष्य के किसी न किसी रूप में निर्वासन की करूण कहानी बताता है । उपन्यास का समस्त वातावरण अकाल, सूखा और चिलचिलाती धूप से भरा पड़ा है । यहाँ के मेले, त्योहार, पंचायत आदि अपनी जीवन्तता खोते जा रहे हैं । शिवप्रसादसिंह का यह उपन्यास अपने भारी भरकम स्वरूप में अनावश्यक प्रसंगों का विसतार भी लिए हुए है । शिवप्रसाद सिंह की भाषा को देखकर आंचलिकता का भ्रम हो सकता है । करैता के लोग ग्राम्य भाषा का प्रयोग करते हैं यदि शिवप्रसाद सिंह इस तरह की भाषा प्रयुक्त न करते तो स्वाभाविकता न आ पाती । इस तरह के प्रयोग से ही पात्रों में निखार और स्वाभाविकता का समावेश हुआ है ।

शिल्प विधि की दृष्टि से 'अलग-अलग वैतरणी' में कोई एक निश्चित शिल्प विधि नहीं प्रयुक्त की गई है । इसमें कई शिल्प विधियों का सम्मिश्रण है । पात्रों के मानसिक व्यापारोंको पूर्वदीप्ति पद्धति के माध्यम से दिखाने का प्रयास कियागया है । समीक्षक इनकी संरचना के विषय में इसकी बुनावट में शिथिलता, घटना संघटन और विन्यास में अनावश्यक अधिक फैलाव की बात कहते हैं । परन्तु अनेक कमियों के बावजूद एक महत्वपूर्ण ग्राम्य जीवन की गाथा के रूप में हिन्दी साहित्य में 'अलग-अलग वैतरणी' का नाम निस्सन्देह गौरव के साथ लिया जा सकता है ।

भारत विभाजन की मानवीय व्यथा में डूबी और असंख्य लोगों के रक्त में डूबी हुई दुर्घटनाओं पर बहुत कुछ लेखकों की लेखनी द्वारा रचित हुआ है । किन्तु भीष्म साहनी के 'तमस' उपन्यास से यह स्पष्ट होता है कि भारत-विभाजन पर आधारित कथा की सर्जनात्मक संभावनाएं चुकी नहीं है । 'तमस' में लेखक की अपने कथ्य के प्रति गहरी घनिष्ठता है । लेखेक ने अत्यन्त बारीकी से स्थितियों और चरित्रों का सृजन किया है । ऐसा लगता है कि भारत विभाजन की वह अमानवीय घटना नेत्रों के समक्ष घटित हो रही है । यह "पंजाब के परिवेश पर आधारित उपन्यास-विभाजन के समय की सामाजिक मनःस्थिति को हमारे सामने लाता है । इसमें हिन्दू मुस्लिम और सिक्ख समुदायों का अध्ययन करके उस मानसिकता को सामने लाने का प्रयास किया गया है, जो

भारत विभाजन के लिए जिम्मेदार थी।"[1] विभाजन के पहले साम्प्रदायिक वैमनस्य की भावना कैसे उभरी तथा इसके पीछे कौन से प्रेरक तत्व थे इसका जीवन्त चित्र 'तमस' में उपलब्ध है ।

'तमस' में दो खण्ड हैं । एक में शहर है और दूसरे में गाँव - अनेक गाँव और कस्बे भी । अंत के कुछ पृष्ठों में कथास्थल फिर शहर बनता है । परन्तु तब तक गाँव अपने आतंक को भोगकर शहर के शरणार्थी कैंप में आ सिमटा है । 'तमस' में अनेक पात्र हैं किन्तु कोई केन्द्रीय पात्र नहीं है । उपन्यास में ब्रिटिश हुकूमत के पक्ष को उजागर किया है । स्वतंत्रता और साम्प्रदायिकता के प्रति लेखक ने सामान्य जनता की प्रतिक्रिया को उद्घाटित किया है । उपन्यास में गति बहुत ही धीमी और सपाटता अधिक है । शिल्प के जिस माध्यम को लेकर भीष्म साहनी ने 'तमस' की रचनाकी है उसमें उन्होंने अपने सर्वगामी और सर्वदृष्टा होने की काफी गुंजाइश रख ली है पर प्रत्येक लेखक अपने अनुभवज्ञान, वातावरण, संस्कारआदि से लेखकीय कैमरे की सीमा को निर्धारित करता है इसीलिए शहर में होने वाली घटनाएं, प्रतिक्रियाएं और चर्चाएं आदि लेखक की हिन्दू नजर से दिखाई देती हैं । चन्द्रकान्त बादिवडेकर के शब्दों में, "परिस्थितियों के दबाव में सूखते जाने वाले स्नेह सूत्रों और टूटते जाने वाले मूल्यों एवं

---

1. हिन्दी उपन्यास : सामाजिक चेतना, डॉ0 कुँवर पाल सिंह, पृष्ठ 208.

आदर्श के कारण उत्पन्न होने वाला दर्द भीष्म साहनी ने उत्कट रूप में व्यक्त किया है।'[1]

'कड़ियाँ' भीष्मसाहनी कृत पूजा-पाठ में विश्वास रखने वाली पति सेवा करने वाली धर्मपरायण नारी की कथा है जो पति से अधिक पुत्र में दिलचस्पी रखती है । उसका पति दाम्पत्य सुख की उष्मा न मिलने के कारण एक परस्त्री के सम्पर्क में आता है जिससे परिवार की कड़ियाँ विघटित होने लगती हैं । पुरुष और नारी के मनोवैज्ञानिक धरातल परिस्थितियों और पात्रों को लेखक ने यथार्थवादी दृष्टि से पहचाना है । लेखक ने एक ओर प्रमिला के संस्कार, आर्थिक असहायता आदि के कारण उत्पन्न लाचारी, पीड़ा और विडम्बना का चित्र अंकित किया है और दूसरी ओर उसके अन्तर से उठती हुई स्वालम्बिनी बनने के लिए संघर्ष करती हुई नयी नारी को पहचाना है । यहीं पर उपन्यास एक नवीन अर्थवन्ता प्राप्त कर लेता है । कथा के नवीन प्रयोगों के प्रति यह उपन्यास सचेत देखाई देता है। सम्पूर्ण उपन्यास में भीष्म साहनी की सर्जना की सादगी और पारदर्शिता दिखाई देती है । कथा शैली निरन्तर प्रवाहित होती रहती है।इस उपन्यास में भीष्म साहिनी का कथाकार व्यक्तित्व सभी तरह से प्रतिफलित है। यह उपन्यास भले ही विशिष्ट न हो पर रचनात्मक धरातल पर यह एक अत्यन्त सार्थक कृति अवश्य है।

---

1. उपन्यास : स्थिति और गति, चन्द्रकान्त वादिवडेकर पृष्ठ 398.

"एक सड़क सत्तावन गलियाँ" कमलेश्वर का लघु उपन्यास है । जो एक कस्बे की जिन्दगी के अनेक स्तरों को बड़ी प्रामाणिकता और सवेंदना के साथ उभारता है। कमलेश्वर कस्बे के जीवन के बहुत संवेदनशील और सचेत द्रष्टा हैं । ये उस जीवन की अनेक छोटी बड़ी, भली-बुरी, सामाजिक, राजनीतिक और पारिवारिक स्थितियों को गहराई से पहचानते हैं और उनकी समाजवादी द्रष्टि सारे अनुभवों को एक प्रगतिवादी अन्विति प्रदान करती है । इस प्रथम लघु उपन्यास ने ही कमलेश्वर को प्रथम पंक्ति के उपन्यासकारों में लाकर खड़ा कर दिया है । इसकी प्रथम विशेषता यह है कि यह लघु उपन्यास जरूर है परन्तु इसका विस्तार काफी बड़ा है . और गहराई तो इतनी है कि उसकी थाह पाना मुश्किल है । इस उपन्यास की दूसरी विशेषता यह है कि इसमें पात्रों की संख्या अधिक है तथा उन सभी पात्रों के विषय में कुछ न कुछ प्रामाणिक जानकारी दी गई है। फिर भी पढ़ते समय कोई उलझाव नहीं लगता ।

सामाजिक चिन्तन के साथ-साथ इसमें कोमल व कठोर भावों का सुन्दर अंकन हुआ है । कथ्य एकदम नवीन है जो कथा को अनुकूल रूप दे सका है । शैली विवरणात्मक है पर शैल्पिक गठन अत्यन्त प्रभावी है । भाषा की द्रष्टि से भी 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' एक समर्थ उपन्यास है। संवाद रचना में लेखक की कुशलता परिलक्षित होती है ।

'डाक बंगला' उपन्यास में कमलेश्वर ने दीप्ति पद्धति का प्रयोग किया है । 'इरा' नामक युवती की आत्म बीती को आत्म कथात्मक शैली में बहुत ही प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया है । नारी जीवन की तृषित और कष्टदायक अनुभूतियों की 'डाक बंगला' अपने आप में एक उपलब्धि है । इस उपन्यास की कथा एक साथ दो रास्तों पर चलती है । 'डाक बंगला' में आर्थिक समस्या दूसरी समस्याओं का आधार लेकर उद्घाटित हुई है । उपन्यास में अनेक ऐसे स्थल हैं जहाँ जीवन की गहन अनुभूतियाँ परिलक्षित होती हैं । 'पात्रों के अन्तस्व का विश्लेषण कर उनके मानस का सूक्ष्म विवेचन करने एवं उनके व्यक्तित्व को प्रकाशित करने में कमलेश्वर सफल रहे हैं।'[1] इस उपन्यास में नारी जीवन की करूण विडम्बना उद्घाटित हुई है । इस उपन्यास का विस्तार कथ्य की अनिवार्य मज़बूरी का नतीजा नहीं लगता । बल्कि कथावस्तु को विविधता देने की इच्छा का परिणाम लगता है । वर्णनात्मकता, फ्लैश बैक, स्थान वैविध्य आदि के कारण कथ्य के अनुरूप कथानक की अनिवति सध नहीं पाई है । इसीलिए यह कृति एक गठे हुए उपन्यास का प्रभाव नहीं छोड़ती ।

'तीसरा आदमी' नामक लघु उपन्यास सहज शैलीमें लिखा हुआ उपन्यास है । पति-पत्नी के बीच किसी 'तीसरे आदमी' के आने से मध्य वर्गीय दाम्पत्य में आपसी सम्बन्धों में एक संघर्ष निर्मित होता है । इसका प्रभावी चित्रण इस उपन्यास में किया गया है ।

---

1. डॉ0 सुरेश सिन्हा - हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास, पृष्ठ 558.

यह उपन्यास प्रथम पुरुष की शैली में लिखा गया है । दिल्ली जैसे विशाल नगर में जीवन के टूटते और बिखरते मूल्यों को कमलेश्वर ने बड़े ही सुन्दर ढंग से प्रस्तुत कियाहै। आत्मकथात्मक शैली और सांकेतिक भाषा में लिखा हुआ यह लघु उपन्यास अपनी सम्वेदनशीलता के कारण एक उत्कृष्ट लघु उपन्यास है ।

देश के विभाजन को लेकर लिखा गया कमलेश्वर का उपन्यास 'लौटे हुए मुसाफिर' बँटवारे की भीषणता तथा खून - खराबे को यथार्थ रूप में चित्रित करता है । देश विभाजन की धटना के माध्यम से लेखक ने मानवीय मूल्यों की स्थापना की है । 'लौटे हुए मुसाफिर' में कथ्य भूतकाल के बिन्दु पर उद्घाटित हुआ है । उपन्यास में पात्रों की संख्या अधिक है । उपन्यास में घटित होने वाली घटनाएँ चरित्रों के गुणों को उद्घाटित करती हैं। 'लौटे हुए मुसाफिर' विस्तृत होने के बावजूद उपन्यास के स्तर को प्राप्त नहीं कर सका। भाषा की द्रृष्टि से यह एक अत्यन्त संवेदनशील एवं सांकेतिक उपन्यास है। इसमें कमलेश्वर ने आम आदमी की भाषा का प्रयोग किया है। इस उपन्यास में वर्णनात्मकता कम है तथा शिल्प की दृष्टि से यह अत्यन्त गठा हुआ है ।

'समुद्र में खोया हुआ आदमी' उपन्यास में लेखक ने शहरी जीवन के विखराव और टूटन को अभिव्यक्त किया है । किसी भी देश की सामान्य जनता की आंकाक्षाओं

का केन्द्र आर्थिक सम्भावनाओं में निहित होता है । स्वतन्त्रता के पश्चात् जिस आर्थिक सन्तुलन की आशा थी, वह स्थापित नहीं हो सका । भारत के मध्यवर्गीय परिवारों का संकट बिन्दु यहीं पर जन्म लेता है । इस उपन्यास में आर्थिक संकट के मारे हुए मध्यवर्गीय परिवार के टूटने की प्रक्रिया का वर्णन है । "'समुद्र में खोया हुआ आदमी' में कमलेश्वर ने घर को 'जहाज' की संज्ञा से अभिहित किया है और इस चित्रण में उनकी भाषा बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है जो समूची स्थिति को प्रबल कर देती है । उसमें सांकेतिकता, रूपक, धार्मिकता, प्रतीकात्मकता आदि गुण सहज ही मिल जाते हैं।"[1] लेखक ने निम्न मध्यवर्गीय समाज के आर्थिक, सामाजिक तथा वैयक्तिक जीवन का सजीव चित्रण किया है । चरित्र चित्रण स्वाभाविक तथा यथार्थवादी है । शैल्पिक दृष्टि से उपन्यास अधिक गठित प्रतीत होता है ।

व्यक्तिगत और सामाजिक दो भिन्न स्तरों पर एक साथ 'काली आँधी' लघु उपन्यास का कथाचक्र चलता है । यह एक ओर असफल दाम्पत्य की करूण कहानी लगती है तो दूसरी ओर सम्पूर्ण देश में व्याप्त छल-कपट और षड्यन्त्र की करूण कहानी । इस रचना के हर पात्र में किसी न किसी प्रकार का प्रतीक है । उपन्यास का कथ्य किसी सीमित युग से सम्बन्धित न होकर सर्वकालिक बन गया है । कमलेश्वर की अत्यन्त

---

1. कष्ण कुरडिया - कमलेश्वर , पृष्ठ 217.

सहज और स्वाभाविक भाषा है। शैली एवं शिल्प की दृष्टि से यह रचना निस्सन्देह प्रशंसनीय है । कम से कम शब्दों में सम्पूर्ण परिवेश को प्रस्तुत करने का प्रयास उनकी रचनाओं का सबसे बड़ा वैशिष्ट्य है ।

'आगामी अतीत' में असफल सम्बन्धों की परिणति का मार्मिक चित्रण है । आज की पूँजीवादी सामाजिक व्यवस्था में गलत तरीकों से किस प्रकार सफलता मिलती है इसका चित्रण उक्त उपन्यास में हुआ है । कमलेश्वर के उपन्यासों की कथाभूमि जीवन के यथार्थ को अपने वास्तविक रूप में चित्रित करती हैं । उनकी पटकथा भूमि स्थितियों और पात्रों के माध्यम से विश्वसनीय लगती है, कहीं भी बनावटी व आरोपित नहीं लगती। इस उपन्यास में कस्बे की 'वेश्याओं की जिन्दगी' को अत्यन्त सूक्ष्मता एवं स्वाभाविकता से अंकित किया गया है ।

कमलेश्वर के उपन्यासों की भाषा का अपना मुहावरा है और अपनी अलग पहचान है । जिस मानवीय जीवन का चित्र कमलेश्वर प्रस्तुत करते हैं उसमें पाठक स्वयं को महसूस करता है । यही लेखक के उपन्यासों की निजी विशेषता है ।

लेखिका ने मित्रों के रूप में एक निर्भीक, दृढ़ वाचाल किन्तु हृदय से कोमल भारतीय नारी का चरित्र निर्माण अपने उपन्यास 'मित्रो मरजानी' में किया है । हिन्दी

साहित्य में यह अपने ढंग का अकेला चरित्र है। उपन्यास का सम्पूर्ण कथानक 'मित्रो' के आस पास ही घूमता है। 'मित्रोमरजानी' व्यक्तित्वपरक उपन्यास है। इस रचना की सबसे बड़ी विशेषता इसकी भाषा एवं इसका नवीन शिल्प है । भाषा के अपने मौलिक प्रस्तुतिकरण से साधारण कथ्य भी पाठक को भीतर तक स्पर्श करता है । यदि कहा जाय कि यह रचना की सबसे बड़ी उपलब्धि है तो वह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा । 'मित्रो मरजानी' तीव्रगामी कथानक, चुटीले मर्मस्पर्शी कथोपकथनों तथा भाषा की रवानगी के कारण यह उपन्यास हिन्दी के लघु उपन्यासों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है ।

'डार से बिछुड़ी' उपन्यास में भी सोबती ने अपने उपन्यास 'मित्रों मरजानी' की तरह पारिवारिक परिवेश में नारी हृदय की अतल भाव-वीथियों का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सफल विश्लेषण किया है । 'पाशो' इस उपन्यास का प्रमुख चरित्र है जिसे लेखिका ने बड़े ही सुन्दर ढंग से संवारा है । लेखिका के चित्रण में सहजता और प्रभावकारिता है। कृष्णा सोबती की भाषा में खनक और करारापन है, उनका अपना तेवर और मुहावरा है। इनकी कला और शिल्प में साफ सुथरापन है जिसके कारण प्रत्येक चरित्र हृदय के अत्यन्त निकट लगते हैं । लेखिका ने कथ्य को संवेदनात्मक सार पर प्रस्तुत किया है। लेखिका ने इस उपन्यास को वर्णनात्मकता और वातावरण से दूर ही रखा है और यही इसकी विशेषता बन पड़ी है ।

'रूकोगी नहीं ...... राधिका' उपन्यास में उषा प्रियवंदा ने विदेश से लौटी एक युवती राधिका की अपने अस्तित्व के लिए छटपटाहट का मार्मिक चित्रांकन किया है । स्त्री स्वतन्त्र निर्णय लेने की शक्ति रखने के बावजूद अजीब बेबसी और सामाजिक घिराव में अपने को बन्द पाती है। उक्त उपन्यास में इसका बहुत ही सुन्दर चित्रण हुआ है । उपन्यास के सभी चरित्र स्पष्ट, निश्चित और दुविधाहीन हैं । संवाद अत्यन्त संक्षिप्त और सधे हुए हैं । भाषा, व्यक्ति, चरित्र वातावरण आदि के अनुकूल है । वातावरण और परिवेश अपने पूरे विस्तार और पूरी बारीकियों के साथ चित्रित हुआ है । यह उपन्यास आज की भारतीय नारी की दुविधा और उसकी आत्मा की छटपटाहट को उभारने में सफल है ।

बंगला उपन्यासों का शिल्प विधान

बंकिम चन्द्र के सामाजिक और पारिवारिक उपन्यासों में 'विषवृक्ष' (1873), 'इन्दिरा (1873), 'रजनी' (1877) और 'कृष्णकान्तेर विल' (1878), यह चार उपन्यास मुख्य है । बंकिम के सामाजिक उपन्यासों में भी रोमांस की प्रचुरता सहज ही दृष्टिगोचर होती है । 'रजनी' में अतिप्राकृत और असाधारण की अवतारणा हुई है । 'वृषवृक्ष' में भी एक सांकेतिकता का आभास मिलता है । 'इंदिरा' और 'कृष्णकान्तेर उइल' इस प्रभाव से लगभग मुक्त हैं । 'विषवृक्ष' और 'कृष्णकान्तेर उइल' इन दोनों को यथार्थ रूप से परिपूर्ण उपन्यास का गौरव मिलता है । समस्या और समस्या विश्लेषण इन उपन्यासों में वास्तविकता का आधार बनाता है । इसलिए कला के क्रम विकास की दृष्टि से इन दोनों की मर्यादा अतुलनीय है ।

'इन्दिरा' एक लघु उपन्यास है । इसके घटना विन्यास में स्वच्छ और तीक्ष्ण परिहास निपुणता मिलती है । इसलिए बौद्धिक स्तर या हास्यालोकपात् उपभोग्य है । विशेषतया कथोपकथन में इसकी विशेषता व्यक्त होती है। 'इंदिरा' की कथा बहुत ही साधारण है । दस्यु द्वारा अपरिता इंदिरा और पति के साथ पुनर्मिलन के लिए तरह तरह के उपायों का अवलम्बन इस उपन्यासका विषय है । इस छोटे से उपन्यास के भीतर कोई गहरी समस्या आलोचित नहीं हुई है और यह ग्रन्थ छोटे से विस्तार में आनन्दरस संचारित करता है । इन्दिरा की करूण, मधुर सहानुभूति पाठक को आकृष्ट करने में समर्थ है ।

'इन्दिरा' उपन्यास में कला कुशलता की दृष्टि से अगर किसी सन्देह का अवसर रहता है तो वह इन्दिरा के पुनः पति प्राप्त करने के लिए बहुत लम्बे षड़यन्त के विवरण की अवतारणा में ही है । विशेषतया 19वीं शताब्दी में पति के ऊपर अपने आपको विद्याधरी के रूप में प्रतिष्ठित करने की चेष्टा बहुत उपयुक्त नहीं लगती है । फिर भी इन्दिरा के पति को कुसंस्कारपूर्ण और भूतप्रेत में विश्वास रखने वाला अंकित करके इस मामले को सहज कर दिया गया है । साधारण रूप से सरस् वर्णन में हास-परिहास है और एक अवर्णनीय नारी माधुर्य की रमणीयता से 'इन्दिरा' उपन्यास उपभोग्य हो उठा है ।

'इन्दिरा' और 'रजनी' इन दोनों उपन्यासों में बंकिम चन्द्र ने एक नयी प्रणाली का प्रवर्तन किया है । कहानी का विवरण स्वयं न देकर उपन्यास के चरित्र समूहों को ही वक्ता के आसन पर बैठा दिया है । 'इन्दिरा' उपन्यास में इन्दिरा अकेले ही बोलने वाली है । परन्तु 'रजनी' ने उपाख्यान कहने के लिए अनेक चरित्रों की अवतारणा की गयी है । इस पद्धति में बंकिम चन्द्र ने अपने ऊपर गुरू दायित्व ले लिया है । प्रत्येक बोलने वाले के स्वभाव के साथ उसकी भाषा का सामंजस्य विघान का प्रयास उन्हें बड़ी कुशलता से करना पड़ा है। बंकिम का यह प्रयास सर्वतो रूप से सफल नहीं कहा जा सकता क्योंकि कभी-कभी विभिन्न चरित्र के अनुसार भाषा का प्रयोग सार्थक सिद्ध नहीं होता । बंकिम चन्द्र के अपने स्तर की भाषा चलने लगती है और उस

भाषा में जो हास्यरस की अवतारणा की गयी है वह भी बंकिमचन्द्र के उन्नतस्तरीय ही हो जाता है । इसलिए चरित्रों की अपनी स्वाभाविकता नष्ट हो जाती है । नायिका रजनी के विषय में कहा जा सकता है कि अन्यान्य चरित्रों से दृष्टिहीन रजनी का जो कोमल लज्जा संकुचित संवेदनापूर्ण और स्वार्थ त्याग में तत्पर स्वभाव विकसित हो उठता है उसका अपना परिहास पूर्ण थोड़ा विद्रूप भरा हुआ और विश्लेषण कुशल उक्ति समूह ठीक उसके चरित्र के अनुयायी नहीं बन सके । उसके बाद उसके मुख से गहरी चिन्ताशीलतापूर्ण और दार्शनिक की तरह जो उक्तियाँ हैं वह भी उसके लिए सार्थक नहीं सिद्ध होती हैं ।

बंकिम चन्द्र के 'रजनी' में उपन्यास के पात्रों द्वारा जो अपने-अपने स्वभाव का विश्लेषण किया गया है वह एक ओर तो बहुत सरस और सजीव है परन्तु दूसरी ओर यह निर्दिष्ट होता है कि घटनाओं की समाप्ति के बाद भी विवरण आरम्भ होता है। इसलिए उस विशेष क्षण का जो स्वाभाविक चरित्र रूपान्तरित हुआ है उसका परिचय पाठक को नहीं मिलता । अर्थात् लगता है - लिखते समय समस्त चरित्र अन्तिम परिणति से परिचित थे । अमरनाथ की उक्ति के आरम्भ में ही उसकी विगत जीवन का एकमात्र पदस्खलन उसका उल्लेख है, और इस पदस्खलन के बाद उसके मानसिक परिवर्तन का विस्तृत विवरण दिया हुआ है । उपन्यास के भिन्न-भिन्न चरित्रों के भीतर आख्यायिका वर्णन का दायित्व बाँट देने के कारण एक असुविधा होती

है । उपन्यास की गति कदम-कदम पर बाधा प्राप्त और धीमी हो जाती है । एक ही घटना भिन्न-भिन्न लोगों की दृष्टि से व्यक्त होती है । एक ही व्यापार के विषय में अनेकों का मत वर्णित होता है । इसलिए पुनरूक्ति दोष इसमें आ जाना स्वाभाविक हो जाता है। रजनी को पुनः प्राप्त करने के बाद सचीन्द्र के साथ उसके माता-पिता का परिवर्तित आचरण और सम्पत्ति उद्धार की कहानी सचीन्द्र द्वारा ही वर्णित हुई है । उसके बाद सचीन्द्र की अनिच्छा होने पर भी रजनी को वधु बनाने के लिए लवंगलता की उक्तियों का आरम्भ और रजनी को लेकर अमरनाथ के साथ उसकी चतुरता की प्रतियोगिता - इस अंश में एक नाटकीय भाव उत्पन्न करता है । इसीलिए लगभग प्रत्येक दृश्य में वक्ता का परिवर्तन आवश्यक हो गया है । चतुरता की प्रतियोगिता में अमरनाथ की महान भावुकता के समक्ष लवंगलता की पराजय घटित हुई है । रजनी की स्वीकारोक्ति ही उपन्यास की समस्या का समाधान करती है ।

'विषवृक्ष' और 'कृष्णकान्तेर विल' - ये दोनों ही बंकिम चन्द्र के यथार्थ और पूर्ण अंवयव विशिष्ट सामाजिक उपन्यास हैं । ये दोनों ही उपन्यास गहरे रसों से सिंचित हैं और दोनों का परिणाम विषादमय है । दोनों उपन्यासों की विपत्ति का मूलकारण - रमणी रूप से मोहित पुरुष के प्रवृत्ति दमन में व्यर्थता (प्रवृत्ति दमन में अक्षमता) है। दोनों उपन्यासोंमें बंकिम ने इस अन्तर्विरोध का चित्र सूक्ष्मदर्शिता के साथ चित्रित किया है । विचित्र और विभिन्न घटनाओं की अवतारणा के कारण नाटकीय दृश्य की तरह इस उपन्यास के भीतर द्वन्द्व अथवा संहार की उत्पत्ति हुई है ।

बंकिम चन्द्र के अन्यान्य उपन्यासों में एक परिहासमय हृदय वृत्ति का परिचय मिलता है। परन्तु इन दोनों में ऐसा नहीं होता यहाँ बंकिम मानव हृदय के गहरे स्तर में अवतरण करते हैं । सत्य की नग्नमूर्ति के सामने खड़े हुए हैं । दुर्ज्ञेय भाग्यविधाता मानव हृदय के भीतर से जो गहरे काले नियति की रेखा खींच दी जाती है उसकी गति के रहस्य का बहुत सूक्ष्म रूप से अनुसरण करने की चेष्टा की है। इसमें भी लघु तथा निर्मल हास -परिहास की अवतारणा हुई है । बंकिमचन्द्र सरल तथा मधुर हास -परिहास रचना में विशिष्ट थे । उनका परिहास स्थूलता दोष से दोषित नहीं है। उपन्यासों में विषादपूर्ण, ट्रेजडी के बीच मानव मन के लघु तरल विकास समूहों का चित्र अंकित करने में बंकिम चन्द्र थकते नहीं । उन्होंने जीवन को एक विशुद्ध घूसर अथवा गाढ़े काले रंग में कभी अंकित नहीं किया । आलोक और छाया पात् के विन्यास से उसे अपूर्व बनाया ।

'विषवृक्ष' पूरे तौर से अति प्राकृत (अलौकिक) के स्पर्श से मुक्त नहीं है । कुन्दनन्दिनी का दो बार स्वप्न दर्शन उपन्यास के भीतर अति प्राकृत के प्रति अनुराग के लिए निदर्शन स्वरूप दिखाई देता है । परन्तु यह उपन्यास का केन्द्रीय विषय नहीं है । उपन्यास के केन्द्रगत विषय नगेन्द्र नाथ का रूपमोह और आत्म संयम में अक्षमता, इस असंयत पव्रृत्ति के कारण नगेन्द्र, कुन्द नन्दिनी और सूर्यमुखी तीनों के जीवन में एक भयंकर आलोड़न आता है । तीनों जीवन के आलोड़न, आन्दोलन, तथा

उत्थान पतन से जीवन का अमृत और विष निकलता रहता है । नगेन्द्र नाथ के पाप-प्रलोभन की परिणति का चित्र बंकिम ने अंकित किया है । परन्तु आधुनिक वास्तुविकता पूर्ण उपन्यासकारों के अतिरिक्त तथ्यभार से भरी हुई प्रणाली का अनुसरण नहीं किया । केवल कई रेखाओं से इशारा और आभास के द्वारा कथांश के भीतर से हृदय के विक्षोभ का चित्र विकसित किया है । कमलमणि के पति सूर्यमुखी के पत्र में विकार का प्रथम उल्लेख मिलता है । नगेन्द्र अपने प्रलोभन के साथ संघर्ष किये जा रहे हैं। केवल एक स्नेहमयी पत्नी की असाधारण तीक्ष्ण दृष्टि ही इस विकार का परिचय पाती है । सूर्यमुखी के पत्र में इस विकार का प्रथम परिचय देकर बंकिम चन्द्र ने उनके चित्र को कला की दृष्टि से एक संगत और शोभानता दी है । 18वें परिच्छेद में बंकिम चन्द्र ने कवित्वपूर्ण भाषा में कुन्द की अनिवार्य प्रेम पिपासा का विश्लेषण किया है । इस तरफ नगेन्द्र जब हीरा के मुख से सूर्यमुखी की हृदय वेदना और दुतकार तथा इसी कारण कुन्द के गृह त्याग का संवाद पाते हैं तब उसका प्रेम अथवा मोह समग्र बाधाओं को तोड़कर एकदम से अपने आपको प्रकाशित कर बैठता है । इस कठोर आघात से सूर्यमुखी तथा नगेन्द्र के बीच जो एक थोड़ी सी दुरी थी वह एकदम से टूटकर समाप्त हो गयी । नगेन्द्र कठोर और नीरस भाषा में कुन्दनन्दिनी के सम्बन्ध में अपनी अन्तिम इच्छा व्यक्त करते हैं । सूर्यमुखी अपने पति के साथ कुन्दनन्दिनी का विवाह कराती है, यहीं 'विषवृक्ष' का प्रथम पर्व समाप्त होता है । अब धीरे-धीरे प्रबल क्रिया का स्वाभाविक फल ही प्रबल प्रतिक्रिया के रूप में आता है । इस संघात

की प्रथम बलि सूर्यमुखी का आत्मविर्सजन है । कमलमणि के आने के बाद सुर्यमुखी कमलमणि के समक्ष अपने पति के आचरण और अपनी गहरी मनोवेदना का परिचय देती है । इसके बाद सूर्यमुखी गृह त्याग करती है । सूर्यमुखी के गृह त्याग के कारण नगेन्द्र का सुख स्वप्न टूट गया । कुन्दनन्दिनी के प्रति अथाह प्रेम एक मुहुर्त में घृणा से भर गया । कुन्द के मौन रहने और सरस वार्तालाप में अस्मर्थता के कारण नगेन्द्र उसके प्रति आकर्षण खोने लगता है । नगेन्द्र कुन्दनन्दिनी को त्याग करके विदेश भ्रमण करने लगता है । इधर सूर्यमुखी नगेन्द्र के पास लौटने के रास्ते में भंयकर रोग से पीड़ित हो जाती है और शीघ्र ही नगेन्द्र के पास उसकी मृत्यु की सूचना पहुँचती है । इस मृत्यु संवाद से नगेन्द्र का मन अनुताप की अग्नि में जलने लगता है।इसी से पूर्व पाप का प्रायश्चित होता है ।

पाप के सम्बन्ध में बंकिम चन्द्र का एक सहज संकोच और एक स्वाभाविक वि-मुखता थी । इसलिए उन्होंने इसका विस्तारित वर्णन कहीं नहीं किया। उपन्यास में मुख्य समस्या सच्चरित्र पत्नी वत्सल नगेन्द्र का पदस्खलन ही है । ग्रन्थ के षष्ठ परिच्छेद में नगेन्द्र हरदेव घोषाल को कुन्द का रहस्यमय सरलता मण्डित सौन्दर्य वर्णन करके जो पत्र लिखते हैं उसी में मोह के प्रारम्भिक जाल का आभास मिलता है । सूर्यमुखी के गृह त्याग के बाद एक मनस्तत्वमूलक व्याख्या दी गयी है- नगेन्द्र के पूर्व जीवन में किसी विषय की कमी नहीं हुई है । इसलिए उसके चित्त

— संयम की शिक्षा नहीं हो सकी थी । केवल सुख-दुःख का मूल कारण होता है । पूर्ववर्ती दुःख न रहने से हृदय में सुख का जन्म भी नहीं होता । लगता है कि यह नीतिविदों की व्याख्या हो सकती है, मनस्तत्वविद् की नहीं । नगेन्द्र का यह एकाएक पदस्खलन सम्पूर्णतया स्वाभाविक है । शायद कुन्दनन्दिनी के साथ उनका साक्षात्कार न होने से वह अनिन्दनीय जीवन के अधिकारी हो सकते थे । कुन्दनन्दिनी के साथ साक्षात् ही उनके जीवन में विष घोल देता है ।

सूर्यमुखी के चरित्र में ही पति प्रेम से वंचित होने का कारण मिल सकता है । बंकिम चन्द्र ने एक स्थान पर उल्लेख किया है कि सूर्य मुखी कुछ गर्वित स्वभाव की थी । पति के साथ आचरण में भी उनकी यह विशेषता प्रकट होती थी । सूर्यमुखी पहले से ही समझी कि पति का मन उनसे खिसककर और किसी के प्रति आसक्त हो रहा है । परन्तु वह क्षणभर के लिए भी पति के अनुराग को पुनः प्राप्त करने की व्याकुलता नहीं दिखाती है । केवल कमल मणि के पास रोकर अपने हृदय भार को कम करती है । अर्थात् सूर्यमुखी का आचरण निन्दा योग्य न होने पर भी उपन्यास की ट्रेजडी की कुछ अंश के लिए वही उत्तरदायी है । उपन्यास के चरित्रों में अन्तर्द्वन्द्व के के चित्रण में नगेन्द्र का सूर्यमुखी के प्रति आचरण इतना कठोर था कि अगर सूर्यमुखी रोकर भी कुछ प्रत्याशा व्यक्त करती तो भी कुछ फल नहीं होता। परन्तु सूर्यमुखी चरित्र की विशेषता यह थी कि उसने कभी रो कर आवेदन करने की कल्पना भी नहीं की थी ।

बंकिम के 'विषवृक्ष' और 'कृष्णकान्तेर विल' - इन दोनों की विषयवस्तु और अन्तर्द्वन्द्व लगभग एक ही तरह का है । परन्तु बंकिम चन्द्र ने जिस निपुणता के साथ चरित्रों की विभिन्नता को और विचित्र घटना समूहों को विशिष्ट करके दिखाया है इसी में उनकी उच्चांग उद्भावनी प्रतिभा और निपुण कला का परिचय मिलता है । भावात्मक होते हुए भी संयत वर्णन में बंकिम सिद्ध हैं । कुन्दनन्दिनी का गृह त्याग, सुर्यमुखी के मृत्यु समाचार में, शोकोच्छवास में बंकिम की शक्ति का परिचय मिलता है । 'कृष्णकान्तेर विल''विषवृक्ष' के पांच वर्षों बाद प्रकाशित हुआ। 'कृष्णकान्तेर विल' विश्लेषण की गहराई की दृष्टि से 'विषवृक्ष' से श्रेष्ठ है । 'विषवृक्ष' में अगर कुछ कमियां थीं भी तो 'कृष्णकान्तेर विल' समस्त दोषमुक्त सृष्टि प्रमाणित होता है । 'कृष्णकान्तेर विल' उपन्यास में रोहिणी के प्रति गोविन्दलाल के भावों में रूपान्तर, दया और संवेदना से प्रेम में परिणति स्पष्ट रूप से प्रदर्शित हुई है । इस उपन्यास में बाहरी जगत की शक्ति को क्षीण नहीं दिखाया गया है । इस ग्रन्थ में प्रत्येक बार 'विल' (वसीयतनामा) परिवर्तन केवल एक सम्पत्ति के विभाग वंटन के अंश को बदला गया है ऐसा नहीं यह जैसे भाग्यलेखन की तरह उपन्यास के पात्रों का भाग्य परिवर्तन करने में समर्थ हुआ है । कृष्णकान्त का द्वितीय वसीयतनामा जिसमें हरलाल का अंश शून्य हो गया है वहाँ हर लाल को रोहिणी की सहायता लेने की चेष्टा करनी पड़ी । इस घटना से रोहिणी के जीवन में एक असंभाव्य नए अध्याय का उद्भव होता है । रोहिणी की तीव्र मनोवृत्ति जो

कुण्डलीकृत सर्प की तरह सोई हुई थी उसे जगा दिया । अब रोहिणी विषधर की तरह डँसने के लिए अपना लालचीफण उठाकर खड़ी हो जाती है । यह नवजागृत प्रेमाकर्षण तथा मनोविकार के भीतर से प्रणय में रूपान्तरित हो जाता है । दूसरी बार वसीयतनामा का परिवर्तन करने आने पर रोहिणी पकड़ी जाती है और गोविन्द लाल सहानुभूति के सम्पर्क में आकर भाग्य परिवर्तन का एक नया कदम आगे बढ़ाती है । गोविन्द लाल के निकट अपना प्रणयावेग स्वीकार करती है । गोविन्द लाल ने यही बात भ्रमर के पास बता दी । भ्रमर रोहिणी को नदी में डूबकर मरने का उपदेश देती है । रोहिणी भ्रमर का आदेश पालन करने जाती है और गोविन्द लाल उसे बचा लेता है । यही रोहिणी के पुनर्जीवन प्राप्ति का इतिहास है । इन सब घटनाओं का निरीक्षण करते हुए भाग्यलिपि रचित हुई है । कृष्णकान्त की मृत्यु के ठीक पहले अन्तिम बार वसीयतनामा का परिवर्तन, भ्रमर के प्रति गोविन्दलाल का विराग, भाग्यलिपि द्वारा नियन्त्रित दाम्पत्य सम्पर्क में छेद जैसे विल (वसीयत) परिवर्तन का ही प्रभाव है । भ्रमर का गोविन्दलाल के प्रति अविश्वास और दुःख के कारण पिता के घर चले जाना गोविन्द लाल को पूर्ण वेग से रोहिणी के प्रति आकृष्ट करने में सहज सिद्ध होता है । यह गुरूत्वपूर्ण परिवर्तन बाहरी लोगों की ईर्ष्या, विद्वेष, निन्दाप्रियता, के कारण ही और प्रबल हुआ है । गोविन्दलाल और भ्रमर का सह अवस्थान उन लोगों के भविष्य के सुख के लिए बहुत आवश्यक था । परन्तु भ्रमर गोविन्दलाल से विच्छिन्न हो जाती है नियति जहाँ दुर्भाग्य का जाल मनुष्य के लिए फैलाकर रखती है । उसे रोकना बुद्धि और विवेक के बाहर ही समझा जाता है । भ्रमर और गोविन्द लाल के बीच जिस दूरी

की सृष्टि की गयी है वह अन्त तक वैसी ही है । उन लोगों की समस्या का समाधान होना संभव नही हुआ । भ्रमर गोविन्दलाल और रोहिणी, इनके ऊपर से नियति की निष्ठुर और क्रूर गति निरन्तर प्रभावित हुई है ।

परवर्ती उपन्यासकारों में श्रेष्ठ शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय ने बंकिम की कला में असंगति और अस्वाभाविकता का उल्लेख किया है । रोहिणी की अपद्यात मृत्यु घटित करके बंकिम ने सामाजिक धर्मनीति की मर्यादा अक्षुण्ण रखी है । कलाकार की स्वाभाविक प्रतिभा को अवदमित किया है । रोहिणी का बलिदान करके समाज धर्म के क्षेत्र को निस्कंटक किया है । रोहिणी की आकस्मिक मृत्यु जैसे एक बहुत जटिल समस्या के समाधान के रूप में प्रकटित हुई है । परन्तु यह समाधान अन्याय रूप से संसाधित किया गया है । मृत्यु से जीवन की स्थिति, गति तथा अस्तित्व समाप्त होता है परन्तु समस्या का समाधान सोचना समस्या को सरलीकृत करना है । गोविन्द लाल के ऊपर रोहिणी का आकर्षण क्रमशः कम होने लगा था और रोहिणी को गोली से मारना उसकी केवल दैहिक मृत्यु नहीं है बल्कि गोविन्द लाल के ऊपर उसके प्रभाव की परिसमाप्ति रचित करना ही लेखक का उद्देश्य था ।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर के उपन्यास 'चार आध्याय' (1934) 'घरे बाहिरे' की तरह राजनैतिक आन्दोलन की आलोचना के ऊपर प्रतिष्ठित हुआ है । इसमें स्वदेशी

आन्दोलन का एक विशेष रूप मिलता है । विप्लववाद का स्वरूप इस उपन्यास का आलोचित विषय है । घर और बाहर का जो चिरन्तन विरोध है उसी का एक अध्याय इसकी आलोचित समस्या है । बाहर का तीव्र मोह जो घर के शान्त और स्थिर प्रेम प्रदीप को बुझा सकता है । इस भयंकर सत्य ने ही रवीन्द्र नाथ की कवि कल्पना को बार-बार अभिभूत किया है । विप्लव वाद के विरूद्ध उपन्यास के नायक अतीन की शिकायत-तीन तरह की है उसका सनातन नीतिज्ञान, आत्मस्वातंन्त्र्य और प्रेम। अतीन की सबसे गहरी वेदना उसके व्यर्थ प्रेम विषय में है । अतीन ने एला के निर्दिष्ट कर्म धारा में प्रेम की सार्थकता का एक जटिल तथा कृत्रिम रास्ता बना लिया है । एला के साथ पहले साक्षात् के दिन की बातें उसके मन में उज्ज्वल रूप से मुद्रित हैं । उसमें एक तरफ व्यर्थता की वेदना उद्धेलित हुई है और दूसरी तरफ देश प्रेम के भीतर जो केवल मात्र भाव विलास है उसके प्रतिवाद को और तीव्र बना देता है । रवीन्द्रनाथ के अनेक उपन्यासों में देश-प्रेम की तुलना में प्रेम का महत्व प्रमाणित किया गया है । पराधीन देश में देश-प्रेम का रास्ता जो बहुत कण्टकित है यही नहीं बल्कि स्वस्थ आत्म विकास का विरोधी भी है । जिस मनोभाव के भीतर देश प्रेम का जन्म होता है इसमें द्वेष, हिंसा और विराग की प्रचुरता रहती है । इसमें आत्मदमन तथा निर्दय आत्मपीड़न है । प्रेम का अपार आनन्द और स्वतः विकसित मधुरता इसमें नहीं है । इस उपन्यास के यथार्थ नायक-नायिका अतीन और एला नहीं है अतीन और ऐला प्रतिवेश के प्रवाह में दो कण मात्र हैं । इसलिए इस भाव प्रधान

उपन्यास में मनस्वतत्व विश्लेषण का स्वाभाविक अवसर मिलता है । ऐसी शिकायत है कि रवीन्द्रनाथ ने जो विप्लव का चित्र अंकित किया है वह काल्पनिक है, वास्तविकता के आधार पर प्रतिष्ठित नहीं है । शायद कवि कल्पना के प्रवाह में उपन्यासकार ने संभाव्यता को चित्रित किया है ।

'मालंच' (1934) एक बहुत छोटा सा उपन्यास है । इसकी समस्या भी बहुत ही छोटी है । मृत्यु शय्या पर लेटी हुई नीरजा की ईर्ष्या विकार प्रतिद्वन्द्विनी के विरुद्ध पति प्रेम और फूल बगीचे के ऊपर उसके अनायास अधिकार रक्षा की चेष्टा इस उपन्यास की विषय वस्तु है । नीरजा का पति आदित्य इस ईर्ष्या के एकाएक आघात से आविष्कार करता है कि बाल्यसंगिनी और कर्मसहयोगिनी सरला को वह प्यार करता है और यह प्रेम उसके पत्नी के प्रति कर्तव्य के ऊपर उठकर अनिवार्य गतिवेग से आगे बढ़ना चाहता है । सरला की कर्मनिष्ठा और आत्मसंयम के पीछे आदित्य के प्रति प्रेम उसके अनजाने में ही पनपने लगा था । नीरजा की ईर्ष्या ने ही इस प्रेम सम्बन्ध को प्रथमतः सचेतन किया है ।

'मालंच' उपन्यास 'अन्यान्य' उपन्यास की तरह एक साधारण प्रेम विरोध कहानी नहीं है। उसका यथार्थ इंगित इसके नामकरण में ही निहित है । 'मालंच' उपन्यास की काल्पिक विशेषता चारित्रिक विशेषता में प्रतिष्ठित हुई है ।

रवीन्द्रनाथ के समस्त उपन्यास समूहों की आलोचना करने से एक व्यापक धारणा बन सकती है । बंकिमचन्द्र के बाद बंगला उपन्यास की अग्रगति जब रूकने वाली थी तब रवीन्द्र नाथ ने ही उसके लिए नया रास्ता बना दिया । उनकी असाधारण प्रतिभा के स्पर्श से उपन्यास के ऊपर उनका जो प्रभाव पड़ा है वही नवीन भावों से उज्ज्वलित हुआ है । आधुनिक बंगला उपन्यास उनके प्रदर्शित पथ में चलकर नयी दिशाओं को उद्घाटित करने में समर्थ हुआ है । उनके उपन्यासों में हम लोगो के गाँव में द्वन्द्व से भरे हुए संसार और परिवार में दरिद्रता और ईर्ष्या-विद्वेष में जो जीवन यात्रा प्रभावित होती है उसके अन्तर्निहित वास्तविकता से उनकी सौन्दर्य प्रिय कवि प्रकृति निरन्तर संचालित हुई है । परन्तु कवि प्रकृति के प्रभाव से उनके द्वारा सृष्ट चरित्र समूहों को प्रात्याहिक जीवन में देखने का अवसर नही मिलता।

शरत्चन्द्र द्वारा सृष्ट चरित्रों के साथ इनकी तुलना करने से इनकी विशिष्टता अनायास समझ में आ जाती है । इसलिए रवीन्द्रनाथ का गहरा प्रभाव रहने पर भी उपन्यास के क्षेत्र में उनका यथार्थ अनुसारी कोई नहीं है । उनकी प्रणाली अनुकरणीय है । औपन्यासिक उपादान के साथ असाधारण कवि प्रतिभा का समन्वय न होने से भविष्यत् युग में भी रवीन्द्रनाथ का यथार्थ अनुवर्ती नहीं मिल सकता।

समाज समालोचना के उपन्यास समूहों में शरतचन्द्र का 'पल्ली समाज' (1916) मुख्य है । इस उपन्यास में किसी एक विशेष सामाजिक कुप्रथा के प्रति कटाक्ष

नहीं किया गया है परन्तु हिन्दू समाज के प्रकृत आदर्श और मनोभावना के समस्त जीवन यात्रा की एक प्रतिकृति दी गयी है । अंकन की वास्तविकता में, विश्लेषण की तीक्ष्णता में और सहानुभूति की गहराई में यह विषय सारे उपन्यास से बहुत ऊँचे पर प्रतिष्ठित हुआ है । हम लोग अपनी सामाजिक विधि व्यवस्थाओं की प्राचीनता और उत्कर्षता के लिए अंहकार करते हैं। शरतचन्द्र ने ममताहीन दृष्टिकोण से इसे विश्लेषित करके दिखा दिया है कि जिन अन्धकथाओं को लेकर हम गर्व करते है यथार्थ रूप से वह कुप्राथाएं हम लोगों को एक अज्ञात सर्वनाश से रसातल में निरन्तर ढकेल रही है । शरत्चन्द्र समाज नियन्त्रण के प्रत्येक अनुष्ठान को ही यथेच्छाचार और स्वार्थ सिद्धि के पैशाचिक निष्ठुरता के रूप में देख पाये हैं वहीं अपने स्वतन्त्र विचार और प्रतिभा से उसके स्वरूप को स्पष्ट रूप से उद्घाटित करके यथार्थता को प्रतिष्ठित कर दिया । इस श्रेणी के उपन्यासों में 'पल्ली समाज' (1916) का स्थान मुख्य है । अंकित वास्तविकता में विश्लेषण की तीक्ष्णता में और सहानुभूति की गहराई में यह उपन्यास एक बहुत उच्च स्थान प्राप्त करता है । हम लोग अपने सामाजिक विधि व्यवस्थाओं के सनातनत्व और उत्कर्ष का अंहकार करते हैं । शरतचन्द्र ने स्पष्ट और कठिन विश्लेषण करके इन प्रथाओं से यथार्थ रूप से हम लोगों का कौन सा सर्वनाश हो रहा है उसी का परिचय व्यक्त किया है । शरत्चन्द्र के पल्ली समाज की विशेषता यह है कि कई सुन्दर रूप से निर्वाचित दृश्यों की सहायता से नीच मनोवृत्ति के उचित प्रायश्चित स्वरूप एक प्रबल घृणा और धिक्कारबोध उपन्यासकार ने जगा दिया है ।

शरत्‌चन्द्र की रचना के साथ जो आन्दोलन और विक्षोभ संश्लिष्ट हुआ था उसके लिए 'चरित्र हीन', 'गृहदास' और 'श्रीकान्त' ही मुख्यतः उल्लेख योग्य हैं । इन तीनों उपन्यासों में अवैध प्रेम के प्रति लेखक का मनोभाव लगभग एक ही तरह का है । साधारणतया इस स्तर के प्रेम के ऊपर जिस तरह निर्विचार निन्दा तथा घृणा वर्षित होती है उस कठोर धर्मनीति मूलक मनोभाव के साथ लेखक की सहानुभूति नहीं है । इन समस्त क्षेत्रों में हम लोगों के सरल विचार और न्याय-अन्याय बोध की हम लोग सहायता नही लेते हैं। इस तरह से समाज विधि के उल्लंघन के मूल में कौन सी मनोवृत्ति का अस्तित्व है उसे सोचकर नहीं देखा जाता है वरन् आँख मूंदकर केवल चिरप्रथागत दण्ड विधि की धारा प्रयोग की जाती है । शरत्‌चन्द्र ने अपने उपन्यास में ऐसी मूर्खता, अन्धता, जड़ता और संकीर्णता के विरूद्ध अपनी समस्त शक्ति प्रयुक्त की है। हम लोगों के सांसारिक जीवन में अनिवार्य रूप से नर-नारी के भीतर ऐसे जटिल सम्पर्क की स्थिति होती है जिसका विचार करना हम लोगों के तीक्ष्ण, अकुण्ठित, धर्म-बोध और न्याय निष्ठा की जरूरत होती है जिसे सीधे व्यभिचार के स्तर में रखकर मनुसंहिता की विधि के अनुसार विधान ढूँढ़ा जाता है । इस तरह से विधान ढूँढ़ता कितना यांत्रिक है : कितना अविचारी है : उसका परिचय शरत्‌चन्द्र ने दिया है । धर्म रक्षा और अधर्म का प्रतिकार ही शास्त्र द्वारा निर्दिष्ट दण्ड का एक मात्र उद्‌देश्य और सार्थकता होती है । कैसी विशेष अवस्था में शरत चन्द्र के पात्रों के भीतर अवैध प्रेम का उद्‌भव हुआ है इस बात को उन्होंने बड़ी निपुणता के साथ वर्णित किया है

प्रत्येक क्षेत्र तथा परिवेश में पाठक को अपने स्वतंत्र विचारों को प्रयोग करने का अवसर शरत्चन्द्र ने दे दिया है । अगर अपराधी है तो उस चरित्र का अपराध भी उनके सम्बन्ध में एक मात्र आलोच्य विषय नहीं सोचा जा सकता । चरित्र के अन्याय की तरफ देखकर मोटे तौर से वह निन्दनीय है अथवा प्रशंसनीय है इस विषय में पाठक को मतामत व्यक्त करने की स्वतन्त्रता शरत्चन्द्र ने बार-बार दी है । उनकी अचला, सावित्री, अभया, राजलक्ष्मी, और लगता है किरणमयी को भी केवल अपराधी मुहर से चिन्हित नहीं किया जा सकता है । पाप के प्रति एक प्रबल और अनिवार्य प्रवृत्ति इनके भीतर नहीं मिलती है । परिवेश के निरन्तर अभावित परिर्वन के प्रभाव से स्वाभाविक चरित्र विकास में त्रुटियाँ उभर आयीं । सावित्री और राजलक्ष्मी सतीत्व धर्म के मूल्य बोध के विषय में इतनी सचेतन हैं कि अपने प्राथमिक जीवन के पदस्खलन के लिए सारा जीवन प्रायश्चित करती है और नारी जीवन की सर्वोत्तम सार्थकता से अपने आपको स्वेच्छा से वंचित रखती है । अचला (गृहदाह) अवस्था की प्रतिकूलता और बाहरी मर्यादा की रक्षा के लिए सुरेश के समक्ष आत्म समर्पण करने के लिए बाध्य हो जाती है । परन्तु सुरेश के प्रति उसका मन किसी दिन भी प्रेमपूर्ण नहीं था । अभया निडर हृदय से सतीत्व को एक अपेक्षित धर्म घोषित करती है और विशेष अवस्था में वही सतीत्व, जो त्याग नहीं किया जा सकता है, एसी बात नहीं वह विश्वास करती है विचित्र जटिल अवस्था के भीतर सती सतीत्व त्याग कर सकती है और उससे उस पर किसी तरह के पाप की छाया नहीं पड़ती है । अभया ने अपने

आचरण से इस सत्य को प्रमाणित कर दिया परन्तु सतीत्व के प्रति निष्ठा की उसके मन में कोई कमी नहीं थी और उससे जितना दिन संभव हो सका धर्म निर्दिष्ट सतीत्व बोध को अपने हृदय से लगाकर रखा था और न छोड़ने की चेष्टा भी की थी परन्तु नारीत्व की मर्यादा का विनाश उसने होने नहीं दिया और अनायास दूसरे विवाह के पति के चरणों में उसी सतीत्व की प्रतिष्ठा कर ली । 'चरित्र हीन' में किरणमयी एक चरित्र है जिसमें सतीत्व के प्रति एक यथार्थ स्वाभाविक आकर्षण नहीं था । प्रेम वर्जित निष्ठा को उसने कभी मूल्य नहीं दिया । अर्थात शरतचन्द्र के प्रत्येक उदाहरण को केवल असतीत्व के समर्थन को साधारण उद्देश्य से अवतरित नहीं किया गया है । प्रत्येक चरित्र की एक अवस्था घटित विशेषता है और उपन्यासकार ने पाठक की स्वतत्रंत चिन्ताशक्ति तथा सहानुभूति को बड़े वेग से जागृत करने का प्रयास किया है ।

'परिवार के पिजं' में बंधी हुई नारी के हृदय की अशान्त वेदना मुक्ति के लिए व्याकुलता 'सुवर्णलता' (आशापुर्णा देवी) के छोटे घटनालेशशून्य जीवन में जैसे एक अध्यात्म साधना की महिमा प्राप्त कर लेता है । पृष्ठभूमि का विन्यास चिन्तन धारा नुसारी है । घर की निष्ठुर गृहणी मुक्तकेशी माँ की अति आज्ञाकारी सुबोध का भाई, वहीं पांच पुत्रवधुओं के मन के भीतर गोपन ईर्ष्या का प्रभाव, बच्चों की वही स्थूल नाराजगी इस उपन्यास में वर्णित हुई है। इसी परिचित परिवेश में ज्वालामुखी की तरह हृदय के अवरूद्ध अवरोष से विकम्पित अविचलित संकल्प से संसार के विरोध का सामना करने वाली सुवर्णलता केवल कलकत्ते के मध्यम वर्गीय

परिवार की एक साधारण गृहस्थ वधू नही बल्कि वह एक चिरन्तन मानव आत्मा के सुस्पष्ट प्रकाश के लिए व्याकुल मानव प्रतिनिधि है । उसकी प्रत्येक गति और प्रकृति में उज्ज्वल स्वातंत्र्य बोध के स्वरूप की उपलब्धि, प्रत्येक वाक्य में विद्रोह की स्फुलिंग बिखरी हुई है । सास, पति, जेठ, पिता-माता, इनमें जिसके भी पास से थोड़ा सा भी स्वच्छंद विकास विरोधी आत्म मर्यादा को नष्ट करने वाला किसी तरह का भी आचरण किया गया है,उसी के विरूद्ध उसने संग्राम चलाया । कहीं पर समझौता करने के लिए अपने व्यक्ति स्वातंत्र्य को अवनमित नहीं किया । उसने समस्त पुरानी कथाओं को लांघकर किताब पढ़ी है और आत्म जीवनी भी लिखी है ।

कठोर संग्राम के अन्त में एक करूण व्यर्थता की चेतना इस उपन्यास के चरम फल के रूप में व्यक्त होती है । जिसने सब दिन संघर्ष करके बिता दिया वह आत्म स्वरूप के स्पष्ट आधार पर प्रतिष्ठित नहीं हो सका । निरन्तर घात-प्रतिघात से उसके देह और मन का लावण्य विनष्ट हुआ है । जीवन में सौन्दर्य प्रतिष्ठा करने की इच्छा करके भी अपने सौन्दर्य को खो दिया है । इसलिए जब सुवर्ण अपने स्वतन्त्र परिवार की रचना करती है तब आनन्दलोक उस परिवार में प्रतिष्ठित करने में असमर्थ रह जाती है । उसका, संघर्ष करके थका हुआ दुःख रूपी अग्नि की आंच से झुलसा हुआ मन समस्त संसार, परिवार के प्रति आस्था खो बैठा। उसकी मुधरता का आस्वादन करने का सामर्थ्य उसमें नहीं रह गया । उसकी मृत्यु की शोभा यात्रा का समारोह सांसरिक युद्ध में विजयिनी नारी के प्रति स्वजनों का श्रद्धा निवेदन, उसके सौभाग्य के

प्रति ईर्ष्या मिश्रित प्रशंसा, समस्त पुचरता के पीछे एक शून्यता पीड़ित मानव हृदय की वेदना चिरकाल के लिए विलुप्त होने के रास्ते में आगे बढ़ रही है, यही नारी जीवन की ट्रेजडी का रूप प्रतिष्ठित हुआ है । जो नारी जीवन में स्वार्थ साधिका हो सकती थी वह जीवन भक्षी के पास केवल मुट्ठीभर भीख पा सकी ।

'वलयग्रास' और 'जनम-जनम के साथी' आशापूर्णादेवी के अनभ्यस्त विषय सम्बन्धी उपन्यास हैं । 'मुखर रात्रि' (1961) में आशापूर्णा देवी के औपन्यासिक शिल्प साधना के गहन स्तर परिवर्तन का निदर्शन मिलता है । जो कहानियाँ गृहस्थ जीवन के ऊँचे नीचे तथा समतल भूमि पर अति नाटकीय भावोच्छ्वास की अनुसारी थीं वही इस उपन्यास में एक भयंकर संभावना के चक्र में घूमते-घूमते एक अंलघनीय संघात से अपने आपको उद्घाटित और निःशेषित कर दी गई है । एक जीर्णभय ग्रस्त अभिजात्य परिवार की जीवन नीति विषयक कहानी इस उपन्यास का वर्णनीय विषय है। परिवार के विभिन्न व्यक्तियों की जुबानी इसका विवरण प्रस्तुत किया गया है । माता सुख लता अपने बेकार पति शचिपति और परिवार को अनेक सदस्यों में अपनी निजी दुर्बलता के कारण घृणा की पात्र बनती है । इस परिवार में प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक के विषय में घृणा और अवज्ञा का भाव पोषण करता है परन्तु बेटा-बेटी, नौकर-चाकर सभी सुखलता के विरूद्ध विद्वेष से भरे हुए हैं ।

प्रत्येक चरित्र ही इस नाटक के विभिन्न अंश के ऊपर अपने अपने

अनुभव और अनुमान को व्यक्त करते हैं । सुखलता के तीन बेटियों का चरित्र अपना अपना स्वातन्त्र्य लेकर सबसे अधिक स्पष्ट हुआ है । लगता है इस उपन्यास में लेखिका नई शक्ति और कला चेतना का परिचय देने में समर्थ हुई है । एक परिवार की स्नेह शून्य, विद्वेष कलुषित नीतिभ्रष्ट जीवन कहानी उपस्थापित की गयी है । प्रत्येक पात्र की उक्ति के भीतर से उनका चरित्र स्वातन्त्र्य सम्पूर्ण हुआ है । मनोविकार के बीजाणुपूर्ण पारिवारिक जीवन से इस तरह से उत्तेजनापूर्ण तथा नाट्यगुण समृद्ध संघात् को स्वाभाविक रूप से व्यक्त किया गया है ।

बुद्धदेव वसु के उपन्यासों में मनस्तत्व विश्लेषण की कमी नहीं है परन्तु सभी विश्लेषण कवित्वपूर्ण मनोभाव द्वारा नियन्त्रित हुए हैं । 'जे दिन फूटलो कमल' में श्रीलता और पार्थप्रतिम का सम्पर्क जैसे सहपाठित्व और रूचि साम्य तथा चारित्रिक संकोच के भीतर से प्रेम में परिणति होता है । यह मूलतः मनस्तत्वमूलक समस्या है परन्तु ग्रन्थ की काव्यमयता के लिए और उनका प्रेम उनके अनजाने ही क्रमवर्द्धित होने के कारण यह जैसे काव्य के ही एक महाकाव्य के रूप में प्रतिभाषित हुआ है । विवाह सम्बन्ध अस्वीकृत किये जाने के बाद ही पार्थप्रतिम के मन में प्रेम की प्रथम सचेतन उपलब्धि जागृत हुई । वास्तविकता के इस कठोर आघात से उसने श्रीलता को काल्पनिक सीमा से नारीत्व के आवेष्टन में स्थानान्तरित करके उसे सर्वप्रथम प्रिया के रूप में अनुभव किया है । उपन्यास के अन्त में पाठक की अनुभूति में गीति काव्य का स्थायी आभास रह जाता है ।

'एकदा तुमि प्रिये' उपन्यास में भी विश्लेशण की काव्यत्मकता प्रकटित हुई है। पलाश और रेवा के भीतर प्रेम की पूर्व स्मृति एक जटिल समस्या की रचना करने में समर्थ होती है। स्मृति का यथार्थ रूप से मृत्यु दूत की तरह होने पर भी गहरी अनुभूति के साथ एक निकट सम्पर्क है । इसलिए जीवन और मृत्यु के भीतर यह एक स्वर्णमय कड़ी होती है । इस उपन्यास में रेवा इसी स्वर्ण सूत्र के सहारे पुनः अपने प्रेम के नवयौवन को प्राप्त करना चाहती है परन्तु पलाश जानता है कि विग़त प्रेम की स्मृति मृत प्रेम को जीवनदान करने में असमर्थ है । उन लोगों का पुनर्मिलन एक अति अद्‌भुत संकोच और जड़ता की सृष्टि करता है । पलाश के मन में पूर्व स्मृति का कर्तव्य बोध अथवा करूणा के मोह प्रेम के अभिनय न करने का दृढ़ संकल्प प्रतिष्ठित है और रेवा के मन में एक अशुभ अस्पष्ट, आवेग और मोहभंग के भीतर सहानुभूति प्राप्त करने की एक व्याकुल आकांक्षा जागृत होती है । वह असहनीय रात्रि के अन्धकार में रेवा और पलाश के अन्तर्द्वन्द्व के बाद जलती हुई कामना की शिखा को बुझा देने में समर्थ होते हैं। अन्त में पलाश और रेवा दोनो स्मृति के असहनीय बोझ को छोड़कर मुक्त होना चाहते हैं। दोनों ने समझा है स्मृति का बोझ जीवन के नवीन निष्ठुर विकास के लिए बाधा मात्र है । अतीत का भग्नावशेष नवीन जीवन रचना का आधार नहीं हो सकता । अन्त में रेवा प्रणयिनी से उत्तीर्ण होकर मित्र में अवतरण करती है और पूर्ण स्मृति की पूर्ण ज्वाला से मुक्ति प्राप्त करने में समर्थ होती है । प्रेम के असहनीय उत्ताप के बदले एक शीतल शान्तिमय अनुभूति उसके हृदय को शान्त, सुशीतल बना देती है ।

'वासर घर' उपन्यास में मनस्ततत्व मूलक समस्या कुछ तेज है। यहाँ कविता की मुख्यता है। कुन्तला और पराशर के पूर्ण राग के भीतर इस समस्या का संकेत मिलता है परन्तु मोटे तौर पर यह उपन्यास मनस्तत्व में सहायता नहीं करता है बल्कि काव्य चर्चा में परिणत हो गया है ।

बुद्धदेव वसु का 'शेष पाण्डुलिपि' अलग प्रकृति के साहित्यिक के जीवनी-विषयक आधार पर रचित हुआ है । वीरेश्वर गुप्त बचपन से अशान्त और उच्छृंखल स्वभाव के व्यक्ति थे । वह नीतिबन्धन हीन आत्मरति के एकनिष्ठ साधक थे । बचपन में पिता के निष्ठुर अत्याचार पूर्ण शासन और माता की असहाय अवस्था ने उनके शरीर के रक्त प्रवाह में एक विद्रोह की ज्वाला का संचार कर दिया था। उसकी बाल प्रणयिनी और बाद में उसकी विमाता। विधवा गौरी के प्रति उसके कामनामय देहाकर्षण में उसके असामाजिक दुस्साहस का चरम निदर्शन यहाँ मिलता है। इस चिरपवित्र पारिवारिक सम्पर्क का मर्यादा उल्लंघन उसके भविष्य के जीवन की उच्छृंखलता की प्रस्तुति करता है । उसके पत्नी और सन्तानों के प्रति उसकी अवहेलना और दायित्व को न स्वीकार करना उसके प्रथम यौवन में ही दिखाई देता है । अपने परिवार के सम्बन्ध में उसमें जो घृणापूर्ण मानसिकता दिखाई है यही उसके लिए स्वाभाविक सिद्ध होती है । हृदय में स्वाभाविक स्नेह अथवा कर्तव्य बोध की अनुभूति को वह अपने बल से दूर हटा देता है । लगता है कि अत्यधिक आत्मकेन्द्रिकता के कारण ही उसके आचरण में ऐसी हीनता आ गयी है ।

उपन्यास में जिस विषयके प्रति गुरूत्व आरोपित हुआ है वह उसके कॉलेज जीवन के मित्र और अब ऑफिस में उसके बड़े अधिकारी प्रफुल्ल और उसकी पत्नी अर्चना के साथ उसके जीवन का तालमेल लेकर इस कहानी का सूत्रपात होता है। प्रफुल्ल उसको यमझता है और उसके जंगली मिजाज को शान्त तथा उसके विद्रोह को स्थिर और स्वस्थ करनेका प्रयास करता है । उसकी साहित्य साधना के मार्ग को भी मधुर बनाने के उद्देश्य से ही अपने परिवार के साथ उसे मिलाना चाहता था । वीरेश्वर के मन में मनुष्य के प्रति अनास्था इतनी प्रबल हो गयी थी वह अपनी मित्र की सहृदयता को अनुग्रह समझकर उसके प्रति विरोधभाव पोषण करने लगा और अर्चना के प्रति उसका आकर्षण एक सर्वध्वंसी निर्लज्ज देह कामना में प्रज्ज्वलित हुआ तथा स्नेह रचित समस्त परिवेश को तोड़कर उसने चूर-चूर कर दिया फिर भी प्रफल्ल पुनः विरेश्वर को अपने घर में आमंत्रित करके ले आया अन्त में एक रात को लापरवाही से मोटर चलाने के कारण दुर्घटना से पति-पत्नी की मृत्यु हो गयी और वीरेश्वर का मस्तिक विकार हुआ और अस्वाभाविक सम्पर्क के ऊपर पर्दा पड़ गया । इसके कुछ दिन बाद पागलखाने में आश्रय प्राप्त वीरेश्वर ने भी आत्म हत्या द्वारा अपने मनोविकार जर्जरित जीवन को समाप्त कर दिया ।

इन अध्याय समूहों को वीरेश्वर के आत्मनिष्ठ दृष्टिकोण से लिखा गया है । उसका चिन्तन, उसका अन्तर्द्वन्द्व, उसकी वासना कामना की निर्लज्ज अभिव्यक्ति

और दुविधाहीन विलास की कहानी का विवरण यहाँ दिया गया है । प्रफुल्ल और अर्चना की कोई स्वतन्त्र व्यक्ति सत्ता नहीं है।जो तीव्र आलोक वीरेश्वर के चेहरे पर डाला गया है उसी की छाया के नीचे इन लोगों का अस्तित्व प्रतिष्ठित है । उन लोगों की आचरण की कोई व्याख्या नहीं दी गयी है । ऐसा कि उनके आचरण जो स्वाभाविक हैं इस सम्बन्ध में वीरेश्वर सचेतन भी नहीं है । परन्तु वीरेश्वर का चरित्र उद्घाटित करने के लिए ही प्रफुल्ल और अर्चना के मनोभाव स्पष्ट करने की आवश्यकता होती है । प्रफुल्ल ने क्यों उसे इतनी अनुचित सराहना दी ? अर्चना ने क्यों उसके आलिंगन प्रतिरोध की चेष्टा भी नही की? और प्रफुल्ल - अर्चना के दाम्पत्य सम्पर्क का यथार्थ आधार क्या था? इन प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं मिलता है । परन्तु यह समस्त प्रश्न अत्यन्त प्रयोजनीयता रखते हैं? इसलिए समस्त घटना के प्रवाह में पागलपन का परिचय मिलता है।कम से कम साहित्यिक के रूप में वीरेश्वर के आचरण और चिन्तन में कुछ कौतूहल लाना उचित था । परन्तु उसकी आत्म सर्वस्वता ने उसके मानवीय दृष्टिकोण को आच्छन्न कर रखा था । इस सुशिक्षित और रुचिसम्पन्न दम्पत्ति के बीच में तृतीय व्यक्ति के रूप में वीरेश्वर की उपस्थिति की क्या आवश्यकता थी? यह प्रश्न पाठक को सोचने पर विवश करता है । इन कारणों से यह उपन्यास अनेक त्रुटिपूर्ण सिद्ध होता है । फिर भी एक विशेष तरह के उत्केन्द्रिक (जड़ से उखड़ा हुआ) साहित्यिक जीवन वाद का सुन्दर परिचय इस उपन्यास में मिलता है । संकीर्ण सीमा में आबद्ध रहने पर भी इसमें साहित्यिक के मनोजीवन का एक

सूक्ष्म अन्तर्दृष्टिपूर्ण विवरण दिया गया है । यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा।

'शोनपांशु' एक कृत्रिम आदर्श पर आधारित अनेक जटिल नियमों के जाल में अवरूद्ध शिक्षा प्रतिष्ठान की कहानी है।[1]

'तुच्छ' उपन्यास में उन्होंने एक विशुद्ध उपन्यासकार की सृष्टि को सम्भव करना चाहा । इसमें उन्होंने एक बालक के माध्यम से एक समग्र कुलीन परिवार के प्राचीन संस्कार शासित जीवनयात्रा का चित्र अंकित किया है और इस परिवारिक जीवन की पृष्ठभूमि स्वरूप कलकत्ते के प्राथमिक युग में नागरिक जीवन के साथ जो प्रतिवेशियों के प्रति सहृदय भाव का सम्मिश्रण था उसी को प्रक्रट किया है। अर्थात् इसमें व्यक्ति सत्ता से समाज सत्ता प्राधान्य प्राप्त करती है । घटित होती हुई कहानियों में बालक की अविकसित चेतना के भीतर से नासमझी के कारण एक नवीन भावमण्डन का परिचय युक्त हो जाता है । घर की गृहकर्त्री बालक की नानी, उसके उत्तराधिकारवंचित बेकार वाक्य सर्वस्व मामा और पड़ोसी परिवारों के नर-नारियों का आना जाना, नारियों की व्यक्त मनोवेदना यह सब मिलकर जीवन के विचित्र रूप बालक को मोहित करते हैं । वह आश्चर्य चकित चेतना से मोहित होकर अपनी क्षमतानुसार उसे ग्रहण करता है । इसलिए रचना में विस्मय मण्डित बालक की अनुभूत एक उज्ज्वल पट पर अनेक वर्णयुक्त रेखाओं द्वारा प्रतिफलित हुई है । इस उपन्यास

---

1. बंगसाहित्ये उपन्यासेर धारा - श्रीकुमार बन्धोपाध्याय ।

गुण समृद्ध रचना में भी प्रबोद्ध कुमार की मौलिकता स्पष्ट हो चुकी है । उनकी दार्शनिक उदानीसता के प्रभाव से यहाँ बालक की अनभिज्ञ विस्मय विमूढ़दृष्टि के भीतर प्रकाश के अवसर में अपरिपक्वता का परिचय मिलता है । बालक जीवन को अनुभव करता है विच्छिन्न चित्र परम्परा के भीतर जोड़ने की कड़ी न मिलने पर भी बालक द्वारा किसी तरह सब जोड़कर एक रूप देने का प्रयास इस उपन्यास में मिलता है । एक चीज क्यों जाता है ? दूसरी क्यों आती है? आनन्द और वेदना के खण्डित रूप आदि का अन्तर्निहित तात्पर्य उसके पास अज्ञात हैं यह सब बालक की बोधशक्ति को जाग्रत न करके उसकी कल्पना और अनुभूति के विस्मय रस से ही उपन्यास की पुष्टि होती है । प्रबोध कुमार के अन्यान्य उपन्यासो में जैसे 'गृह छाड़ा पथिक' उसी तरह यहाँ परिवार बोध हीन बालक दार्शनिक को प्रतीक रूप में कल्पित किया गया है।

प्रबोध कुमार के उपन्यास तथा कहानी में समाज और परिवार का जो चित्र अंकित किया गया है उसमें जो भी परिवर्तन दिखाया गया है सभी केवल व्यक्तिगत चरित्र का परिवर्तन नहीं है , एक समग्र युग के युगादर्श की परिसमाप्ति होती है । जीवन समालोचना के समस्त भाव विलास और आदर्शानुकरण को छोड़कर अस्वस्थ मनोविकार और चरम अध:पतन की गति को जीवन के केन्द्र के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है । युग के परिर्वतन और युग की परिणति का सामाग्रिक रूप

उनकी रचनाओं में प्रतिबिम्बित हुआ है । इस परिवर्तित जीवनादर्श के रेखाचित्रों को उन्होंने किस तरह की सूक्ष्म व्यंजना और गहरी अनुभूति के साथ अंकित किया है । वह पाठक मात्र जानते हैं।

मानिकवन्द्योपाध्याय के 'दिवारात्रिर काव्य' के प्रथम भाग 'दिनेरकविता' में हेरम्ब और सुप्रिया के सम्पर्क का आभास दिया गया है । सुप्रिया हेरम्ब से प्रेम करती है परन्तु अभिभावक के अनुशासन के कारण पुलिस विभाग के दरोगा अशोक से विवाह कर लेती है । पांच वर्ष विवाहित जीवन बिताने के पश्चात् उसका धैर्य समाप्त हो जाता है और हेरम्ब के साथ घर छोड़ने के लिए तैयार हो जाती है । हेरम्ब उसके आवेगपूर्ण प्रणय निवेदन में बिन्दुमात्र चंचल नहीं होता है और छ:महीने बाद अन्तिम निष्पत्ति करेगा ऐसी आशा देकर बहुत मुश्किल से सुप्रिया को रोक रखता है ।[1]

द्वितीय भाग 'रातेर कविता' में हेरम्ब ने आनन्द के प्रति आकर्षण अनुभव किया है। अना और मालती के प्रति सब तरफ से व्यर्थ और कलंकित प्रणय इतिहास और मालती के मनोविकास की अभिव्यक्ति के रूप में उसके आचरण में नीचता

---

1. बंगसाहित्ये उपन्यासेर धारा - श्रीकुमार वन्द्योपाध्याय ।

आ जाती है । इस तरह के परिवेश में आनन्द का सौन्दर्य विकसित हो उठा है । आनन्द का संकुचित संशयपूर्ण मुहूर्त के लिए प्रणय विकास इस परिवेश प्रभाव के कारण होता है । आनन्द के सम्बन्ध में हेरम्ब का कौतूहल उसके साथ प्रेम के क्षण स्थायित्व के और जीवन के चरम उद्देश्य के विषय में आलोचना करते ही आनन्द का एकाएक तीक्ष्ण विरोध आदि यह उनके प्रेम की अग्रगति का एक स्तर बन जाता है।

तृतीय भाग 'दिवारात्रिरकाव्य' में सुप्रिया का आविर्भाव हेरम्ब के मन में अन्तर्द्वन्द्व को पुनः जाग्रत करता है । सुप्रिया और आन्नद को पास-पास रखकर उनके भीतर का रूपक स्पष्ट हो उठा है । सुप्रिया अपने स्नेह, ममता, वेदना, और गृहरचना की अनिवार्य आवश्यकता को लेकर साधारण स्वस्थ मानव प्रेम का प्रतीक बन जाती है और आनन्द का भीरू, विह्वल गृहरचना के इच्छाहीन प्रणय धरती से आदर्श लोक को अधिक महत्व देनी वाली बन जाती है । हेरम्ब इन दो प्रणयों के बीच पड़कर अपनी आकांक्षा को निश्चित नहीं कर पाता है । अपने जीर्ण अवशिष्ट यौवन और अधमरे प्रेम को लेकर उसने आनन्द के मन के प्रथम वसन्तोत्सव के साथ अपने आप को मिलाना चाहा परन्तु सफल नहीं हो सका। पुनः उसके अपराधों द्वारा जटिल और आत्मविश्वास शून्य अस्वस्थ जीवन सुप्रिया के भयशून्य विद्रोह के साथ समान रूप

से कदम आगे बढ़ा नहीं पाया उसका जीवन इस चिरन्तन द्विधा द्वारा निरन्तर अभिभूत हुआ है ।

इस शिथिल आत्मविश्लेषण के अर्द्धसांकेतिकता के नीचे इस जीवन यात्रा के पश्चात् दो-एक तीव्र पाशविकता का निष्ठुर संकेत मिलता है वह वस्तुतः आश्चर्यचकित कर देने वाला है । दुःस्वप्न के पीछे मग्नचैतन्यलीन विभीषिका की तरह यह भीतर की थोड़ी प्रकाशित निष्ठुरता हम लोगों के सामने एक भयंकर संभावना का द्वार खोल देती है । हेरम्ब की पत्नी की आत्महत्या अशोक और सुप्रिया का भीति व्यंजनापूर्ण दाम्पत्य जीवन, पुनः अशोक की सुप्रिया को छत से ढकेलकर फेक देने की चेष्टा - इन समस्त दृश्यों और घटनाओं में स्वस्थ और विकार, जीवन और मृत्यु, प्रणय और ईर्ष्या का चित्र पाठक के सामने उज्ज्वल हो उठता है । उपन्यास के गठन और उपजीवग्य विषय एकाएक आधुनिक युग में जो विचित्र परीक्षा चल रही है । इस उपन्यास में उसी परीक्षा कार्य का एक उल्लेख योग्य प्रयास प्रतीक होता है।[1]

'आरोग्य निकेतन' (1952) ताराशंकर का एक उत्कृष्ट उपन्यास है। इसका उपजीव्य जीवन लीला नही हैं बल्कि जीवन-मृत्यु के संग्राम छन्द में रूपायित जीवन दर्शन का स्वरूप है । इसकी अनुभूति ऊपर के विचित्र जीवन चंचलता में

---

1. बंगसाहित्ये उपन्यासेर धारा - श्रीकुमार बन्द्योपाध्याय ।

सीमित नहीं हैं । जीवन की चरम परिणति और मृत्यु के गहन रहस्यमय स्वरूप अविष्कार में यह शक्ति नियोजित हुई है । इस उपन्यास में जीवन संघटन मृत्यु की छाया के नीचे अभिनीत हुआ है । इसका वाह्य विकास समूह मरण के महासंगम में आकर स्तब्ध हो गया है । इसलिए साधारण उपन्यास में जीवन कमल जिस तरह समस्त दल को फैलाकर पूर्ण विकसित होता है, जीवन का गतिवेग और सम्पर्क की जटिलता जिस तरह क्रम विवर्तित मार्ग से परिणति प्राप्त करती है यहाँ उसनें व्यापक बहुमुखी गतिवेग स्रोतस्विनी की तरह नाना शाखा - प्रशाखाओं में विभक्त होकर एक परम अवसान में आत्म संवरण किया है । इस उपन्यास में जीवन का लीलाछन्द और भाववैचित्र्य अनुपस्थित है और इसीलिए अनेक समालोचक इसमें ताराशंकर की शक्ति का संकोचन देखते हैं । परन्तु प्रत्येक उपन्यास में समस्या की प्रकृति के ऊपर उसके घटना सन्निवेश और जीवन आवेग का रूपायण निर्भर करता है । इस उपन्यास में जीवन का स्वच्छन्द प्रभाव मृत्यु के गिरिश्रृंग से निकलकर जलप्रवाह के रूप में प्रवाहित तथा आवर्तित हुआ है । समस्त जीवनावेग मृत्यु विभीषिका के सामने अपने स्वाभाविकता को खोकर पेण्डुल की तरह एक बार बाएँ एक बार दाएँ भागने का प्रयास करता है ।

जीवन और मृत्यु के भीतर संधि स्थापन के लिए चिकित्सा शास्त्र है। व्यवसायों के भीतर ऐसी गुरूत्वपूर्ण वृत्त और नहीं है । यह वृत्ति सम्पर्कित सदाचार

भिन्न जाति और विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों के विषय में और आचरण में उसके भेद की बातें वर्णित हुई हैं । ताराशंकर के उपन्यास में प्राचीन आर्युवेद और आधुनिक पाश्चात्य की चिकित्सा विज्ञान की तुलनामूलक आलोचना के द्वारा दोनों प्रणाली का अन्तर्निहित दृष्किोण और तात्पर्य भेद बहुत सुन्दर रूप से दिखाया गया है । आयुर्वेदिक चिकित्सा केवल बीमारी दूर करने के लिए नहीं है बल्कि इससे रोगी के लौकिक और पारलौकिक कल्याण स्वरूप जीवनादर्श की पुर्नप्रतिष्ठा की तरफ ध्यान दिया जाता है । यह अपराविद्या होने पर भी पराविघा की सगोत्रीय है, अध्यात्म भाव साधना के अन्तर्गत इसे सोचा जाता था । चिकित्सक का नाड़ी ज्ञान समस्त जीवन रहस्य के ध्यानोपलब्धि की तरह प्राप्त है ।

इस उपन्यास में एक तरह का मनःतत्व है । यह रोग विकार में कुटिल और संदिग्ध दिखाई देता है । रोग शय्या के चारो तरफ स्वाभाविक जीवन प्रतिवेश में भयावहता के आविर्भाव की आशंका से परिपूर्ण हो जाता है । आत्मीय और स्वजनों में पुनः तरह-तरह की मानस प्रतिक्रिया होने लगती है।कोई तो स्वेच्छा से मृत्यु का आहवान कर रहा है, कोई तो प्रतियोगी योद्धा की तरह मृत्यु के साथ शक्ति परीक्षा कर रहा है । कोई मृत्यु निश्चित जानकर जीवनमहोत्सव का पालन करके जीवन के अन्तिम बिदाई अभिन्दन के लिए अपने आपको को तैयार करता है अथवा जीवन के लेन-देन को चुकाकर मुक्त होने की इच्छा करता है । दूसरी तरफ जीवन महाशय

का अपना पुत्र वन विहारी, मति की माँ मंजरी, दाँतु घोषाल आदि जीवन को जकड़कर पकड़ने के लिए व्यस्त हैं ।

इस उपन्यास के नायक जीवन महाशय और नायिका पिंगल केशिनी मानव जीवन के गंभीर रहस्य केन्द्र में अधिष्ठिता मृत्यु देवी हैं । यहाँ नायक सम्पूर्ण रूप से नायिका के ऊपर निर्भरशील है । अन्यान्य चरित्र केवल मृत्यु रहस्य और नायक के व्यक्तित्व को उद्घाटित करने में सहायता करता है । घटना विन्यास की दृष्टि से जीवन महाशय को समस्त कहानी में प्रकट करने के लिए लेखक ने जिस उपाय का अवलम्बन किया है वह सर्वत्र रूप से सार्थक और प्रशंसनीय है । उपन्यास की यथार्थ नायिका पिंगल केशिनी है, समस्त उपन्यास में उन्हीं की छाया फैली हुई है।

यहाँ उपन्यासकार की जीवन साधना जीवन को अस्वीकार नहीं करती है। विषयवस्तु की अभिनवता और कल्पना की गम्भीरता की दृष्टि से यह उपन्यास एक नई दिशा का सन्धान करता है ।

इन महाग्रन्थों के पश्चात् ताराशंकर ने 'विचारक' (1956), 'सप्तपदी' (1957), 'राधा' (1958),'उत्तरायण' (1958), 'महाश्वेता' (1960), 'योगभ्रष्ट' (1960), उपन्यासों की रचना की । यह भी दिगन्त प्रस्तरी उपन्यास हैं ।

बनफूल के चतुर्थ पर्व की रचनाओं में 'स्थावर' (1951) और 'जंगम' (1943), एक दूसरे ही प्रकार की नवीन उपस्थापना रीति को विकसित करता है । मानव समाज की क्रमोन्नति के साथ-साथ उसका क्रम वर्द्धमान विस्तार और जटिलता मानव जीवन के इतिहास के अध्याय समूहों के भीतर उद्धृत हुआ है । पशु को वश में करना सस्य के प्रथम संग्रह और बाद में उत्पादन के द्वारा मानव ने अपनी खाद्य समस्या के चिरन्तन संकट का प्रतिरोध करने का प्रयत्न किया है । इस बीच प्रेम की लीला और भी मादकतापूर्ण, छलनामयी भ्रान्ति उत्पादन करने योग्य हो उठी है । क्षुधानिवृत्ति के साथ-साथ प्रेम का विचित्र गहरा आकर्षण क्रमशः मानव की नियामक शक्ति हो गया है । और इसके साथ मानव का अध्यात्मबोध अनेक विकृत रूप से प्रकाशित हुआ है । लोकान्तरित पूर्व पुरुषों की प्रेतात्मा ने मानव कल्पना के निकट आविर्भूत होकर उसके मन को अप्राकृत भय से संकुचित किया है । इस भय का मोह स्वतंत्र चिन्तन शक्ति द्वारा दूर करने के लिए बहुत प्रयास करना पड़ा है । क्रमशः अलौकिक शक्ति तन्त्र-मन्त्र इन्द्रजाल विद्या के अधिकारी के रूप में गोष्ठियों के दलपति अपने आपको प्रतिष्ठित करते थे । अनेक रहस्यमय क्रिया काण्डों में से मनुष्य ने दैव शक्ति का परिचय प्राप्त करने का प्रयास किया है । इस तरह अनेक कौतूहल पूर्ण कहानियों में से अनेक परिशीलित कल्पना का सार्थक प्रयोग हुआ है । यह रचना अन्धकारमय आदिम युग की जीवन यात्रा के ऊपर औपन्यासिक रीति का और तथ्य अनुसार विश्लेषण कुशलता के प्रयोग के उदाहरण के रूप में विशेष स्थान प्राप्त करती है ।

तीन खण्डों में सम्पूर्ण 'जंगम' उपन्यास बन फूल की औपन्यासिक सृष्टि का पूरा सार्थक रूप प्रतिष्ठित करता है । इस उपन्यास में आधुनिक जीवन यात्रा का विशाल दूर तक फैलाव और केन्द्रभ्रष्ट विश्रृंखल बहुमुखी स्वप्न संचार की तरह लक्ष्यहीन प्रचेष्टा, की कहानी विवृत हुई है। यह जैसे एक उद्भ्रान्त जीवन लीला का महाकाव्य है । एक सीमाहीन विस्तार के तट अभिमुखी तरंग समूहों का अकारण उठना और गिरना है । यह जीवन अभिनय आधे रास्ते में रूक जाता है। कोई गहरा अखण्ड गहरा अर्थ इसके भीतर रूपायित नहीं हो रहा है । विच्छिन्न दृष्य समूह इसी उद्देश्य को ऐक्य सूत्र से बांधने में असमर्थ हो रहा है । ऐसी असंलग्न दृश्य परम्परा एक विशाल उद्वेलित नानापथ से घुसी हुई सूखी और प्राणोच्छवास के परोक्ष परिचय के रूप में दिखाई देती है । ऐसा निर्बाध चलना अकारण शक्ति का प्रयोग और अपचय अनेक परीक्षा मूलक प्रयास की द्विधा, जीवन मत्तता के पुंज-पुंज आवेगोच्छवास दार्शनिक निरीक्षण का दृष्टि विभ्रमकारी आवर्त रचना करता है, यही आधुनिक जीवन है।

यह अस्थिर अशान्त हर चक्कर में आवर्त और आलोड़न को पैदा करने वाले उपन्यास के नायक शंकर के मस्तिष्क में प्रतिबिम्बित हुआ है । उसके अनुभूति केन्द्र में एक जीवन तात्पर्य बोध का उद्दीपक हेतु के रूप में दिखाई देता है । उपन्यास के समस्त चरित्र ही जैसे प्रत्यक्ष रूप में शंकर के सम्पर्क में आकर उसे

प्रभावित करते हैं ऐसा नही, बहुत ऐसे भी हैं जिनके साथ उसका कोई सम्पर्क नहीं है और उन लोगों के सम्बन्द्ध में उसे केवल परोक्ष ज्ञान है । ऐसे चरित्रों की अवतारणा से दृश्यों में वैचित्र्य सम्पादन होता है और आधुनिक जीवन के जटिल प्रकरणों को प्रतिष्ठित करने का अवसर मिल जाता है ।

जीवनकी दुर्बोध्यता की व्याख्या देने का प्रयास बनफूल ने नहीं किया। उदारदृष्टि से जीवन के जटिल विस्तार को लक्ष्य किया है । केवल मानव अन्तर की जटिलता को ही नहीं मुख्य रूप से समाज व्यवस्था के दुर्बोध्य और दुरतिक्रम्य प्रभाव को भी लक्ष्य किया है ।

गौरीशंकर भट्टाचार्य के 'इस्पातेर' 'स्वाक्षर' (1956) उपन्यास में घटनाक्रम का मुख्य तीन स्तर विभाग है - (1) विशुद्ध श्रमिक आन्दोलन विषयक, श्रमिक के साथ मालिक और श्रमिकों के विभिन्न सांगठनिक संस्थाओं में विरोध संघर्ष की कहानी। लेखक ने यहाँ उद्योग (शिल्प) जगत में थोड़े ही दिन पहले जो घटित हुआ था उसी का तथ्यपूर्ण विवरण दिया है । एक दूसरे के प्रति प्रीति सहयोगिता, संघर्ष, ईर्ष्या, दल के प्रति अनुगत रहना अथवा विश्वासघात करने में ही जीवन कहानी सीमित हैं ।

दूसरे स्तर में यांत्रिक जीवन के साथ व्यक्ति जीवन का एक अन्तरंग

सम्पर्क प्रतिष्ठित हुआ है । कई व्यक्तियों ने शिल्प प्रतिष्ठान में संघर्ष मूलक जीवन के साथ अपने व्यक्तिगत आशा - आकांक्षा, आवेग और इच्छा को इस तरह मिला दिया है कि उनके स्वतन्त्र अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती । अनिरुद्ध मल्लिक का पत्नी कन्या सहित पारिवारिक जीवन है और उपन्यास के नायक देवज्योति का जीवन जनसेवा और पारिवार निष्ठा दो हिस्सो में बंट गया है । वह परिवार में रहकर भी मुख्यतः श्रमिक कल्याण का व्रत लेता है ।श्रमिक आन्दोलन का नेतृत्व करता है ।

तृतीय स्तर में एसे अनेक नर नारियों के जीवन की कथा है जो शिल्प नगरी में रहने वाले हैं परन्तु उनका द्रुत छन्द और उत्तेजना के साथ कोई सम्पर्क नहीं है। विशाल शिल्प प्रतिष्ठान की छाया के नीचे उनके छोटे-छोटे आश्रय का निर्माण करके चिर-परिचित जीवन यात्रा की शान्ति गति का ही अवलम्बन किया है । माणिकपुर उन लोगों का भौगोलिक प्रतिवेश रचित करता है परन्तु उन लोगों के मन में लौहपुरी का जलता हुआ रूप जाग्रत नहीं होता है । सीतानाथ और दीन दयाल ये दोनों लौह नगरी के पुराने कर्मचारी के रूप में उनके यन्त्रबद्ध कार्यधारा के साथ सारे जीवन जगे हुए हैं ।

इस उपन्यास का प्रसार विशाल है।बहुमुखी कर्मप्रेरणा से उद्दीप्त असख्य चरित्रों की सक्रियता से प्रबल रूप से आन्दोलित और उसके विशाल घटना समावेश के बीच-बीच हृदय रहस्य प्रकटित करने के आकस्मिक चकाचौंध ने उपन्यास को आकर्षक बना दिया है ।[1]

---

1. बंग साहित्ये उपन्यासेर धारा - श्रीकुमार बन्धो पाध्याय ।

हिन्दी उपन्यासों की भाषा

डॉ0 धर्मवीर भारती कृत 'गुनाहो का देवता' और 'सूरज का सातवॉ घोड़ा' दोनो की भाषा में पर्याप्त अन्तर है । गुनाहों का देवता' उपन्यास की भाषा रोचक और रमणीय है क्योंकि इस उपन्यास की भूमि भावात्मक है । इस तरह की भूमि के लिए भारतीय जी ने वैसी ही भाषा का प्रयोग किया है जो रोमानी, चित्रांत्मक, इन्द्रधनुषी और फूलों से सजी हुई । इनकी भाषा में अनुकूलता, भाषा की समाहार शक्ति, कल्पना चातुर्य और नवनवोन्मेष शालिनी प्रतिभा है । इसमें लेखक की अन्तरात्मा का स्वर प्रणय की ताल ओर लय के साथ प्रतिध्वनित हुआ है । प्रयत्नपूर्वक भारती ने कठिन शब्दों को प्रयोग नही किया है । वह जैसे चाहते है अपनी वाणी को मोड़ देते है । भाषा में फारसी का मेल दिखाई देता है । भारती की भाषा में भाव झलकते है ।

'सूरज का सातवॉ घोड़ा' उपन्यास की भाषा सरल बोलचाल की है परन्तु इसमें प्रर्याप्त साहित्यिकता विद्यमान है । इस उपन्यास की प्रभावशीलता उसकी भाषा की सहज धार के कारण है । यह बोलचाल की भाषा, प्रवाह, ओज, सरसता, यथार्थता, सूक्ष्मता, स्पष्टता, साकेतिकता तथा ध्वन्यात्मकता आदि गुणों से युक्त है । इसलिए उन्होंने अपनी भाषा में संस्कृत, उर्दू, अंग्रेजी, तत्सम, तद्भव और ग्रामीण भाषा के शब्दों का उन्मुक्त प्रयोग किया है । कहीं कही पर भाषा को भारती जी विषय के अनुकूल आलंकारिक और प्रयोगात्मक बनाते चले है। उनकी भाषा पात्रानुकूल,विषयानुकूल,भावानुकूल,परिवेश के

अनुकूल आदि विशिष्टताओं से युक्त होती है । उनकी भाषा में रंगीन और रोमानी प्रभाव मोजूद है पर बीच-बीच में वह अत्यन्त सयत, अलकृत और तीखी हो जाती है । भाषा में बोल-चाल का प्रभाव बिना किसी बनावट के आता है जो उसे उपन्यास की विशिष्ट भाववस्तु के बहुत उपयुक्त बना देता है ।

फणीश्वर नाथ रेणु के उपन्यास 'मैला आँचल' में रेणु ने पुरानी तथा निर्जीव पडती हुई भाषा को आँचलिक सन्दर्भों और स्वरो से नई प्राणक्ता एवं अर्थवत्ता प्रदान की है, जनभाषा का नवीन सर्जनात्मक प्रयोगकर सम्भावनओं के नए द्वार खोले हैं तथा भाषा की दृष्टि से सर्जनात्मकता की मूल्यवान उपलब्धियों से भी साहित्य की श्रीवृद्धि की है । नए भाषिक रचाव की नई परम्परा एवं प्रयोग का श्रेय फणीश्वर नाथ 'रेणु' ओर इनके 'मैला आँचल' को है । इसमें बिहार के लोक जीवन के शब्द मुहावरे लोक-गीत, लोक-कथाओं की भरमार तो है ही साथ ही जीवन के विविध सन्दर्भो में अंग्रेजी शब्दों की मनमानी तोड़मरोड़ भी है । बंगाली, भोजपुरी आदि के शब्द बहुतायत प्रयुक्त हुए हैं । 'मैला आँचल' में आंचलिक भाषा का प्रयोग स्थानीय वातावरण को सजीवता प्रदान करने के लिए हुआ है । आँचलिक भाषा का प्रयोग तीन रूपों में हुआ है । लोकगीतों तथा लोकगीत कथाओं में, पात्रों के कथोपकथन में और उपन्यासकार द्वारा कहीं-कहीं वातावरण के सजीव स्वाभाविक चित्रण के लिए ।

'परती:परिकथा' में भी रेणु ने स्थानीय शब्दों का प्रयोग किया है। लोकगीत, लोकगीत कथाओं तथा लोकगीतों में तो बिहार की जनपदीय भाषा का प्रयोग है । पात्रों

के कथोपकथन में भी इसका प्रयोग किया गया है । ग्रामीण पात्रों के कथोपकथन मे हिन्दी शब्दों का अपभ्रंश रुप प्रयुक्त हुआ है । इसी प्रकार अंग्रेजी की शब्दावली के अपभ्रश का भी प्रयोग है । ग्रामीण पात्रों के कथोपकथन मे कुछ स्वाभाविकता है । परन्तु हिन्दी शब्दों के अपभ्रंश रूप खटकते है । बंगला वाक्यों का प्रयोग बंगला भाषा से अनभिज्ञ पाठकों को रसास्वादन नहीं करा सकता । वैसे समग्र रूप से 'परती:परिकथा' की भाषा प्रभावमयी तथा प्राणवत्ता से भरपूर है । उपन्यासकार के वर्णन की भाषा प्रभावशाली है । एक स्थानिक भाषा को इतनी सामर्थ्य से भर देना लेखक के शब्द कथावस्तु शिल्प का ज्वलंत प्रमाण है।

रेणु के अन्य उपन्यासों 'दीर्घतपा', 'कितने चौराहे', और 'जूलूस' सभी मे सर्वत्र उनकी भाषागत चमत्कारिता दृष्टव्य है । रेणु का सर्जक अतिशय संवेदनशील हैं । वह शब्दों से ध्वनियाँ उजागर कर, ध्वनियों से बिम्ब निर्माण करता है और गॉव के सामूहिक 'मूड' का पर्यवेक्षी बन जाता है । ग्राम मानसिकता की विभिन्न सश्लिष्ट पर्तो को पहचानने के क्रम मे 'रेणु' प्रयोगों की सीमा लांघ जाते हे और उनकी भाषा चमत्कार प्रदर्शन सी करने लगती है ।[1]

---

1. आँचलिक उपन्यास संवेदना और शिल्प : डॉ0 ज्ञानचन्द गुप्त, पृष्ठ 28.

मन्नू भण्डारी के उपन्यास 'आपका बंटी', की भाषा में बोलचाल का वही सहज सरल स्वर है जो प्रेमचन्द्र की कृतियों में मिलता है । किन्तु कुछ प्रसंगों में गम्भीर एवं परिष्कृत भाषा दिखाई देती है । कहीं-कहीं अलंकृत भाषा का भी प्रयोग उपन्यास में किया गया है । संस्कृत के कुछ प्रचलित शब्दों के अलावा काव्यात्मक भाषा और तत्सम शब्दावली का इस उपन्यास में कहीं भी प्रयोग नहीं हुआ है । क्योंकि मनु भण्डारी का लक्ष्य अपनी कृतियों को सर्वमान्य पाठक के लिए ही प्रस्तुत करना है । अलंकृति भाषा का एक उदाहरण दृष्टिव्य है - "आँखों के सामने दूर दूर तक फैले हुए हरे-भरे मैदान बिखर गये। बड़े-बड़े पेड़ और छोटी-छोटी झाड़ियाँ और बिजली के खम्भे और उनमें बंधे हुए तार । कभी लगता बस वह दौड रहा है, बाकी सब छूटते चले जा रहे हैं। उसने गर्दन निकाल कर देखा, सचमुच सभी तो पीछे छूट गये, कोई साथ नही दौड़ रहा, सब जहाँ के तहाँ खड़े हैं, बस वही आगे-आगे जा रहा है। फिर ऐसा लगता क्यों है कि साथ-साथ दौड़ रहे है?"

इस उपन्यास में खड़ी बोली प्रयुक्त हुई है । सरल सुबोध हिन्दी का प्रयोग है तथा कहीं भी दुरूह एवं अप्रचलित शब्दों का प्रयोग नहीं किया गया हे । उपन्यास में अंग्रेजी शब्दों और कहीं-कहीं अग्रेंजी वाक्यों की अधिकता सी है । उपन्यास में प्रचुर मात्रा में उर्दू, अरबी, एवं फारसी के शब्दो का भी प्रयोग हुआ है । लोकोक्तियों, कहावतों और मुहावरों का आर्कषक प्रयोग लेखिका ने किया है । उल्लेखनीय है कि 'आपका बंटी' की भाषा में सर्वत्र ही प्रभावमयता है और भाषा में सरसता, प्राणवत्ता

एवं प्राणंजलता आदि विशेषताओं के साथ साथ अनूठी प्रमविष्णुता भी है ।

'महोभोज' उपन्यास में भी बोलचाल की सहज और सरल भाषा का प्रयोग किया गया है। कहीं-कहीं गम्भीर एवं परिष्कृत भाषा दिखाई देती है किन्तु ऐसे स्थल संक्षिप्त और संख्या में कम हैं । उपन्यास में बिसू का पिता हीरा ग्रामीण भाषा का प्रयोग करता है इससे भाषा में पात्रानुकूलता दिखाई देती है । यह उपन्यास भी खड़ी बोली में लिखा गया है तथा साथ ही संस्कृत के कई प्रचलित शब्दों के साथ-साथ अरबी, फारसी तथा उर्दू के अनेकानेक शब्दों का निस्संकोच प्रयोग किया गया है । कहावतों, मुहावरों के साथ साथ अंग्रेज्री के शब्दों की अधिकता है किन्त, भाषा अस्वाभाविक और कठिन नहीं लगती बल्कि उसमें निजीपन और प्रवाहमयता दिखाई देती है ।

निमलवर्मा के उपन्यास 'वे दिन' की सबसे बड़ी सफलता उसकी भाषा शैली है । उनके भाषा की सक्षमता उनकी कहानियों मे पहले ही सिद्ध हो चुकी थी । इस उपन्यास में तो वह और अधिक निखरे रूप में सामने आयी है । प्रत्येक शब्द सूक्ष्म संवेदनाओं के चित्र उपस्थित करता है और सारा उपन्यास जैसा बोलता हुआ लगता है । भाषा के कारण जैसे उपन्यास प्राणवान हो उठा है । निर्मलवर्मा की भाषा हिन्दी भाषा की प्रकृति से प्रर्याप्त भिन्न है । अनेक अंग्रेजी और उर्दू शब्दों का बहुतायत से प्रयोग हुआ हे । बहुत सारे संवाद ज्यों के त्यों अंग्रेजी में रख दिये गये हैं । ये छोटे-छोटे

वाक्य विदेशी वातावरण के निर्माण मे बहुत सहायक हैं । हिन्दी ओर उर्दू में हल्के, सरल ओर सुबोध शब्द तथा अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग से जिस भाषा का प्रयोग हुआ है वह हिन्दी की सामान्य परम्परा से बहुत पृथक है । वाक्य योजना और अभिव्यंजना पद्धति हिन्दी के मुहावरे से बहुत दूर चली गई है । 'इनकी भाषा मे इनकी कहानियो जैसी सूक्ष्मता और सरल सीधी रेखाओं से हल्के हल्के प्रभाव उत्पन्न करने की क्षमता है । आधुनिक जीवन की घटना विहीन निरर्थकता भाव शून्यता और फीकेपन को भाषा बिना किसी उत्तेजना के व्यक्त कर सकती है। भाषा की अत्यन्त सूक्ष्म सवेदनशीलता में विशेष प्रकार की तराश है जो स्थितियों के हल्के हल्के परिवर्तन को मूर्त कर सकती है ।[1] इनके उपन्यासो में दिलचस्प वर्णन का आकर्षण जिस सीमा तक कम है भाषिक सर्जनात्मकता का रूप उतना ही उभरा हे । भाषा के जड़ स्थिर रूप से इन्होंने प्रयत्न पर्वक अपने को बचाना चाहा है ।

कमलेश्वर के उपन्यासो की एक प्रमुख विशेषता उनकी साफ सुथरी भाषा का प्रवाह एवं यथार्थता है । चित्रात्मक भाषा संजोना एवं वातावरण का यथार्थ चित्रण करने मे लेखक पूर्ण सफल है । आसपास के वातावरण के छोटे-छोटे विवरण भी उनकी सूक्ष्म दृष्टि से छूट नहीं पाये हैं ।

---

1. अधूरे साक्षात्कार नेमिचन्द्र जैन, पृष्ठ 184

'एक सडक सत्तावन गलियाँ' भाशा की दृष्टि से एक समर्थ उपन्यास है । वस्तुतः यह इसकी भाषा सामर्थ्य ही है कि उसम स्थित्यों का एक पूरा चित्र सा हमारे सामने उपस्थित हो जाता है और हम सब कुछ आँखों के सामने घटित होता महसूस करने लगते है ।'[1] कमलेश्वर के पास सही शब्दों में सही बात करने की कला है । वह उपन्यास मे भी कई स्थानों पर दिखाई देती है ।

'काली आँधी' उपन्यास में कमलेश्वर ने अत्यन्त तीखी और व्यंग्यात्मक भाषा के द्वारा भारत में सर्वत्र व्याप्त घृणित राजनीति पर करारा आघात किया है । इस उपन्यास में मानवीय संवेदना अत्यन्त सशक्त शब्दों में सूक्ष्मता से रूपायित की गयी है ।

भाषा की दृष्टि से कमलेश्वर के लघु उपन्यासों का महत्व और भी अधिक बढ़ जाता है । उनकी भाषा उनकी रचनाओ में जिस रूप में पयुक्त हुई वह यथार्थ के नये स्वरूप के कारण। ठोस भूमिका को लेकर चलने वाली कमलेश्वर की यथार्थ भाषा अत्यन्त स्वाभाविक एव सहज है । इनकी भाषा में अपनत्व और अनौपचारिकता है । कमलेश्वर ने भाषा को एक नवीन रूप दिया है । अर्थपूर्णता, विलक्षणता और विनोद व्यंग्य का प्रयोग कमलेश्वर की भाषा का वैशिष्ट्य है । लेखक की भाषा में सांकेतिकता और प्रतीकात्मकता के सुन्दर प्रयोग के साथ-साथ एक प्रकार का आवेग है । यथार्थ जीवन की सफलतम अभिव्यक्ति भाषा की समर्थता कमलेश्वर के उपन्यासों की प्रमुख

---

1 डॉ0 विरेन्द्र सक्सेना - मधुकर सिंह - कमलेश्वर, पृष्ठ 186

विशेषताएं है । इनके उपन्यासों की भाषा में अनेक प्रयोग और कलात्मक विविधता परिलक्षित होती है ।

कमलेश्वर के 'आगामी अतीत' में भाषा का एक आत्मीय बोध दिखाई देता है जो रचना को स्वाभाविक अभिव्यक्ति प्रदान करता है । उनकी भाषा में एक तरह की चित्रात्मकता है जो निखरे हुए रूप में है । 'आगामी अतीत' में सूक्ष्मता के साथ-साथ हल्की रेखाओ का भी प्रभाव है ।

लेखक के उपन्यास 'तीसरा आदमी' और 'लौटे हुए मुसाफिर' में संवेदनशीलता ओर संकेतिक भाषा प्रयुक्त हुई हे । 'तीसरा आदमी' की भाषा अत्यन्त सहज तथा मर्मस्पर्शी है । 'लौटे हुए मुसाफिर' मे आम आदमी की भाषा का प्रयोग है। 'समुद्र में खोया हुआ आदमी' में सामाजिक सन्दर्भों में नैतिक मान्यताओं के बदलने का यथार्थ चित्रण करने में भाषा सहज ही सहायक सिद्ध हुई है ।

कमलेश्वर ने हिन्दी उपन्यासों को नई भाषा दी - जिसका अपना मुहावरा है और अपनी अलग पहचान है । वर्तमान जीवन के घ्टनाहीन अलगाव, फीकेपन तथा भावशून्यता को उनकी भाषा बिना उत्तेजना के व्यक्त कर देती है । सूक्ष्म संवेदनशीलता के साथ सरल और सूक्ष्म मूर्तता उनकी भाषा की सबसे बड़ी विशिष्टता है। कम से कम शब्दों में सम्पूर्ण परिवेश को पूरे अर्थ के साथ व्यक्त करने का सामर्थ्य कमलेश्वर की भाषा में दृष्टव्य है ।

श्रीलाल शुक्ल कृत 'रागदरबारी' उपन्यास की भाषा यथार्थ के प्रत्यंकन मे पूर्णत: सक्षम है। इस उपन्यास की भाषा बड़ी पैनी और व्यंग्यात्मक है । पाठक लेखक के उबाऊ प्रसंगों, यथार्थ के सारहीन विवरणों को भी रोचकता के साथ बहाव मे पढ़ जाता है । शब्दोके अनन्त नवीन प्रयोग किए है, उनमें अर्थ की साकेतिकता और मार्मिकता को लेखक ने गूँथा है । शब्दों को विभिन्न प्रसंगों मे नवीन अर्थवत्ता मिलती है । अतियथार्थवादी दृष्टि और नव्य प्रयोग के अभिलाषी लेखक ने यत्र-तत्र विविध पयोग किये हैं । भाषा मे चुटीला व्यंग्य और चुलबुलापन है, कहीं-कही सीधे चोट करने की प्रवृत्ति हैं । दूर तक अर्थ की गूंज पैदा करने वाले वाक्य हैं । दो टूक ढंग से बात करते हुए गजब की वक्रता प्रकट होती है । शिवपालगंज के लोगो की भाषा में उखाड़-पछाड़, बेलाग चुभतापन, बेरोकटोक, अक्खड़पन, मुँहफट बेबाकपन स्पष्ट होता है । गाली-गलौज के साथ कुछ ग्राम्य जीवन की अनगढ़ भाषा का भी प्रयोग है । सनीचर, छोटे पहलवान, रुप्पन की भाषा वैशिष्ट्यपूर्ण है । गयादीन, वैद्यजी, की भाषा और अन्य पात्रो की भाषा का भी अन्तर दृष्टव्य है ।

'अलग-अलग वैतरणी' उपन्यास के भाषिक रचाव में शिवप्रसाद सिंह ने लोक-जीवन की लय को भलीप्रकार समझा है । आधुनिक नगरबोध उपन्यासो की भांति इसमें अंग्रेजी के शब्दों और मुहावरों के स्थान पर भोजपुरी के शब्द भण्डार को पात्रानुरूप प्रयुक्त किया गया है । इसकी भाषा को लेकर आँचलिकता का भ्रम हो सकता है ।

उपन्यास में स्थानीय रंग उभारने के लिए ही ऐसी भाषा का प्रयोग किया गया है। यदि ग्रामीण ग्राम्य-भाषा न बोलते तो अस्वाभाविक और अटपटा लगता । इन्होंने उपन्यास में लोकभाषा को खड़ी बोली में बखूबी मिला जुलाकर प्रयुक्त किया है । विवेकीराय ने 'अलग अलग वैतरणी' की भाषा के सम्बन्ध में विचार करते हुए ठीक ही लिखा है - 'प्रेमचन्द में यह दबे-दबे रूप में थी। उन्होंने खड़ी बोली का लोकभाषाकरण किया था और यहाँ लोकभाषा का खड़ी बोलीकरण किया गया है'।[1] शिवप्रसाद सिंह की भाषा के विषय में इतना स्पष्ट है कि उन्होंने बड़ी ताजी भाषा का सर्जनात्मक उपयोग किया है जिसमें अभिजातता दृष्टिगत नहीं होती । शिवप्रसाद सिंह की भाषा में यथातथ्य चित्रण की अद्भुत शक्ति है । विशेषताओं एवं अलंकारों के कुशल प्रयोग ने भाषा को प्राणवान बना दिया है । भाषा प्रयोग में स्वाभाविकता है ।

कृष्णा सोबती के उपन्यासों में सहज अभिव्यक्ति मिली है सशक्त और सार्थक भाषा को। भाषा को अपने ढंग से प्रस्तुतिकरण से साधारण कथ्य भी पाठक को भीतर तक स्पर्श करता है । कृष्णा सोबती के उपन्यासों में भाषा के क्षेत्र में विशेष प्रयोग शीलता दृष्टिगत होती है । इनके उपन्यासों की भाषा के अपने तेवर हैं। उसका अपना मुहावरा है । उनकी भाषा आज स्वयं उनके लिए ही एक मुहावरा और एक पहचान बन गई है । उनकी भाषा में एक तीखापन, अनूठापन और नशीला माधुर्य है।

---

1. औपन्यासिक समीक्षा एवं समीक्षाएँ - डॉ0 आदित्य प्रसाद त्रिपठी, पृ.147

'डार से बिछुड़ी' उपन्यास की भाषा का माधुर्य और करारापन पाठकों को अभिभूत कर देता है । इस उपन्यास में कई स्थलों पर बोलचाल की भाषा का बड़ा ही मनोहारी रूप दिखाई देता है । संवेदना के समावेश के कारण इस उपन्यास की भाषा काव्य से कहीं अधिक मधुर और कोमल लगती है ।

'मित्रो मरजानी' की सबसे बड़ी उपलब्धि नवीन शिल्प तथा इसकी भाषा का नव्य प्रयोग है । भाषा कहीं भी मिलावटी नहीं है । सरस युक्तियों और लहरियादार शब्दों द्वारा भाषा का इठलाता और खनकता हुआ रूप दिखाई देता है । सांकेतिकता और प्रभावात्मकता इनकी रचना में देखते ही बनती है । भाषा की खानगी इनकी रचना को बार-बार पढ़ने के लिए पाठकों को बाध्य किया है ।

भीष्म साहनी कृत 'तमस' पूर्ण निर्दोष कृति है, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता किन्तु वास्तविकता यह है कि कथाकार की दृष्टि अत्यन्त सजग है । लेखक लिखते समय प्रवाह में एक भी शब्द अनावश्यक नहीं आने देते । सांकेतिक शिल्प के अतिरिक्त से कहीं-कहीं बातें अधूरी या छूटी जैसी लगने लगती हैं । लेखक ने उर्दू, फारसी के शब्दों का जगह-जगह प्रयोग किया है उन्हें कोष्ठक में उसका अर्थ भी देना चाहिए था । उपन्यास में आँचलिक मुहावरों का प्रयोग किया गया है । इनमें प्रसंग सौन्दर्य निखरता ही है । भीष्म साहनी की भाषा बहुत सधी हुई है ।

शैली

'गुनाहों का देवता' (धर्मवीर भारती) में अन्तर्वेदना और अन्तर्कथा की दीप्ति के लिए आत्मविवाद की शैली को अपनायागया है । उपन्यास की कथनशैली अत्यन्त रोचक, रमणीय और प्रवाहमान है । यह उपन्यास नाटकीय शिल्प विधि का उपन्यास है । इसमें लेखक ने दृश्य विधान शैली अपनाई है । सीमित अभिरूचि, सीमित दृष्किोण, सीमित स्थान और सीमित समय का अंकन प्रस्तुत उपन्यास में हुआ है ।

'सूरज का सातवाँ घोड़ा' नवीनशैली में लिखा गया उपन्यास है । पुरानी कथा शैली को नये यथार्थ से जोड़कर उसे नवीन रूप दिया गया है । उपन्यास में विभिन्न शैलियाँ कहानियों के सामन अन्तःसम्बद्ध (अनूस्यूत) हैं जो अलग अलग करके नहीं देखी जा सकतीं । इसमें वर्णनात्मक, मनोविश्लेषण, रूमानी प्रतीकात्मक, नाटकीय, चित्रात्मक, आत्मकथात्मक आदि शैलियाँ प्रयुक्त की गई हैं । किन्तु मूलतः यह उपन्यास लोककथात्मक शैली में लिखा गया है । 'वस्तुतः लोक कथात्मक शैली उस शैली रूप को कहते हैं जिसमें मौखिक रूप से प्रचलित कथाओं को अन्तःसम्बद्ध करके प्रस्तुत किया जाता है।'[1] भारती को पौराणिक प्रतीकों से बहुत स्नेह है इसीलिए पुरानी धर्मकथा शैली को नए यथार्थ से जोड़कर उसे नवीन रूप दिया है । लोकजीवन के यथार्थ तथा अपने

---

1. सूरज का सातवाँ घोड़ा - पृष्ठ 80.

विचारों को व्यक्त करने के लिए सूरज के घोड़ों के पौराणिक प्रतीकों तथा धर्म कथा - वाचन की शैली को अपनाया है, क्योंकि यह लोक-जीवन की सुपरिचित और प्रवाहमयी शैली है । उपन्यास की कथा शैली व्यंग्यात्मक होने के कारण रोचक और सरस हैं ।

रेणु ने अपने उपन्यास 'मैला आँचल' में वर्णनात्मक शैली में वातावरण में यथा तथ्य चित्रण को बहुत महत्व दिया है । मैला आँचल में शैली का नयापन है । लेखक ने दृश्यों, गतियों, मनोदशाओं, घटनाओं का इतने इतने से सूक्ष्मांकन किया है कि लगता है कि एक चलचित्र हमारी आँखों के सामने उपस्थित किया जा रहा है । जिस प्रकार चलचित्र में स्थान विशेष के व्यक्तियों और वस्तुओं, जड़ और चेतन, लघु एवं दीर्घकाय सबको एक साथ प्रदर्षित करने की क्षमता रहती है उसी प्रकार की क्षमता रेणु की शैली में है । उपन्यास में पात्रों की जीवन विधि को सही रूप में चित्रित करने के लिए लेखक ने यथार्थवादी फोटोग्राफिक शैली का प्रयोग किया है । 'मैला आँचल की सांकेतिक सूक्ष्म व्यंग्यात्मक शैली उसके शक्ति ओर सौन्दर्य का एक बड़ा रहस्य है । लेखक ने वर्णनात्मक शैलियाँ विवेचनात्मक शैली मात्र से काम न लेकर कई प्रकार की शैलियों का संयोग कर दिया है ।

'परती-परिकथा' की शैली रिपोर्ताज तथा 'डाक्यूमेंटरी' चलचित्रों वाली शैली

है।यह आँचलिक उपन्यासों की अपनी मौलिक शैली है ऐसा लगता है सम्पूर्णकथा गाँव की शैली में लिपिबद्ध की गई है । रेणु की शब्दों के साथ क्रीड़ा करने की आदत उनकी शैली को एक तरफ नव्यता प्रदान करती है तो दूसरी तरफ उसे कथावाचक की शैली से जोड़ती है । रेणु की चित्रांकन शैली की एक विशेषता यह है कि जीवन के कतिपय तथ्यों और प्रसंगों को अत्यन्त स्पष्ट परन्तु अल्प रेखाओं में मूर्तता देते जाते हैं । इन रेखाचित्रों का गाँव के वृहत् कैनवास पर सामूहिक प्रभाव तो होता ही है - वैयक्तिक प्रभाव भी कम प्रत्ययकारी नहीं होता ।

मन्नूभण्डारी के 'आपकाबंटी' में बोल-चाल की सरस एवं सुबोध शैली का ही मुख्यतः प्रयोग हुआ है । यद्यपि यह उपन्यास मुख्यतया वर्णनात्मक शैली में ही लिखा गया है परन्तु प्रसंगानुसार संवादात्मक एवं चित्रात्मक प्रणालियों का भी प्रयोग किया गया है अनेक विगत घटनाओं का चित्रण स्मृत्यावलोकन (फ्लैश बैक) शैली की सहायता से किया गया है ।

मन्नू भण्डारी के इस उपन्यास में भी बोलचाल की सरस एवं सुबोध शैली ही प्रयुक्त हुई है । 'महाभोज' उपन्यास की अधिकाँश कथा वर्णनात्मक प्रणाली द्वारा ही गतिशील हुई हैं । साथ ही इसमें संवादात्मक शैली एवं स्मृन्यावलोकन शैली के भी कुछ आकर्षक उदाहरण हैं ।

इस प्रकार मन्नू भण्डारी की औपन्यासकि कृतियों में शैली वैविध्यता के दर्शन होते हैं ।

'वे दिन' (निर्मलवर्मा) लघु उपन्यास कथनशैली तथा संवेदनशीलता दोनों दृष्टियों से लघु उपन्यास क्षेत्र में सर्वथा नवीन, मौलिक तथा महत्वपूर्ण प्रयोग है । सम्पूर्ण उपन्यास आत्म कथात्मक शैली में लिखा गया है और लेखक आरम्भ से अन्त तक स्वाभाविकता बनाए रखने में सफल हुए हैं । उपन्यास की वर्णन शैली डायरी से सामीप्य स्थापित करती चलती है और सम्पूर्ण उपन्यास में आत्मकथा का बाँध कहीं बाधित नहीं होता। शैली अधिकतर सांकेतिक है । श्रृंगार प्रंसगों तथा शारीरिक आकर्षण आदि के वर्णन में लेखक ने शब्द संयम तथा सांकेतिकता का आश्रय लिया है । वाक्य योजना और शैली का नयापन ही निर्मलवर्मा की प्रयोग शीलता का आभास देने के लिए पर्याप्त है।

'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' (कमलेश्वर) उपन्यास यद्यपि विवरणात्मक शैली में लिखा गया है, पर उसका शिल्प और गठन बड़ा ही प्रभावी हुआ है ।

'डाक बंगला', में कमलेश्वर ने पूर्णदीप्ति पद्धति का प्रयोग करते हुए 'इरा' नामक युवती की आत्मबीती को आत्मकथात्मक शैली में बहुत ही प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है ।

'तीसरा आदमी' लघु उपन्यास बिना किसी बुनावट के सहज शैली में लिखा हुआ है । प्रथम पुरूष 'मैं' की शैली में लिखा यह लघु उपन्यास अनेक स्थलों पर अपने वैशिष्ट्य को लिए हुए है । आत्मकथात्मक शैली में लिखा हुआ यह उपन्यास कस्बाई और महानगरीय जिन्दगी की एक जुड़ती हुई कड़ी के रूप में सामने आता है । कमलेश्वर ने उपन्यास विधा को नया आयाम और रूप तो दिया ही साथ ही साथ नवीन कथ्य विषय और शैली भी दी ।

'रागदरबारी' (श्री लाल शुक्ल) हास्य व्यंग्यात्मक शैली के कारण अपना विशिष्ट स्थान रखता है । किन्तु उसकी व्यंग्यात्मकता बहुत आरोपित और अनावश्यक सी लगती है । लेखक ने उपन्यास में परिवेश को प्रमुखता दी है, अतः शैली में वर्णनात्मकता प्रचुर रूप में आती है । परन्तु लेखक ने इस वर्णनात्मकता को शक्ति से तथा मूर्तिकरण की कला से जीवंत बना दिया है । शैली में चुलबुलापन और चुटीलापन है । व्यंग्य का उपयोग विसंगतियों पर प्रकाश डालने के लिए सर्वत्र किया गया है । अखबार, विज्ञापन, लेक्चरबाजी, आदि के सम्बन्ध में यह व्यंग्य पैना हो जाता है ।

'अलग-अलग वैतरणी' की कथावस्तु को प्रस्तुत करने के लिए लेखक ने नई और पुरानी शैलियों का प्रयोग किया है । आरम्भ में ही कथाकार और पात्र परिचय प्रस्तुत करना पुरानी वृत्तान्त कथनशैली की विशेषता है । लेखक पुरानी शैली में ही अपने विषय को सीमित नहीं कर देता वह किसी प्रंसग, बात, अथवा पात्र के सहारे चेतना

धारा शिल्प का भी प्रयोग करता है । इस शिल्प के द्वारा स्मृति के प्रकाश में प्रस्तुत अतीत की घटनाएँ वर्तमान घटना को अधिक आकर्षक प्रभविष्णु, चुटकीला तथा रोचक बना देती हैं ।
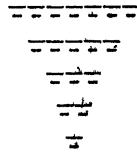
बंगला उपन्यासों की भाषा

'दुई बोन' (1933) रवीन्द्रनाथ का एक लघु उपन्यास है । इस उपन्यास का स्तर बहुत ऊँचा नहीं है । पुरुष के ऊपर मात्र जातीय और प्रिया जातीय नारी के प्रभाव की भिन्नता उपन्यास का प्रतिपाद्य विषय है । यह उद्देश्य संकीर्ण होते हुए भी एकनिष्ठ है । शर्मिला और उर्मिमाला - इन दोनों सहोदराओं को लेखक ने दो विपरीत जीवनदर्शों का प्रतिनिधिमूलक अस्तित्व दिया है । शर्मिला और उर्मिमाला परिमित जीवन धारा लेकर सन्तुष्ट हैं। व्यक्तिगत जीवन का अनियन्त्रित आवेग उन लोगों को बहा नहीं ले जा सकता । शर्मिला की लेखक ने नारी के मातृ जातीय प्रतीक के रूप में कल्पना की है । अतिरिक्त नियमितता के साथ क्रमशः अग्रसरित होती है । मातृत्व के आसन को पीछे रखकर एक कदम भी आगे नहीं बढ़ती है । उसने सारा जीवन शशांक को स्नेहमण्डित सेवा से सन्तुष्ट रखना चाहा । नौकरी के जीवन में शशांक ने इस स्नेह के शासन को एक सही विधि के रूप में मान लिया था। स्वाधीन व्यवसाय की अपरिमित उच्चाकांक्षा के दिनों में इस शासन और शासक का परिवर्तन हुआ है । शार्मिला की आग्रह पूर्ण सेवा उन्नति स्पृहा के लोह (कवच) वर्ग के आघात से प्रतिहत होकर लौट आती है । परन्तु शर्मिला का धैर्य सीमाहीन है वह उसी तरह सश्रद्ध प्रेमपरिपूर्ण हृदय से सहिष्णुता के साथ प्रतीक्षा करती रहती है । पति द्वारा लौटाई हुई सेवा से भी वह संकुचित नहीं होती बल्कि उसी सेवा में अपने आपको परिपूर्ण करने के लिए निरन्तर उत्सुक रहती है ।

परन्तु लेखक इससे सन्तुष्ट न होकर और कठिन अग्नि परीक्षा की व्यवस्था करते हैं । शर्मिला इस अवहेलना की परीक्षा में भी उत्तीर्ण होती है । पति की अन्य नारी के प्रति आसक्ति भी उसकी सहनशीलता की प्रसन्नता को विकृति नहीं कर सकी । इसी की जांच के लिए शर्मिला की बहन उर्मिमाला को प्रतिनायिका के रूप में अवतरित किया गया है । शर्मिला की परीक्षा के लिए उपन्यासकार ने शर्मिला को कठिन रोग शैय्या में शायितकर दिया है । पति की सेवा के लिए उर्मिमाला को बुलवा लेती है । उर्मिमाला अपने यौवन तरंगमय नियत चंचल सवभाव को लेकर शशांक के कठोर नियमित कर्म जीवन में एक विप्लवकारी (वैप्लविक) विश्रृंखला और उन्मादता ला देती है । उर्मि के संसर्ग से शशांक जीवन में प्रथम सरसता का आस्वादन करता है । उसके शान्त सेवाबद्ध जीवन की एक खिड़की जैसे खुल गई हो और एक नया हवा का झोंका उसके हृदय को नई उन्मादना से चंचल कर गया हो । इस परीक्षा में भी शर्मिला अक्षुण्ण रहती है । वह सनातन नियम के अनुसार कभी-कभी दीर्घ श्वास छोड़ती है । कभी-कभी आँसू भी छिपा लेती है । परन्तु यह लम्बी सांस और आँसू पाठक हृदय को द्रवीभूत नहीं करता । इसमेंकरूण रस की आर्द्रता नहीं है । यह जैसे केवल यान्त्रिक परीक्षा मात्र है । रोग शय्या में लेटकर शर्मिला एक तरफ आँसू पोछती है दूसरी तरफ पति को बहन के साथ में समर्पित करने के लिए तैयार करती है । इस बीच वह एकाएक रोक मुक्त होकर शय्या छोड़कर उठ बैठती है और पति के साथ अपनी बहन के विवाह का आयोजन करने में व्यस्त हो जाती है । आत्माहुति मातृत्व का चरम निदर्शन है । इसीलिए उसका चरम प्रमाण प्रस्तुत करना उसके लिए कठिन नहीं होता।

इस बीच उर्मिमाला के मन में प्रणय का आवेश छूट जाता है और वह प्रेम की यह क्रीड़ा त्यागकर इंग्लैण्ड चली जाती है । अर्थात् अन्त में मातृत्व की विजय होती है ।

शर्मिला जैसे मातृ जातीय प्रतीक है उसी तरह उर्मिमाला चिरन्तनीय प्रिया है । शिशु जैसे एक खेल को छोड़कर दूसरे खेल के लिए उत्सुक होता है उर्मिमाला भी उसी तरह हल्के कदम से शंशाक को छोड़कर इंग्लैण्ड चली जाती है । शशांक, उर्मिला और उर्मिमाला इन तीनों के बीच जो थोड़ी सी जटिलता की सृष्टि होती है उसमें विशुद्ध गम्भीरता नहीं मिलती । रवीन्द्रनाथ के जिन उपन्यासों में हृदय विश्लेषण की गहराई है, 'दुई बोन' उस श्रेणी में प्रतिष्ठित नहीं हो सकता ।[1]

रवीन्द्रनाथ के 'दुईबोन' उपन्यास की वर्णन शैली और भाषा की विशेषता भी पूर्ण आलोचित लघुत्व का समर्थन करता है । उपन्यास के भीतर वर्णित आख्यान समूह की भी कोई आकर्षक स्थित नहीं है ।

'घरे बाहिरे' उपन्यास से आरम्भ करके लेखक साधारण निर्दिष्ट मार्ग छोड़कर एक नये मार्ग का अवलम्बन करते हैं । 'दुई बोन' उसी मार्ग के सबसे नीचे आता है ।

---

1. बंगसाहित्ये उपन्यासेर धारा - श्रीकुमार वन्द्यो पाध्याय

आशापूर्णा देवी की भाषा में विशिष्टार्थक घरेलू वाक्याशों के प्रयोग से बंगाल के शिक्षित गृहस्थ जीवन और ग्राम्य भद्र जीवन का परिचय मिलता है । साधारण लोगों के भीतर जो एक सहज अनुभव की विशिष्टता है उससे भिन्न श्रेणी के भिन्न लोगों के विचित्र अनुभव और निष्ठा प्रतिष्ठित होकर सहज शब्दों द्वारा प्रस्फुटित की गयी है । इसलिए किसी भी वृत्ति के उच्चस्तरीय लोगों की भाषा मार्जित होने पर भी उसके स्वाभाविक गुण नष्ट नहीं हो जाते । चरित्र अपने वक्तव्य सर्वसाधारण के समीप रखते समय सचेत रहने के कारण उनके रूचि, बुद्धि और पहुँच के अनुसार शब्द समूह का प्रयोग करते हैं । वाक्यों की रचना बहुत सरल और विषय बोध के लिए अथवा परिस्थित चेतना के लिए, अथवा चरित्र अवतारणा के लिए जितनी आवश्यकता है लेखिका उतने ही शब्द प्रयोग करती है । शब्दों के आडम्बर को बढ़ाकर अवधारणा को विक्षिप्त कभी नहीं करती । इसलिए उपयुक्त शब्दों के सयंमित प्रयोग और संयत विशिष्टार्थक वाक्यांशों के प्रयोग तथा सरल वाक्यों के आवेदनपूर्ण भाव उनकी रचना की विशेषता बन गये हैं ।

लीला मजुमदार की भाषा में एक अनायास गति सम्पन्नता है । अनाडम्बर सरल और सहज बोध्य शब्दो के प्रयोग के कारण शब्द शक्ति की अपूर्व छटा परिवेश को नया और आकर्षक बनाने में समर्थ होता है । जिस स्तर की आलोचना की अवतारण होती है उसी स्तर की भाषा और हास्यरस अवतरित करने की क्षमता उनकी

रचना में बलिष्ठ रूप से मिलती है । लीला मजुमदार बंगला साहित्य क्षेत्र की अनेक महारथियों से सम्पर्कित हैं । चलित भाषा क्रमशः अति सहज साहित्यिक भाषा के केवल समान नहीं बल्कि आगे बढ़ने लगती है और लौकिक प्रयोग के प्राधान्य होने के कारण छोटे-छोटे शब्दों से पूरे भावचित्र, भावमूर्ति और भावसंचार की प्रतिष्ठा करने में समर्थ होती है । लीला मजुमदार ने एक विशेष सम्प्रदाय मुक्त अधिक उम्रवाली नारी समूह के मन के चित्र अंकित करके बंगला उपन्यास में और एक दिशा का उद्घाटन कर दिया। सरल भाषा में मनस्तत्व के गहरे भावों की अभिव्यक्ति कितने सरल रूप में हो सकती है इसका पूरा परिचय उनकी सही रचनाओं से और सभी रचनाओं के अंश से अनायास समझा जा सकता है । इन नारी समूहों के मन की संकीर्णता का पक्षपात का और एक ही तरह के चिन्तन की पुनरावृत्ति का आवर्तन जीवन के लिए विशेष दृष्किोण से देखने का चिराभ्यस्त गति की प्रवणता चित्रित की गयी है । फिर भी यह बात अस्वीकृति नहीं की जा सकती कि एक समाज परिवेश तथा एक ही तरह के चित्रों की पुनरावृत्ति से लेखिका की औपन्यासिक दृष्टि चिन्हित हो जाती है । मानव जीवन का कोई नूतन खन्डांश में निबद्ध होने पर ही उसका सम्पूर्ण विकास होने की सम्भावना है।

विभूति भूषण की भाषा अनाडम्बर शब्द प्रयोग से समृद्ध है । सरल और घरेलू वातावरण में जिस तरह से बातचीत किया जाता है । उसमें जितनी प्रायोगिक कुशलता रहती है वह सबगुण उनकी रचना में मिलते हैं । वाक्यांशों को विशिष्टार्थ

में प्रयोग करने की कला ने इनकी रचना को निपुण तीक्ष्णता प्रदान की है । वाक्य बहुत दीर्घ न होने के कारण बिन्दु-बिन्दु भाव अनायास संचित होकर सम्पूर्ण रूप को हृदय, मन और बुद्धि के ऊपर प्रतिष्ठित करने में अनायास समर्थ होता है । विभूति-भूषण लगभग समस्त जीवन भर साहित्यिक मुख्य पत्रिकाओं से जुड़े हुए थे और इन पत्रिकाओं के लिए उन्होंने तरह तरह की रचना की । पत्रिका की रचना में जो गति और समग्रता की आवश्यकता होती है वह गति और समग्रता इनकी रचनाओं के अंग स्वरूप हैं । मोटे तौर से कहा जा सकता है कि विभूति भूषण का उपादान उनकी सृष्टि के लिए उनके द्वारा ही संचित करके रखा हुआ रहता है । अपने परिपार्श्व को परिपार्श्व से ही चित्रित करते हैं ।

नरेशचन्द्र सेन गुप्त की भाषा में व्यंजनाशक्ति की प्रचुरता रहने के कारण पाठक की कल्पनाशक्तिकोयहसहज ही उत्तेजित करने में समर्थ होते हैं । हृदय के भीतर के विक्षोभ और आलोड़न को अपनी व्यजंना शक्ति के बल से ही संजीवित करते हैं और एक परिवेश रचना करने में समर्थ हो जाते हैं । अगर यह व्यंजनाशक्ति उनकी भाषा में नहीं रहती तो समस्त चित्र मलीन और प्रभावहीन हो जाते । इनके भाषा प्रयोग में एक बलिष्ठता आ गयी है जिस कारण घटना प्रवाह की दुर्दमनीय गति अपने आपको उत्तम रूप से प्रकाशित और प्रतिष्ठित करने में समर्थ होती है ।

नरेशचन्द्र के उपन्यास समूह से उनकी तीक्ष्ण मानसिकता और चिन्तनशील

विश्लेषण की निपुणता का परिचय मिलता है परन्तु रसानुभूत तथा भाव संचार की तीव्रता की कमी उपलब्ध की जा सकती है । उनके उपन्यास के चरित्रों में अन्तर्द्वन्द्व के चित्र समूहों में जटिलता है । परन्तु भावों की गंभीरता नहीं है । उनके घटना समावेश में कुछ शुष्कता मिलती है जैसे अतीत की पुनरावृत्ति मात्र प्रतीत होती है । कोई भी चित्र स्मृति के ऊपर उज्जवल वर्ण द्वारा मुद्रित नहीं हो जाती है । वर्तमान में वह केवल कुछ नवीन संकेत और मार्ग दर्शन के कृतित्व पर अधिकार कर सकते है । फिर भी इस नवीन प्रवर्तन द्वारा उन्होंने उपन्यास की सीमा को प्रसारित कर दिया है ।

चारू चन्द्र की भाषा सहज बोध्य और काव्य भाव से मुक्त है । कहानी रचित करते समय इनके शब्द प्रयोग स्पष्ट अर्थ को व्यक्त करने में समर्थ हैं । इनकी भाषा में एक सुदूरप्रसारी संयम है जो साहित्यिक कला के लिए एक विशेष गुण माना जाता है । इसी कारण उनके पाठको की संख्या भी कुछ कम नहीं हुई । उपन्यास के समस्त कथोपकथन और विचार वितर्क के भीतर लेखक के स्वाभाविक भाषा प्रयोग की निपुणता और शोभनता बोधका यथेष्ट अर्चन मिलता है ।

बुद्धदेव बसु की भाषा में काव्यमयता, शब्द प्रयोग में व्यंजना मूलक अभिव्यक्ति केवल सशक्त ही नहीं बल्कि गतिवेग को बढ़ाने वाली सिद्ध होती है । उनके विवरण में कही अतिरंजना नहीं मिलती । समस्त स्वाभाविक और सुपरिचित

शब्दों द्वारा अंकित किया जाता है इसलिए रेखाएं जो हैं वह भावों को केवल स्पष्ट ही नहीं बल्कि अधिक गहरा बनाने में समर्थ हैं । काव्यगुण होने के कारण इमेजरी(imagery) स्पष्ट और दृढ़ हैं । प्रतिदिन का जीवन भी इसीलिए छन्द सुषमा से भरा हुआ मिलता है । चरित्र रचना और चारित्रिक स्पष्टता में कमी रहने पर भी काव्यिक ऐश्वर्य बुद्धदेव की रचना को एक नवीन महिमा से मण्डित करता है ।

प्रबोध कुमार सान्याल की रचनाओं में एक अनायास गति है । इनकी व्यंजनामूलक रचना शैली केवल शब्द प्रयोग और शब्द गुण पर आधारित नहीं है बल्कि परिवेश रचना करने योग्य ध्वन्यात्मक शब्दों से रचित हुई है । सहज सरल प्रतिदिन की परिचित भाषा प्रयोग करके इन्होंने अपनी रचना में लौकिकता की विशेषता को प्रतिष्ठित कर दिया है इसलिए उनकी रचना समस्त श्रेणी के समस्त पाठकों के पास तक पहुँचने में समर्थ होती है ।

मानिक बन्द्योपाध्याय ने वैज्ञानिक सिद्धान्त को प्रायोगिक दृष्टि से साधारण मानव पर आरोपित करके चित्र अंकित किया है । इसलिए भाषा में सांकेतिकता और मनस्तत्व विश्लेषण की प्रक्रिया के पुंखानुपुंख विवरण में प्रत्येक शब्द का महत्व प्रतिष्ठित हुआ है । अपने अनुभूति सत्य की प्रतिष्ठा के लिए इनकी भाषा में संयम और परिमिति बोध का परिचय मिलता है । उनके विश्लेषण के क्षेत्र कहीं अदुभुद और

कही भयंकर हैं । इसलिए वह तात्क्षणिक भी है । प्रसारित प्रभाव में जिसका विश्लेषण सहज हो जाता है उनके लिए प्रसार की संभावना ही कम है । इसलिए विशेष अर्थपूर्ण शब्दों के प्रयोग से व्याख्यामूलक विवरण की प्रस्तुति उन्होंने की । ऐसी बलिष्ठ भाषाके कारण उनकी रचनामय और विषमय के वातावरण की रचना करने में सार्थक सिद्ध होती है ।

ताराशंकर वन्द्योपाध्याय ने अपनी रचनाओं में जिस अन्तर्निहित स्वरूप का उद्घाटन किया है उनकी भाषा भी उसी तरह अर्न्तनिहित को उद्घाटित करने में समर्थ है । उनके शब्द प्रयोग मेंऐसा तात्पर्य है जिससे एक समूचा वातावरण स्वतः निर्मित हो जाता है । विशेष लोकालय के केवल स्वरूप नहीं जनजीवन समेत सांस्कृतिक विशिष्टता को लिए हुए सामग्रिक अस्तित्व को प्रतिष्ठित करने योग्य भाषा उनकी रचना में मिलती है । विशेष - विशेष शब्द, विशिष्टार्थक वाक्यांश और स्थानीय मुहावरे अर्थद्योतक रूप में प्रयोग किए गए हैं । जिस जनजीवन, जनानुभूति, जनसंस्कृति और जनसंकेत का उन्होंने परिचय दिया है उसके साथ उनका निजी परिचय जितना दृढ है उतना ही गहरा है । इसलिए उनकी अभिव्यक्ति के प्रत्येक स्तर के वर्णन प्रयोग में उपन्यासकार की अनुभूतियों को भाषागत विशेषता से युक्त किया है । यहाँ प्रत्येक शब्द, प्रत्येक वाक्य अपने विशिष्ट अर्थ में प्रस्फुटित है । इस लिए समस्त अस्तित्व के वातावरण का और जीवन चरित्र का परिचय पाठकों के हृदय में मुद्रित हो जाना स्वाभाविक हो जाता है

विभूति भूषण वन्द्योपाध्याय की भाषा में एक संयम है । वर्णन की सरलता शब्द प्रयोग के नियत्रंण के कारण स्वच्छ बनती है। लेखक सदा सर्वदा जानतें हैं आरम्भ के बाद कहाँ रूकना है यह परिमितिबोधका ज्ञान उनकी रचना को केवल आकर्षक ही नहीं पाठक को भी विमोहित कर देता है । जहाँ प्रकृति और मानव हृदय की एकात्मकता से अभिभूत करने योग्य परिवेश रचित हुआ है वहीं साधारण मनु य का चरित्र निरूपण करने का प्रयास सर्वथा सार्थक हुआ है । इनकी भाषा में अपार सरलता है । वाक्य रचना में एक सहज बोध्य गुण विराजित हैं। दीर्घ वाक्य रचना करके किसी भी परिस्थिति को अबोध्य अथवा गुरूभारग्रस्त कभी नहीं बनाते हैं। उनका वक्तव्य सुनियन्त्रित शक और परिशीलित वाक्यों के प्रयोग से स्पष्ट हो उठा है ।

नारायण गंगोपाध्याय का विशिष्ट परिचय इनके द्वारा रचित उपन्यासों में मिलता है । इनकी भाषा में स्पष्टता और स्वच्छता के साथ सूक्ष्म अर्थ प्रयोग निर्दिष्ट भावों को स्पष्ट करने में समर्थ होता है । निरन्तर अध्ययन और अध्यापन में नियुक्त इस विद्धान ने अपनी भाषा को इस तरह से संयत किया है कि तथ्य, तत्व तथा दृष्टिकोण को स्पष्ट करने के लिए शब्द और विशिष्टार्थक अव्यय निरन्तर अनायास प्रयुक्त होता है । इसमें न केवल गति और छन्द संयमित होता है बल्कि भाव शब्द और वाक्य रचना नियंन्त्रित होती है ।

शेरदिन्दु वन्द्योपाध्याय की भाषा के ऊपर अधिकार और शब्दों को चुनकर वर्णन को नवीन कुशलता प्रदान करना प्रशंसनीय है। विशेषतया अपने भाषा प्रयोग में उपन्यासकार ऐसा छन्द ला देते हैं कि काव्य का सार्थक संकेत रचना को नवीन प्राण देने में समर्थ हो जाता है । दूर अतीत का रूपमयचित्र उन्होंने चित्रित किया है । हम लोगों का अतीत और छायामय होता है तो उसमें कायायुक्त कर देने की प्रत्याशा करना दुराशा है परन्तु शरदिन्दु नें इस दुराशा को भी आशा की सफलता में परिवर्तित कर दिया है ।

अर्जन करने का श्रेय शेरदिन्दु को लगातार प्राप्त होता गया । इनकी रचना रीति की विशेषता इनकी भाषा पर आधारित है । परिमित वाक्य प्रयोग विषय की अवतारणा के लिए स्वच्छ शब्दों द्वारा रचित वाक्यों और मंतामय संयोजन द्वारा प्रसाद गुण समृद्ध होने के कारण बंगला उपन्यास साहित्य में उनका एक विशेष स्थान बन गया है । इनकी रचना में घटमा प्रवाह ही चरित्र समूह का भाग्य नियन्त्रणकर्त्ता बना है।

बनफूल की भाषा में संक्षिप्तता और सुदूर प्रसारता है अर्थात् उनका शब्द चयन इतना अर्थानुकूल होता है कि पाठक हृदय शब्द के साथ-साथ अपनी कल्पना को गतिशील करता है और चित्र स्वतः ही स्पष्ट रूप से परिस्फुट हो जाता है । इसके

लिए बनफूल को लम्बी व्याख्या अथवा दीर्घ विश्लेषण करने की आवश्यकता नहीं होती, आधुनिक परिप्रेक्ष्य में भिन्न-भिन्न क्षेत्र के पारिभाषिक शब्दों के साथ साधारण मनुष्य जीवन की प्रक्रिया और प्रतिक्रिया का तालमेल बैठाकर उन्होंने नित्य व्यवहारिक भाषा को नवीनता दे दी ।

=======
=====
===
==
=
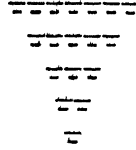
हिन्दी उपन्यासों के प्रमुख पात्र एवं चरित्र चित्रण

धर्मवीर भारती कृत 'गुनाहों का देवता' में प्रमुख पात्र चन्दर और सुधा है बर्टी, गेसू, पम्मी, विनती आदि गौण पात्र हैं परन्तु भारती के उपन्यास में सभी पात्रों को विकास का पूर्ण अवसर प्राप्त हुआ है । चन्दर और सुधा आदर्श में विश्वास रखकर एक दूसरे के प्रेम को पूजते हैं । पम्मी और बर्टी शुद्ध यथार्थ के धरातल पर है । गेसू शायराना अन्दाज रखती है और विनती आँचलिकता में पली हैं ।

चन्दर

चन्दर उपन्यास का मुख्य पात्र है । यह उस भावलोक का प्राणी है जहाँ वह सुधा के निश्छल विश्वास और सहज स्नेह में ही अपनी पूर्णता महसूस करता है । वह सुधा को अपना समझता है वह बेहद भावुक है । वह सुधा को अपने सम्पूर्ण सर्वस्व से प्यार करता है । भावुकता और वासना में उलझ कर भी व्यक्तित्व किस प्रकार उभर सकता है । यह चन्दर के माध्यम से व्यक्त हुआ है । चन्दर के स्वभाव, सुधा के प्रति उसके प्रेम, अपने दायित्व के बोध एवं प्रेम सम्बन्ध में एक उच्च आदर्शात्मक भावना तथा भावुकता है इसी लिए वह सुधा से विवाह कर लेने का आग्रह करता है । सुधा का विवाह होने पर उसका मूक_

हृद्रय रो पड़ता है । सुधा का प्यार चन्दर के लिए धूप-छाँव है । सुधा उसकी सबसे बड़ी अभिलाषा है । वह उसे तन मन धन से चाहता है । उसका प्यार कहीं भी स्वार्थ के अधीन नही है ।

चन्दर पवित्रतावादी आदर्श का हिमायती है इसलिए वह सुधा को पास लाकर भी दूर रखता है, क्योंकि वह देवता है । वह सुधा को खोकर भी सामर्थ्यवाला बना रहना चाहता है । लेकिन उसका अन्तर्मन उसके प्रति विद्रोह कर उठता है । क्योंकि मूल प्रवृत्तियों को अधिक देर तक झुठलाया नहीं जा सकता है । मन की कुण्ठा उसे एकदम विक्षुप्त कर डालती है और वह पम्मी के रूप सौन्दर्य के प्रति आकर्षित हो जाता हैं । यह मानवोचित रूप से सहज एवं स्वाभाविक व्यवहार है । फलस्वरूप वह सुधा से एकान्त में मिलने पर अप्रत्याशित आचरण करता है जिसके लिए उसका अन्तर्मन उसे धिक्कारता है ओर सुधा जब दो दिन के वापस आती है तो चन्दर उससे माफी माँगता है । उसे अहसास होता है कि सुधा उसके चरित्र के लिए कितना आवश्यक व्यक्तित्व रखती है । चन्दर के निःस्वार्थ प्रेम में पाप और पुण्य का भी झगड़ा नही है । एक स्थान पर सुधा कहती भी है - 'मेरे बिना तुम केवल शरीर रह जाते हो।' चन्दर सुधा से कहता है कि मैं तुम्हारे व्यक्तित्व के सहारे ही ऊँचा उठ सकता हूँ तुम्ही मेरी शक्ति हो। चन्दर ने जो हृदय पाया उसमें रक्त की उष्णता है, प्यार की सम्वेदना है और सुधा का स्नेह है । जिसे स्नेह की आँखों से देखना ही उचित होगा । भारती का चन्दर

नि:सन्देह बहुत ही प्रभावित करने वाला चरित्र है। जिसे पाठक उपन्यास समाप्त करने के बाद भी याद रखता है ।

सुधा

सुधा उपन्यास का मुख्य स्त्री चरित्र हैं यह डॉ0 शुक्ला की इकलौती सन्तान है जिसने जीवन के हर आयाम में स्नेह ओर सुख पाया है । जो वह पाती है वह सब कुछ चन्दर को दे डालती है । सुधा और चन्दर में बड़े निश्छल सम्बन्ध है । वह चन्दर का हर कहना मानती है और मन की हर बात चन्दर को बताती है वह उससे पूछे बिना कोई काम नही करती । चन्दर के शब्दों में ऐसा क्या चमत्कार है । इसे सुधा स्वयं भी नही जानती आरम्भ से ही वह चन्दर के स्नेह शासन में रही है और उसे ही सब कुछ समझती है । उसे चन्दर की बड़ी चिन्ता रहती है । वह ऐसा कोई भी काम नही करती जो चन्दर को बुरा लगे । कब से वह अपने सब कुछ पर चन्दर का अधिकार मानने लगी यह वह भी जानती, चन्दर उसका अपना है । यहाँ तक की प्यार जैसी बात भी वह चन्दर से ही पूछती है - "चन्दर हमने कभी किसी से प्यार तो नहीं किया न?"[1]

---

1. गुनाहों का देवता, पृष्ठ 76.

चन्दर ही सुधा के प्राणों की एकमात्र गति है । वह अपनी आत्मा के रेशे-रेशे से चन्दर को प्यार करती है । सुधा बस चन्दर की है । उसके अन्तर्मन में सिर्फ चन्दर ही चन्दर है । सुधा और चन्दर एक सिक्के के दो पहलू है । विवाह चन्दर का आदेश था जिसका उल्लघंन करना उसके वश से बाहर था । सुधा चन्दर के प्रति समर्पित है । पर इस अर्पण में भी कितनी मधुरता, स्नेह और सौन्दर्य है। चन्दर से दूर वह अपना अस्तित्व अपूर्ण मानती है । अपने व्यक्तित्व को वह चन्दर की आत्मा का एक खण्ड समझती है जो अलग होने पर भी जन्म जन्मान्तर तक उसके चारों ओर चक्कर लगाता रहेगा । चन्दर सुधा की आत्मा है । उसकी अन्तिम सांस भी चन्दर का ही नाम लेते-लेते अवरूद्ध होती है ।

सुधा के चरित्र में भारती ने, भावुकता और, संस्कारो का निदर्शन किया है। सुधा हमारे अतीत के संस्कारों को पुनजीर्वित कर पाने में समर्थ है । सुधा बस सुधा है जिसमें प्रेम है - प्रेम जिसमें चित्त की स्थिरता और दृष्टि की एकता का होना नितान्त आवश्यक है । सुधा का यह रूप पाठक को अपनी ओर पूरी तरह आकर्षित करता है। इस चरित्र के साथ पाठक वर्ग की पूरी सहानुभूति रहती है । सुधा का करूण अन्त कितने ही पाठकों को रूला देता है । काफी दिनों तक यह चरित्र पाठकों को प्रभावित किए रहता है ।

'सूरज का सातवाँ घोड़ा' उपन्यास में कुल मिलाकर 12 पात्रों की योजना की गई है । इन 12 पात्रों में 9 पुरूष पात्र और 3 स्त्री पात्र । पुरुष पात्रों में माणिक, महेसर और तन्ना प्रमुख है । वस्तुतः उपन्यास के पात्र उद्देश्य के साधन के रूप में प्रयुक्त हुए है । सभी पात्र निम्न मध्य वर्ग के और विविध प्रकार के है, जो प्रतिनिधिक रूप में चित्रित किए गए हैं । उपन्यास में तीन नारियों को स्थान मिला है। ये तीनों ही निम्न मध्यवर्ग की है । तीनों नारी चरित्रों की प्रस्तुति, विभिन्न पहलुओं, स्तरों तथा पक्षों के आधार पर की गई है । ये तीनों ही नारियाँ यद्यपि समाज के विविध पक्षों का उद्घाटन करती हैं तथापि जमुना उनमें प्रमुख हैं; क्योंकि आज के समाज में एक बड़ा नारी समूह जमुना की परिस्थिति में है ।

माणिक मुल्ला

लेखक ने माणिक को इस उपन्यास में कथाकार के रूप में प्रस्तुत किया है। उनके जीवन के अनुभवों को लेखक ने विषयानुरूप शैली में ढाला है । कथा को यह रूप देने का सारा उत्तरदायित्व माणिक मुल्ला को है । कहानी पर माणिक का पूर्ण अधिकार है । कहानी कहने की बड़ी सहज रूचि माणिक में है । राजनीति और प्रेम इनके जीवन के अभिन्न अंग है । इनका व्यक्तित्व बहुमुखी है । सभी कहानियाँ और पात्र माणिक द्वारा संचालित है । माणिक परिस्थितियों के अनुसार कभी अपने को ढालते हैं तोकभी उससे स्वयं को अछूता भी रखते हैं । माणिक मध्यम वर्गीय व्यक्ति है।

वे निर्वैयक्तिक न होकर सामाजिक तथा वर्गगत प्रतिनिधिक पात्र हैं । अतः उनके जीवन में आने वाली समस्याएं वैयक्तिक ही नहीं बल्कि सामाजिक भी है । उनके जीवन का केन्द्र-बिन्दु है - प्रेम । माणिक के जीवन में तीन नारियाँ आती है। जमुना से प्रेम करके माणिक उसे अन्त तक उसे निभा नही पाते, लिली से उनका प्रेम रूमानी है तथा सती से लोकलाज के कारण अपनी आन्तरिक प्रेम भावना का प्रदेर्शन नही कर पाते । माणिक जीवन तथा समाज के प्रति आस्थावान भी है। उन्हें पुरातन परम्पराओं रूढ़ियों तथा वंश मर्यादा के प्रति घृणा है जिसका मूल कारण वे आर्थिक विषमता को समझते हैं। आने वाली पीढ़ी के प्रति माणिक का दृढ़ विश्वास है । माणिक ने पहले कहानियों को भोगा है, फिर श्रोताओं को दिया है । अतः माणिक के निष्कर्ष बड़े प्रभावशाली और महत्वपूर्ण होते हैं । समाज की यथार्थता को स्पष्ट करने के लिए माणिक का चरित्र अपने आप में पूर्ण है । सभी कहानियों के नायक माणिक स्वयं हैं । माणिक हमें वास्तविकता से परिचित कराते हैं ।

तन्ना

तन्ना उपन्यास का दूसरा प्रमुख पात्र हैं यह भी मध्यमवर्गीय जीवन की कटुता का शिकार है । यद्यपि यह चरित्र का उपन्यास में केवल दो ही कहानियों में चित्रित है फिर भी उसका व्यक्तित्व काफी सशक्त हैं वह कल्पना नही बल्कि यथार्थ के धरातल पर जीता है । तन्ना सामान्य परिवार का युवक है । उस परिवार में अर्थाभाव

है, दु:ख और समस्याएं हैं तथा रुदन है । तन्ना सच्चरित्र और कर्त्तव्य परायण है । उसमें ईमानदारी और नैतिकता है । अपने सिद्धान्तों आदर्शों पर वह अडिग रहता है । वह टूट सकता है झुक नही सकता । तन्ना सीधा साधा विनम्र और चरित्रवान है किन्तु साहसी नही । सामाजिक विकृतियों, कुरीतियों, झूठे विश्वासों के प्रति साहस के अभाव में ही वह विद्रोह नही कर पाता ।

जमुना

जमुना मध्यमवर्ग का स्त्री चरित्र है । पिता बैंक में साधारण क्लर्क हैं । घर में आर्थिक सुदृढ़ता नही है अभाव ही अभाव है इसीलिए जमुना को उचित शिक्षा भी नही मिल पाई । पड़ोसी युवक तन्ना से उसका अनजाने में प्रेम हो जाता है । परन्तु दहेज के अभाव के कारण वह विवाह बन्धन में नही बँध पाती । इस प्रेम और परिस्थिति स्वरूप विवाह बद्ध न हो पाने की दशा में उसके मन में निराशा और अनास्था के साथ ही वासना पूर्ति के अनैतिक साधनों के बीज अंकुरित होने लगे । जमुना अपनी वासना की पूर्ति किशोर माणिक से करना चाहती थी । किन्तु सफल न हो सकी । माणिक द्वारा उसकी प्रेम पिपासा तो शांत होती है किन्तु काम पिपासा नहीं । तन्ना से विवाह न होने पर उसका विवाह एक अत्यन्त वृद्ध और धनी जमींदार से होता है । यह उस वृद्ध जमींदार का तीसरा विवाह है । कुछ दिनों के बाद जमुना को मातृत्व की

भावना जागृत होती है जो स्वाभाविक भी है । क्योंकि मातृत्व ही नारी की सम्पूर्णता है। इसकी पूर्ति वह रामधन नौकर से करना चाहती है यहीं से वह अनैतिकता की ओर बढ़ती है । वह धर्म की आड़ में काम पिपासा की पूर्ति करना चाहती है । पति की मृत्यु के बाद तो उसका पूर्णतः नैतिक पतन हो जाता है । जो धर्म उस के लिए साध्य था वही साधन बन जाता है । कर्मकाण्ड और धर्म में आस्था रखकर उसने सन्तान की कामना की, किन्तु इनसे अपना मनोरथ पूर्ण होते न देख मानसिक संस्कारवश अनैतिकता का सहारा लेने लगी । वैधव्य जीवन में वह बाहर से जितनी धार्मिक है आन्तरिक दृष्टि से उतनी ही पतित । जमुना का चरित्र मध्यमवर्गीय समाज के नारियों की दहेज के अभाव में विवाह न होने, अनमेल विवाह, और वैधव्य के कारण दुर्दशा. उसके कारणों तथा परिणामों का प्रतिनिधित्व करता है । जमुना का चरित्र चित्रण यथार्थ और सजीव है ।

फणीश्वर नाथ रेणु ने 'मैला आँचल' में पूर्णिया अँचल के ग्रामीण जीवन का समग्र चित्रण किया है और इसी कारण पात्रों की संख्या अधिक है । सामूहिक चरित्र चित्रण इस उपन्यास की विशेषता है । सभी प्रकार के पात्र इस उपन्यास में हैं । डॉ0 प्रशान्त मैला आँचल का मुख्य चरित्र है । उसके माध्यम से उस अँचल में फैले लाखों चरित्रों की विशेषताओं का परिचय मिलता है । पुरुष पात्रों में डॉ0 प्रशान्त के अतिरिक्त प्रमुख रूप से इनका चित्रण हुआ है । बालदेव, बावनदास, तहसीलदार, विश्वनाथप्रसाद मल्लिक, रामकिरपाल सिंह, खेलावन सिंह यादव, वासुदेव कालीचरन, महन्त सेवादास, महंथ

रामदास, खलासी, सुमरितदास और प्यारू । स्त्री पात्रों के कमला, ममता, मंगलादेवी की लक्ष्मी दासिन, गणेश की मौसी, रामपियरिया, पुलिया और बालदेव की मौसी ।

नेमिचन्द्र जैन का मत है कि 'मैला आँचल' का एक भी पात्र ऐसा नही है जिसे क्लासिक कहा जा सके । पात्र लेखकीय आवश्यकता का निर्वाह करने आता है और चला जाता है । कोई पात्र आदि से अन्त तक आवश्यक है तो कोई मात्र कुछ क्षण ही । रेणु के नारी पात्रों को चरित्र शरत् के उपन्यासों की नारी का है जो अपनी आस्था पर अडिग होकर आगे बढ़ती है और दूसरों को आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करती हैं ।

डॉ0 प्रशान्त

डॉ0 प्रशान्त इस उपन्यास के प्रधान पुरुष पात्र हैं । डॉ0 मेरीगंज में एक नई रोशनी आने का मार्ग बनता है । वह गाँव में आता है बीमारियों का निदान ढूँढने, वैज्ञानिक शोध करने किन्तु यहाँ की जिन्दगी के रस में वह धीरे-धीरे घुलने लगता है । डॉ0 प्रशान्त और विश्वनाथ प्रसाद की क्वाँरी बेटी कमला एक दूसरे की ओर आकर्षित होते हैं और विवाह के बिना ही चरम सुख को प्राप्त करते हैं । कमला भी पिता के विरोध के बावजूद प्रशान्त को हृदय से चाहती है । डॉक्टर कमला, मौसी और गणेश के प्यार से अभिभूत होकर गाँव के रोगों की जड़ों का निदान करता है । गाँव की फटेहाली पर

अन्दर ही अन्दर अनुत्तरित् प्रश्नों की यातना को डॉक्टर झेलता है । डाक्टर का चरित्र कदाचित् लेखक की अपनी भावनाओं का सर्वधिक प्रतिनिधित्व करता है । उसके व्यक्तित्व को प्रेमचन्द के आदर्शवादी साँचे में ढालकर रेणु ने सामाजिक परम्परा के उपन्यासों से प्रभावित होने का प्रमाण दिया । डाक्टर का चरित्र प्रेमचन्द्र के उपन्यास-नायकों से साम्य रखता है । डॉ0 प्रशान्त कथा नियोजन में विशिष्टता तो प्राप्त करते ही है साथ ही बेबसी और भूख की दुनिया में अभिजात्य वर्ग का होकर भी पाठकों की ने सहानुभूति अर्जित करते हैं । डॉ0 के चरित्र चित्रण ने कृति के अधिक पृष्ठ घेरे हैं। उसमें प्रगतिशील विस्तृत दृष्टिकोण तथा मानवीय सम्वेदन की गहराई का सुन्दर समन्वय है।

बावनदास

बावनदास मैला आँचल का अविस्मरणीय चरित्र हैं । इस चरित्र को लेखक का बड़ा ममत्व मिला हैं । उपन्यास में बावनदास का चरित्र बड़ा ही दर्द भरा और सजीव चित्रित हुआ है । बावनदास महात्मा गांधी का ही प्रतिरूप हैं और यह प्रतिरूप है देश के उन कांग्रेसी नेताओं का जो पद के लोभ में नही पड़े और महात्मा गाँधी का अनुकरण करते रहे । इस चरित्र के विकास द्वारा पता चलता है कि महात्मा गांधी जिन सिद्धान्तों के लिए जिए और मरे उसकी हत्या उन लोगों के द्वारा हुई जिनका कर्तव्य उन सिद्धान्तों की रक्षा करना था । बावनदास के माध्यम से लेखक ने राजनीतिक जीवन और उसके खोखलेपन का खाका खींचा है । राजनीतिक क्षेत्र में यदि महात्मा गांधी का बलिदान सदैव याद किया जायेगा तो साहित्य के पन्नों पर बावनदास का बलिदान सदैव अमिटाक्षरों में अंकित रहेगा ।

रेणु के परती परिकथा उपन्यास में सामूहिक चरित्र चित्रण के कारण पात्रों की संख्या 90 से भी अधिक हो गयी है । जिसमें 65 के लगभग पुरूष पात्र है और शेष स्त्री पात्र। पात्र पूरे आँचलिक कथा चित्र के अंग रूप में चित्रित हुए हैं । पुरूष पात्र हैं जिलन भिम्मल मामा, लुत्तो सुबंशलाल, मकबूल, वीरभद्दर बाबू, डॉ0 राम चौधरी, मुन्शी जलधारी लाल दास, भवेश गोविन्दी, सुरपतिराय गरूणधुज झा, रोशन बिस्वा, महीचन रैदास, गोविन्द मोची हरजिनदीवाना और सहाना। स्त्री पात्रों में ताजमनी, इरावती, सामवती पीसी, सेमियां मलारी, मलारी की माँ, सुवंश लाल की माँ और भाभियाँ, लुत्तों की पत्नी, गेंदाबाई, हीराबाई आदि । रेणु ने पात्र योजना में अच्छे बुरे सभी पात्रों को रखा है। हिन्दी के शायद किसी अन्य उपन्यास में पात्रों की संख्या इतनी अधिक हो, और उसे इतनी अच्छी तरह निभाया गया हो । पर इस रचना में 'मैला आँचल' के बावनदास के सामने भूल न सकने वाला एक भी पात्र नही हैं ।

जित्तन

जित्तन का चरित्र चित्रण रेणु ने सशक्त लेखनी से अत्यन्त सुन्दर और प्रभावशाली किया है । वैसे तो इस उपन्यास में कोई प्रधान नायक और नायिका नही किन्तु विभिन्न प्रसंगों में जित्तन और ताजमनी की कथा इतनी स्पष्टता ओर रमणीयता से उभरी है कि यही उपन्यास का नायक लगने लगता है । जितेन्द्र विनम्र, उदार, सदाशयी, साहसी, परदुःखकातर, धैर्यवान, मितभाषी, सुशिक्षित, कलाप्रिय आकर्षक व्यक्तित्वपूर्ण है। जितेन्द्र नगर के राजनीतिक कुचक्रों एवं छल-कपट से आहत हो उठता है और गाँव चला

आता है पर वहाँ तो स्थिति और खराब है । चारों तरफ स्वार्थ ही स्वार्थ है । वह दो नारी चरित्रों ताजमनी और इरा से प्रेरणा ग्रहण करता है । गाँव में वह अपमानित होता है , गालियाँ सुनता है किन्तु बड़े ही संयम से गाँव के भूले हुए सांस्कृतिक आयोजनों को पुनः जीवित करके लोगों में आशा एवं उत्साह जगाता है । उसे लोग, पागल, जुआड़ी जालिम, आदि न जाने कितने नामों से अभिहित करते हैं स्त्रियाँ चरित्र हीनता का दोषारोपण करती है। किन्तु उसे कोई नही जानता । इतना शान्त, सन्तुलित, सरल, लोककल्याणकारी व्यक्ति गाँव में दूसरा नही । जितेन्द्र सामन्ती वर्ग का है, निम्न वित्तीय वर्ग का नही । वैसे सामन्ती वर्ग में जितेन्द्र जैसे व्यक्ति वाले लोग अपवाद स्वरूप ही होते हैं । सामन्ती स्वार्थ के कींचड़ में वह कमल के समान खिला है । उसका हृदय मानव प्रीति से भरा हुआ है ।

ताजमनी

ताजमनी इस उपन्यास की नायिका स्वरूप है । नट्टिन माँ से उत्पन्न होकर भी वह आभिजात्य संस्कार वाली है । वह हवेली में पली है, मालिक माँ का स्नेह प्राप्त किया है । और जित्तन को ही अपना सर्वस्व, समझती है । जित्तन से अपना प्रेम पूर्णतः पवित्र है गाँव वाले उसके विषय में बुरे संकेत करते हैं किन्तु वह इन सबसे परे है, ऊपर है। ताजमनी अद्वितीय सुन्दरी है और पवित्रता की प्रतिमूर्ति है । उसक प्रेम बचपन के निरन्तर साहचर्य में विकसित हुआ है । वह जितेन्द्र से अनन्य प्रेम करती है । उसका प्रेम बचपन के निरन्तर साहचर्य में विकसित हुआ है ।

ताजमनी का चरित्र उदार, परोपकारी, धार्मिक आस्था से युक्त है ।

मोहन राकेश के 'अन्धेरे बन्द कमरे' में शुक्ला तथा इबादत अली के चरित्र ऐसे है जो प्रारम्भ से अन्त तक परिवर्तित नही होते, अन्य सभी पात्रों के चरित्र परिवर्तनशील है । इस उपन्यास के प्रमुख पात्र हैं - मधुसूदन, हरबंस, नीलिमा, सुषमा, शुक्ला, अन्य पात्रों में इबादत अली, खुरशीद, अरबिन्द ठकुराइन की लड़की, ठकुराइन आदि। उपन्यास में मधुसूद, नीलिमा, सुषमा, शुक्ला और हरबंस जहाँ कमरे के अँधेरे और बन्द होने को स्वयं जीते, भोगते और सहते हैं, वहाँ दिल्ली की गन्दी बस्तियों में रहने वाली ठकुराइन, नीलिमा, गोपाल की माँ, आदि कमरो के अन्धेरे और बन्द स्वरूप को नियति समझ स्वीकार करते हैं । इन अँधेरें कमरों में रहने वाले पात्र अपनी व्यक्तिगत कुण्ठाओं में अधिक जीते हैं ।

हरबंस

हरबंस नीलिमा से प्रेम विवाह करता है पर वे एक दूसरे से सन्तुष्ट नहीं होते । हरबंस को पत्नी से शिकायत है कि वह उसे समझती नही हैं । हरबंस के चरित्र में एक दूसरे के विरोधी तत्वों का विचित्र सम्मिश्रण है । वह एक ओर तो अपनी पत्नी नीलिमा को नृत्य कला की ओर प्रेरित करता है तथा उसमें अपने व्यक्तित्व के विकास की लालसा जगाता है और जब नीलिमा का स्वतन्त्र व्यक्तित्व बन जाता है

तब वह उससे असन्तुष्ट रहने लगता है । शुक्ला पर वह अपना अधिकार समझता है और चाहता है कि वह उसकी इच्छा के अनुसार जीवन बिताए । अपने और शुक्ला के बीच वह किसी तीसरे व्यक्ति का प्रवेश सहन नही कर पाता । नीलिमा से विरक्त होकर वह इंग्लैण्ड जाता है परन्तु यात्रा के मध्य ही वह उससे मिलने को व्याकुल हो जाता है । हरबंस के मनोविश्लेषण में उपन्यासकार को पूर्ण सफलता मिली है । नीलिमा को लिखे गये पत्रों में उसका अन्तर्द्वन्द्व बहुत स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त हुआ है । हरबंस में व्यवहारिकता की कमी है । वह देशभक्त है । उसकी देशभक्ति की भावना का परिचय तो इसी बात से मिल जाता है कि वह राजनीतिक सचिव का भारतीय संस्कृति केन्द्र के सेकेटरी पद को ठुकराकर दिल्ली छोड़ देता है और साढ़े तीन सौ रूपये की लेक्चररशिप करने आगरा जाने को तैयार हो जाता है ।

नीलिमा

नीलिमा अपने स्वतंत्र अस्तित्व के निर्माण की आंकाक्षा रखने वाली नारी है। वह हरबंस की पत्नी है । नीलिमा को विश्वास है कि उसमें एक नर्तकी की प्रचुर प्रतिभा है, मगर पति की उदासीनता के कारण वह अपनी सफलता का साधन न जुटा सकी । पहले तो हरबंस बपनी पत्नी को मॉडर्न बनाने के लिए नृत्य सीखने को उकसाता है, उसे कलाकारों से मिलवाता है । मदिरापान व सिगरेट पीने की खुली छूट देता है । जब वह आधुनिका बन जाती है तो हरबंस चाहने लगता है कि वह घर के बन्द कमरे

में रहे गृहस्थ जीवन बिताये जो नीलिमा के लिए असंभव हैं । नीलिमा जीवन भर मृगमरीचिका में भटकती है । वह वैयक्तिक स्तर पर एकदम अकेली पड़ जाती है । उसके जीवन में रिक्तता की अनुभूति बढ़ती जाती है । उस जैसी भावुक स्त्री के लिए यह स्थिति पर्याप्त रूप से भयावह है और वह निरन्तर स्नेह शीलता को खोजती रहती है । एक ओर उसकी अपनी आकांक्षाएं और सपने है दूसरी ओर मानवीय सम्बन्धों की शून्यता एवं स्नेहशीलता का अभाव है । जिनमें बराबर टकराहट होती रहती है । हरबंस से असंतुष्ट होकर वह पेरिस में बर्मी कलाकार के साथ इसीलिए रहती है कि मन शरीर और आवश्यकता तीनों ही दृष्टि से हरबंस से दूर रहकर उसे मुक्ति दे सके, परन्तु उसे छोड़ नही पाती । नीलिमा के चरित्र में स्वतंत्र व्यक्तित्व और प्रेम का अन्तर्द्वन्द्व है।

मधुसूदन

मधुसूदन मध्यमवर्गीय आर्थिक स्थिति का व्यक्ति है, जिसे प्रारम्भ से ही पत्रकारिता के द्वारा ही जीविका अर्जित करनी पड़ती हैं। वह देशभक्त, चिन्तनशील, साहित्यिक रूचि वाला, संकोची स्वभाव का व्यक्ति है । सामान्य रूप से वह अपने आवेगों को नियन्त्रित करने में सफल रहता है । दिल्ली के कस्साबपुरा मुहल्ले में रहते समय वह नीलिमा की बहन शुक्ला से मन ही मन प्रेम करने लगता है । किन्तु हरबंस की मित्रता, अपनी निम्न आर्थिक स्थिति और कुछ संकोचवश कभी व्यक्त नही कर पाता। मधुसूदन के चरित्रकी विशेषता है, उसकी विश्वसनीय प्रकृति। निष्पक्ष पत्रकार के रूप में

वह जहाँ तक बन पड़ा सत्य की अभिव्यक्ति के लिए सम्बद्ध रहता है । मधुसूदन एक ईमानदार, परिश्रमी एवं आस्थावान व्यक्ति है। उसकी आस्थां सचमुच सराहनीय है । मगर जीवन और तमाम वस्तुओं के प्रति वह स्थूलढंग से विचार करता है । यहाँ तक की

सामाजिक और राजनैतिक स्थितियों पर भी वह सरल जटिल टिप्पणियाँ करता है । पत्रकार मधुसूदन आर्थिक और मानसिक कारणों से उत्पन्न घुटन, निराशा और द्वन्द्वमय स्थितियों से जूझता हुआ भटकता है , छटपटाता है । भावावेश में वह दिल्ली छोड़कर चला जाता है । नौ वर्षो के बाद दिल्ली वापस लौटकर स्वयं को अकेला और अजनबी महसूस करता है । जिन्दगी के अन्धेरों से निकलकर एक तनावपूर्ण दौड़ दौड़ता हुआ अन्त में उसी अन्धेरे में बन्द हो जाने के लिए चल पड़ता है ।

राजेन्द्र यादव के उपन्यास 'प्रेत बोलते है' में मुख्य भूमिका में दो पात्र हैं वे है समर और शिरीष। उपन्यास चरित्र प्रधान नही बल्कि विचार प्रधान और समस्या मूलक है, अतः विविधता के दर्शन नही होते । साम्य और वैषम्य के आधार पर चारित्रिक स्पष्टता भी नही । पात्र व्यक्ति और व्यक्तित्व मूलक न होकर प्रतिनिधि प्रतीक और टाइप ही रह गए है ।

समर

समर इस समाज का प्रतिनिधि पात्र है जो एक ओर जितना आदर्शवादी तथा महत्वाकांक्षी है , दूसरी ओर उतना ही कायर तथा समाज भीरू है । वह अपने जीवन

को सुखी बनानेकी कल्पना करता है , परन्तु सामाजिक संस्कार उसकी स्वप्निल आकांक्षाओं को ध्वस्त कर देते हैं । समर एक साधारण निम्न मध्यवर्गीय परिवार का युवक है जिसमें उसके बूढ़े माता - पिता और उसके भाई-भाभी है । गृहस्थी का पूरा भार उसके भाई पर है । परम्परा को मानने वाले उसके पिता उसका विवाह कर देते हैं, जिसके फलस्वरूप उसकी पत्नी भी उस आर्थिक संकटग्रस्त परिवार के लिए भार स्वरूप सिद्ध होती है । समर इन कठिनाइयों के मूल में अपनी पत्नी को समझने लगता है और उससे बोलना बन्द कर देता है । पुरुष को झुकना नही चाहिए इसीलिए वह झुकता भी नही । उसकी पत्नी मौन की साधना करती रहती है । उसे इस परिस्थिति से छुटकारा अपने मित्र के द्वारा मिलता है और वह अपने जीवन में एक नवीन मोड़ ले आने में सफल होता है । वह अलग अपनी गृहस्थी चलाने की शक्ति पाता है ।

शिरीष

शिरीष समर का मित्र है । समर की मुक्ति के लिए लेखक नवीन मानवता अथवा प्रगतिशील मानवता की अवतारणा करता है; जिसके मूल में मार्क्सवादी विचारधारा है । इस विचारधारा का प्रतिनिधि है - शिरीष । वह उपन्यास में नास्तिक तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रतिपादन करता है । समर जब कुछ भी निर्णय कर पाने की स्थिति में नही रहता उस समय शिरीष अपने मित्र की मदद करता है और उसे उस परिस्थिति से उबारता है । वह नवीन मार्क्सवादी दृष्टिकोण से सामाजिक प्राचीन संस्कारों का खण्डन कर एक नये समाज के निर्माण की ओर अग्रसर है । वह मानता है कि

आधुनिक समस्याओं का समाधान नास्तिक और मार्क्सवादी दृष्टिकोण से हो सकता है । शिरीष के प्रभाव से ही समर अपने जीवन में एक नई शक्ति का संचार कर पाता है ।

यादव के दूसरे उपन्यास 'उखड़े हुए लोग' में शरद, देशबन्धु,तथा सूरज जी प्रमख पुरुष पात्र है और जया, मायादेवी, और पद्मा प्रमुख नारी पात्र । उपन्यास के सभी पात्रों में देशबन्धु तथा सूरज जी के व्यकितत्व सबसे प्रबल तथा महत्वपूर्ण हैं । पात्रों के चरित्र चित्रण के लिए उपन्यासकार ने नाटकीय और अनाटकीय दोनों प्रणालियों का प्रयोग किया है ।

देशबन्धु

देशबन्धु कांग्रेस के पूँजीपति नेता है । एम.पी. है। बाहर वालों की दृष्टि में वे त्याग की प्रतिमूर्ति, समाज के सच्चे सेवक, तथा धर्मात्मा है। परन्तु सत्य तो यह है कि वे धूर्त, शोषक, स्वार्थी, तथा कामुक व्यक्ति है । देशसेवा, उदारता, विनम्रता आदि सब दिखावा है । अपनी मीठी बोली से सीधे साधे लोगों को फंसाकर उनका शोषण करना नेताजी के बाएं हाथ का खेल है । उनकी नेतागिरी धन कमाने का साधन मात्र है। वह अपनी पत्नी तथा पुत्र से अलग होकर अपनी रखैल माया देवी तथा उसकी पुत्री पद्मा के साथ अपने 'स्वदेश महल' में रहता है । देशबन्धु जनता के 'नेता भैय्या' बनकर पूँजीवादी व्यवस्था के सर्वसुख, जनता की सेवा के नाम पर भोगते हैं और शुद्ध खादी वस्त्रों

की आड़ में विलास और चरित्र हीनता का जीवन जीते है । उनकी समाज सेवा, राजनीतिक सेवा और आदर्शो के उपदेश के पीछे उनका पूँजीजीवी - अनैतिक हिंस्र पशु छिपा है, जिसकी कल्पना ऊपर-ऊपर से जन सामान्य को हो ही नहीं सकती ।

सूरज

उपन्यास के सिद्धान्त पक्ष के निरूपण के लिए एक और प्रमुख पात्र की अवतारणा की गई है । यह पात्र विशिष्ट इसलिए है कि लेखक की दृष्टि का निर्वाह और अभिव्यक्ति सबसे अच्छी इसी के माध्यम से हुई है । सूरज देशबन्धु द्वारा संचालित साप्ताहिक पत्र 'बिगुल' का वैतनिक सम्पादक है । वह दिल का अच्छा, ईमानदार और रूचिकर है । सूरज अपने जीवन का आरम्भ एक जेबकतरे के रूप में करता है बाद में किताबों की दुकान का एजेन्ट बनकर अपनी कड़ी मेहनत से शिक्षित होता है और एक हवलदार की विधवा कन्या से असफल प्रेम के कारण इधर उधर सड़कों पर भटकता रहता है । भ्रमवश राजनीतिक व्यक्ति समझ लिये जाने पर सन् 1942 के आन्दोलन में जेल जाता है । वही क्रान्तिकारियोंके सम्पर्क में आकर धीरे धीरे पत्रकार बन जाता है ।

अतीत की असफलताओं और देशबन्धु के कार्यकलापों से ऊबकर मानवीय सम्बन्धों पर उसकी आस्था समाप्त हो जाती है । परन्तु शरद और जया के सफल जीवन को देखकर वह मानवीय सम्बन्धों में पुनः विश्वास करने लगता है और साहस के साथ हड़ताली मजदूरों का साथ देता है जिसके परिणाम स्वरूप नौकरी से निकाल दिया जाता है

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि यह चरित्र बहुत ही असामान्य है जबकि लेखक ने इस बात का भरसक प्रयत्न किया है कि अस्वाभाविकता न आए । बुद्धि, विवेक, चरित्र, निष्ठा, भावुकता, लगन, मेहनत आदि सभी गुणों का एक अजीब सा मिश्रण इस चरित्र में दिखाई देता है ।

शरद

शरद मध्यवर्गीय पात्र है । यह सुदर्शन युवक रूढ़िविरोधी, साहसी, कर्मठ और अव्यवहारिक है । वह ईमानदार आदमी का जीवन जीना चाहता है और जीवन में स्थायित्व लाने का भरसक प्रयत्न करता है । विवाह के सम्बन्ध में उसकी अपनी धारणा है । जिसे वह वर्तमान परिस्थितियों में सर्वथा उपयुक्त मानता है और दृढ़ता से पालन करता है । शरद विवाह को स्त्री-पुरुष के व्यक्तिगत समझौते के रूप में ग्रहण करता है । सामाजिक गवाह और स्वीकृति को वह वर्तमान सामाजिक स्थिति में व्यर्थ समझता है । शरद संकोची स्वभाव का है । इसलिए आवश्यकता और इच्छा होने पर भी देशबन्धु से अपनें वेतन के सम्बन्ध में खुलकर बात नही कर पाता और न ही रूपए माँग पाता है । देशबन्धु की मानवीय संवेदना पर विश्वास करके ही वह जया को लेकर स्वदेश महल चला आता है । उसका यह कदम साहसपूर्ण तो है किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से इसे अपरिपक्वता का प्रतीक ही कहा जाएगा ।

जया

जया इस उपन्यास का नारी चरित्र है । यह कर्मठ और विद्रोहिणी

लड़की है तथा प्रखर व्यक्तित्व वाली है । उसकी इच्छा के विरूद्ध उसके माँ बाप उसका विवाह करना चाहते हैं । वह शरद से सलाह करती है और उस पर विश्वास करके स्वदेश महल आ जाती है । शहर और घर छोड़ने का उसे मानसिक कष्ट तो होता है पर प्रेम के लिए वह इसे सहन कर लेती है । वह शिक्षिका थी पर शरद के साथ आने के लिए वह नौकरी शरद की इच्छा से छोड़ तो देती है पर स्वदेश महल आने पर शरद से अपनी नौकरी के लिए देशबन्धु जी से सिफारिश करवाती है । वह वेतन तय किए बिना काम करना शरद की अव्यवहारिकता मानती है जया की अन्याय के विरूद्ध विद्रोह और तुरन्त निर्णय करने की क्षमता अद्भुत है ।

'आपका बन्टी' (मन्नू भण्डारी) उपन्यास में बंटी, शकुन, अजय, फूफी, डाक्टर जोशी, वकील चाचा, टीटू, मीरा, जोत और अमि आदि तीस से अधिक पात्रों का अंकन हुआ है परन्तु इनमें से केवल बन्टी और शकुन को ही प्रमुखता प्राप्त हुई है । वैसे सर्वाधिक प्रमुख पात्र बन्टी ही है । इस उपन्यास में बन्टी की ही कथा विस्तारपूर्वक अंकित हुई है । पात्र योजना स्वाभाविक एवं सार्थक है । इस उपन्यास के सभी पात्र लौकिक और स्वाभाविक हैं ।

बन्टी

बंटी एक अतिशय संवेदनशील बालक है । यह इस उपन्यास का सर्वप्रमुख पात्र एवं चरित्र नायक है । सम्पूर्ण उपन्यास में मुख्यतः बन्टी शब्द ही प्रयुक्त

हुआ है परन्तु उपन्यास के पृष्ठ 139 में उसका नाम अरूप दिया गया है । बंटी के माता पिता शकुन और अजय दोंनो ही अपने अंह के कारण एक दूसरे से समझौता नही कर पाते, न ही एक दूसरे के सामने झुकना पसन्द करते हैं। परिणामस्वरूप शकुन बन्टी को लेकर पृथक हो जाती है तथा कलकत्ता छोड़कर दूसरी जगह चली जाती है वही अध्यापन कार्य करते-करते उस कॉलेजकी प्रिंसिपल बन जाती है । बंटी का बचपन पिता से दूर रहकर बीतता है। बंटी बालक होते हुए भी अपनी उम्र से अधिक बुद्धिमान लगता है । बंटी के चरित्र में उत्सुकता का भी गुण विद्यमान है । वह संसार की प्रत्येक बात जान लेना चाहता है - माता पिता का झगड़ा क्या है? तलाक क्या होता है? पौधे कैसे बढ़ते हैं? मम्मी कभी-कभी रोती क्यों हैं? आदि अनेक बातें उसकी उत्सुकता के घेरे में आती हैं । बंटी अपनी माँ में प्रिंसिपल वाले प्रशासकीय गुण तथा माता की ममता और कोमल हृदयता दोनों देखता है । उसकी जिज्ञासा अदम्य है । वह पढ़े लिखे संस्कारी दम्पत्ति की सन्तान है इसलिए साधारण बच्चों की तरह बात को विस्मृत नही कर देता, बल्कि उसकी तह तक पहुँचने का प्रयास करता है । बंटी में अधिकार भावना भी बाल्य सुलभ है । जो स्वाभाविक भी है । जिस किसी भी वस्तु पर वह अपना अधिकार समझता है । उसमें विभाजन या रिक्तता उसे किसी भी हालत में स्वीकार्य नहीं । बंटी के चरित्र में बाल सुलभ व्यवहार और चिन्तन का सूक्ष्म चित्रण हुआ है । यद्यपि लेखिका ने बंटी को एक सामान्य स्तर का बालक ही चित्रित करना चाहा है, तथापि उसमें असाधारण सूत्र झलकता है । 'आप का बन्टी' में बालक के भाव विकास का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है ।

शकुन

उपन्यास में नारी पात्र शकुन का भी अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है । एक प्रकार से आधुनिक नारी के सुख दुःखों समस्याओं और संघर्षो को शकुन के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है । शकुन का विवाह अजय से होता है । परन्तु पारस्परिक अंह भावना उन्हें अलग होने पर बाध्य कर देती है । दोनों के अलगाव का शिकार होता है मासूम बन्टी, वह बन्टी को साथ लेकर अन्यत्र चली जाती है । वहाँ एक कॉलेज में प्राध्यापिका हो जाती है । इस तरह सात वर्ष बीतते है । शकुन उस कॉलेज की प्रिंसिपल हो जाती है । वह सोचती थी कि इससे अजय का अहं चूर-चूर हो जाएगा । बंटी को अत्यधिक प्यार करती थी और सोचती थी कि शायद कभी बन्टी दोनों के मिलन में सहायक हो/परन्तु अजय मीरा के साथ रहने लगता है और शकुन के लिए मिलन की आशा भी समाप्त हो जाती है । वह भी डॉ0 जोशी से पुनर्विवाह कर लेती है । पर बंटी यह बरदाश्त नही कर पाता । परन्तु शकुन सोचती है कि वह यह काम बंटी के भविष्य के लिए ठीक कर रही है । शकुन के चरित्र में अंह, गर्व, आदि के साथ-साथ सहृदयता, दयालुता और उदारता आदि सद्गुण भी है । वह पुरानी मान्यताओं को भी मानती है । अजय के साथ बन्टी के जाने पर वह बहुत व्यथित होती है । बंटी उसे अनदेखा करके चला जाता है । इससें उसके आत्माभिमान को गहरी ठेस पहुँचती है शकुन इस उपन्यास की एक ऐसी पात्रा है जो पाने की दौड़ में सदैव खोती ही रही ।

मन्नू भण्डारी के उपन्यास महाभोज में तीन से अधिक प्रात्र है परन्तु प्रमुखेता कुछ पात्रों को ही प्राप्त हुई है । जिनमें हैं बिसू,दासाहब,सुकुल बाबू,लोचनसिह,बिन्दा आदि।

बिसू

बिसू (बिसेसर) को इस उपन्यास का एक प्रमुख पात्र माना जा सकता है । बिसेसर की मृत्यु को केन्द्र में रखकर ही लेखिका ने कथावस्तु को विस्तार प्रदान किया है। बिसेसर का चरित्र अप्रत्यक्ष चरित्र चित्रण प्रणाली का एक सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है । बिसेसर सरोहा गाँव के किसान हीरा का सबसे बड़ा पुत्र था । पिता मेहनत मजदूरी करके उसे शहर पढ़ने भेजते हैं । पढ़ाई समाप्त करके बिसू नौकरी न करके खेती ही करना चाहता है । अध्ययन के दौरान ही उसने ग्रामवासियों के जागरण को अपना लक्ष्य बना लिया । लड़के-लड़कियों, प्रौढ़ों के साथ-साथ वह हरिजनों को भी शिक्षित करता है। शिक्षा के साथ-साथ ग्रामवासियों को उन्नति की प्रेरणा देता है । पुलिस बिसू को नक्सली कहकर गिरफ्तार कर जेल में डाल देती है । जेल में उसके साथ अमानुषिक अत्याचार होता है । चार वर्ष जेल में रखते के पश्चात छोड़ दिया जाता है । कुछ दिनों गुमसुम रहने के बाद वह फिर से अपने कार्य में जुट गया । उसकी मित्रता गाँव में आये हुए बिन्दा से होती है । गाँववालों को अपने अधिकारों के प्रति सचेत करके बिसू अपना हक माँगने के लिए तैयार करता है । पर हरिजन टोले की कुछ झोपड़ियों में आग लगा दी जाती है । जिससे सभी के हौसले पस्त हो जाते हैं । बिसू चैन से नही बैठता और इस काण्ड का प्रमाण जुटाने लगता है इसकी सूचना असली अपराधी को हो जाती है । और वह गाँव के दो युवकों द्वारा चाय में जहर पिलाकर मार डाला जाता है । बिसू की इस मृत्यु का विभिन्न राजनीतिक दल फायदा उठाने का प्रयत्न करते हैं । सही अपराधी को नपकड़कर निरपराध बिन्दा को जेल में ठूँस दिया जाता है ।

निर्मल वर्मा के उपन्यास 'वे दिन' के सभी पात्रों की संवेदनाएँ मानवीय नियति की विडम्बना से जुड़ी हुई हैं । मुख्यतः दो चरित्रों रायना और कथानायक की अनुभूतियों स्थितियों और परिवेश को लेखक ने इस ढंग से प्रस्तुत किया है कि ये स्वयं उपन्यास का पात्र - सा प्रतीत होती है । यही उपन्यास का सबसे बड़ी उपलब्धि है । इस उपन्यास का चरित्र विधान परम्परागत उपन्यासों से भिन्न है । रायना, फ्रांज, मारिया टी0टी0 के चरित्र सूक्ष्म और जटिल है । लेखक ने चरित्रों की आन्तरिक सच्चाईयों को सूक्ष्मता और संवेदनशीलता से उद्घाटित किया है ।

रायना

रायना अपने पुत्र मीता के साथ प्राग घूमने आई है । वहाँ उस पति परित्यक्ता जर्मन युवती रायना की मुलाकात दुभाषिए के रूप में नायक से होती है जो प्राग के एक होस्टल में रहने वाला भारतीय छात्र युवक है । क्रिसमस की छुट्टियाँ होने की वजह से वह खाली है । इसीलिए दुभाषिए का काम कर रहा है रायना उसके साथ तीन दिन का समय व्यतीत करती है । वह उसके समीप आ जाती है । उसके जीवन की यह ट्रेजड़ी है कि वह बहुत दिन अकेली नहीं रह सकती और नायक के निकट आ जाती है । क्षणिक सुख रायना के लिए सर्वस्व है । क्षण के सुख को पाकर वह फिर से तटस्थ हो जाती है । रायना का बाहर और भीतर से एक होना आज के जीवन की विडम्बना है । रायना के जीवन में एक खासतरह की उदासी, रीतापन, भावहीनता तथा

तटस्थता । रायना को अपने पति की कोई आवश्यकता नही है । रायना का चरित्र लेखक ने बहुत कुशलता से चित्रित किया है । एक पति परित्यक्तता अभिशप्त नारी के मनोविज्ञान को निर्मल वर्मा ने बहुत गहराई तक परखा है । भारतीय परिवेश में भले ही वह अनैतिक व असामान्य प्रतीत हो परन्तु मानवीय प्रवृत्तियों व सवेदनाओं के धरातल बेहद स्वाभाविक है । कुण्ठित जीवन जीने की अपेक्षा रायना सहज मानवीय प्रवृत्तियों तथा शारीरिक और मानसिक आवश्यकताओं को सहज स्वीकार करके सामान्य मार्ग अपनाती है। उपन्यास में मानवीय सँश्लिष्ट चरित्र को लेखक ने रायना जैसे पात्र द्वारा अभिव्यक्त किया।

कमलेश्वर कृत 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' उपन्यास में नायकत्व का ह्रास हुआ है । सरनाम सिंह, रंगीले और रविराज ये तीनों खण्डित व्यक्तित्व को लिये हुए है । वंशी, हेम और कमला तीनों नारी पात्रों का रूप और पद नायिका जैसा ही है। ये तीनों एक संयुक्त पद की पूर्ति करते हैं । लेखक ने सरनाम और वंशी के चरित्र को बड़ी ही सहजता से व्यक्त किया है । अनेक पात्रों के होते हुए भी लेखक ने उन सबको अत्यन्त सुसूत्रता में बाँधकर प्रस्तुत किया है ।

'डाक बंगला' में अन्दर और बाहर दोनों ही धरातलों पर इरा का चरित्र चित्रण इस उपन्यास की सबसे बड़ी उपलब्धि है । बतरा, सोलंकी डॉक्टर चन्द्र मोहन, तिलक शीला आदि इस उपन्यास के अन्य पात्र हैं ।

इरा

इरा मध्यमवर्गीय परिवार की लड़की है यौवन के प्रथम सोपान पर उसका पैर फिसल जाता है। एक नाटक प्रेमी सज्जन के द्वारा रंगमंच का प्रलोभन देकर उसे बहका लिया जाता है। एक बार गर्त में गिरने पर वह धँसती ही चली जाती है। इरा ने अपने जीवन में अनेक उतार चढ़ाव देखे हैं । इरा के जीवन में विमल के अतिरिक्त और तीन पुरुष आते हैं बतरा, सोलंकी और डॉक्टर । इन चारों पुरुषों में से डॉक्टर के पास वह विशेष परिस्थितियों में लाई जाती है । बतरा उसे डॉक्टर के साथ आसाम भेज देता है और वहीं उसका डॉक्टर चन्द्रमोहन से विवाह होता है तथा वही वह विधवा हो जाती है । पुनः वह तिलक और सोलंकी के सहवास में आती है। इस उपन्यास में लेखक ने इरा की काम भावनाओं को सेक्स के आधार पर मनोविज्ञान के सहारे विश्लेषित करनेका प्रयास किया है । इरा ने जीवन भर जो भोगा उससे आस्था आदर्श और अच्छाइयों पर से उसका विश्वास हट गया । उसका विश्वास था कि लोग आत्मा की बातें करते हैं पर तन पर एकान्तिक अधिकार चाहते हैं । जीवन की राह में अपने अस्तित्व को टिकाए रखने के लिए और अपने आपको बनाएं रखने के लिए एक सुशिक्षित युवती को किन-किन समस्याओं से होकर गुजरना पड़ता है । उसका मार्मिक चित्रण 'डाक बंगला' में हुआ है कई जगह इरा के चरित्र में दार्शनिकता दिखाई देती है । पात्रों के अन्त - विश्लेषण कर उनके मानस का सूक्ष्म विवेचन लेखक ने बड़ी ही निपुणता से किया है और उनके व्यक्तित्व को भली प्रकार प्रकाशित किया है ।

-काली आँधी', उपन्यास में लेखक ने मालती और जग्गी बाबू के माध्यम से उन्ही के प्रश्नों और स्थितियों द्वारा सम्पूर्ण युग के प्रश्नों और स्थितियों पर प्रकाश डाला है । इस रचना के हर पात्र में किसी न किसी प्रकार का प्रतीक है । स्वार्थी और खुदगर्ज व्यक्ति के खुदगर्ज में लेखक ने मालती के रूप में एक स्वाभाविक और प्रभावी पात्र का निरूपण किया है ।

मालती

मालती 'काली आँधी' की नायिका है । सम्पूर्ण उपन्यास में उसी का व्यक्तित्व छाया हुआ है । राजनीति में मालती का प्रवेश ही उसे बहुत बड़ी सफलता देता है इसमें सन्देह नही कि इस यश और सफलता को प्राप्त करने के लिए मालती को भिन्न स्तरों पर अनेक प्रयास करने पड़े । जिस क्षेत्र में उसने कदम रखा, प्रसिद्धि ही मिली। सफलता को पाने के लिए उसने हर संभव प्रयास किया और हर तरह के मार्ग को अपनाया। राजनैतिक जीवन में वह सफलता को प्राप्त करती है किन्तु परिवार के प्रति उसका जो उत्तरदायित्व है उसका निर्वाह करने में असफल रहती है । सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करने की अदम्य लालसा ने उसे अपने परिवार से अलग कर दिया । उसे अपनी बेटी और बेटें से भी अलग हो जाना पड़ा राजनैतिक प्रतिष्ठा की हवस में उसने कोई परवाह नही की लेकिन जब कभी कुछ क्षणों के लिए एकान्त मिलता था तो वह अपने पुत्र और पुत्री के वियोग में बेहद दुखी होती थी ।

जग्गी बाबू

जग्गी बाबू ठीक मालती के स्वाभाव के विपरीत हैं । उन्हें राजनीति और झूठी प्रतिष्ठा से कोई लगाव नही रहता । मालती राजनीति के नशे में इतनी चूर रहती है कि वह अपने पति जग्गी बाबू की भी परवाह नही करती । जग्गी बाबू स्वाभिमानी व्यक्ति है। मालती के बदलते हुए जीवन से उन्हें लगता है कि राजनीति कितनी झूठी घृणास्पद और स्वार्थयुक्त होती है । जग्गीबाबू का स्वाभिमान उन्हें समझौता नही करने देता और उन दोनों के बीच दिन प्रतिदिन तनाव बढ़ता ही जाता है । वे उ़च्च वर्गीय जीवन के झूठ और खोखलेपन जहाँ केवल आडम्बर और दिखावा है, जानते है। वे मध्यवित्तीय पारिवारिक जीवन को नही छोड़ना चाहते । संघर्ष में ही आनन्द का अनुभव करते हैं पत्नी से फायदा उठाने की अवसरवादी बातें उन्हें मान्य नहीं । अपमानजनक वातावरण से ग्रस्त होकर जग्गीबाबू की आत्मा भीतर ही भीतर व्यथित होती है । जग्गीबाबू की आत्मीय व्यथा और पीड़ा का स्वाभाविक चित्रण हुआ है ।

'आगामी अतीत' उपन्यास का नायक है कमलबोस और नारी पात्र के रूप में चाँदमी का चरित्र चित्रण किया गया है । कमलेश्वर द्वारा निर्मित चरित्र पाठक भूल नही पाते ।

चाँदनी

चाँदनी के रूप् में जिस नारी पात्र का चित्रण लेखक ने किया है वह नि:संशय प्रशंसनीय है । वैसे कमलेश्वर के सभी उपन्यासों में नारी की पीड़ा, व्यथा,

अभाव और मानसिक असन्तोष ने अभिव्यक्ति पाई है । चाँदनी जीवन को किसी तरह जी नही रही बल्कि पूरे संघर्ष के साथ जुटी है । सब कुछ सहन करते रहने के कारण उसके व्यक्तित्व में एक अजीब तरह की धार आ गई है । चाँदनी जैसा जीवन्त और प्रभावी पात्र शायद ही कही देखने को मिले । लेखक ने अपने व्यक्तित्व कौशल से इस चरित्र को बिल्कुल सजीव रूप में उपन्यास के पृष्ठों पर खड़ा कर दिया है । चाँदनी का अनूठा व्यक्तित्व सम्पूर्ण उपन्यास पर छाया है । उसके द्वारा कहा गया एक-एक वाक्य उसके अन्तर्मन की व्यथा, उसके दर्द और वर्ग चरित्र को प्रकाशित करता है ।

कमलबोस

कमलबोस इस लघु उपन्यास का महत्वपूर्ण चरित्र हैं । कमल बोस हर सही गलत तरीकों को अपनाकर बड़ा आदमी बनना चाहता है और इसी तरह वह अभूतपूर्व यश और कीर्ति प्राप्त करता है किन्तु इतना सब पाने के बाद भी कुछ ऐसा है जो उसे भीतर ही भीतर खरोंचता रहता है । काली आँधी की नायिका की तरह कमल बोस भी पूंजीवादी व्यवस्था की गलत उन महत्वकाक्षाओं के शिकार हुए है जो अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए साधनहीन आम आदमी का इस्तेमाल करने से किसी प्रकार का परहेज नही करते । राजनीतिक स्वार्थ की चाहे किसी भी विधि से पूर्ति हो वह उस रास्ते को अपनाने में कभी परहेज नही करते । उपन्यास के लेखक ने चरित्रों के माध्यम से पूँजीवादी षड्यन्त्र का पर्दाफाश किया है । कमलबोस का चरित्र अवसरवादी चरित्र है ।

अन्त में वह इस बात के लिए दुखी भी होता है कि जहाँ वह पहुँचा है । वहाँ पहुँचने के लिए उसे कितनी बड़ी कीमत चुकानी पड़ी है । द्विधा और संघर्ष से पूर्ण ऐसे बहुत कम पात्र देखने को मिलते हैं ।

श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास 'रागदरबारी' के केन्द्र में वैद्यजी और उनका दरबार है । इसमें परिवेश को नायकत्व मिला है, अतः चरित्रों का निर्माण अप्रत्यक्ष रूप से हुआ है । फिर भी कुछ चरित्र उभरकर सामने आते है। श्रीलाल शुक्ल अपनी ओर से पात्रों के बारे में कम बोलते हैं । प्रत्येक पात्र का वैशिष्ट्य उसकी भाषा तथा वार्तालाप की शैली से प्रकट होता है । शुक्ल जी परिवेश की प्रतिक्रिया में पात्रों को प्रस्फुटित होने देते हैं । इनके चरित्रांकन की पद्धति लक्षणीय है । वैद्यजी के अतिरिक्त बद्री, रूप्पन, खन्ना, मालवीय, प्रिंसिपल, कुसहर प्रसाद, छोटे पहलवान, लंगड़ सनीचर, आदि पुरुष पात्र है और बेला नारी पात्र है । इस उपन्यास में पात्र संयोजना भी लेखकीय दृष्टि में व्यंग्य प्रधान रहा है । पात्रों की संख्या काफी है तथा वे जीवन की विविध राहो से लिए गये है । सभी पात्रों में बेला ही ऐसी दिखाई देती है जोअपने कार्यो से गाँव की होकर भी गाँव की नही लगती है । श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास में नारी पात्र क्षीण झलक दिखाकर तिरोहित होते हैं ।

वैद्यजी

वैद्यजी के चरित्र के रूप में जो व्यक्तित्व उभरता है वह पाठक को

हर स्थान पर दिखाई देता है । वैद्यजी इस कृति के सर्वाधिक महत्वपूर्ण पात्र है इनकी बहुत पहुँच है । लेखक ने वैद्यजी के व्यक्तित्व और उनकी मानसिकता को गहराई एवं विस्तार से उठाया है । कृति का परिवेश वैद्यजी से आक्रान्त है । पूरी रचना का भार इसी पात्र के कन्धे पर है । अनेक स्थितियों-परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में इस पात्र का विस्तार पूरी रचना में हुआ है । वैद्यजी की ही छत्र-छाया में कॉलेज में गुटबन्दी का साम्राज्य हैं ग्राम प्रधान का निर्णय वैद्यजी ही करते हैं । कोऑपरेटिव यूनियन पर भी इन्हीं का कब्जा है । शिवपालगंज के केन्द्र में वैद्यजी और उनकी कोठी सामन्ती परम्परा के प्रतीक है । वैद्यजी अफसरों से भी सांठ-गांठ रखते है । वैद्यजी देश सेवा के नाम की आड़ में सत्ता की राजनीति का पेशा करते है । उनकी कथनी और करनी में अन्तर है। कथनी का विषय गीता गांधीवाद, धर्मयुद्ध, प्रेम और अहिंसा आदि है । करनी में भष्टाचार अनैतिकता, गुटबन्दी, घूस, गबन, आदि का समावेश है । वैद्यजी के दरबार में नियमित हाजिरी देने वाले लोग भी है क्योंकि वैद्यजी की कृपा के बिना वे ठहर नही सकते । वैद्यजी की सत्ता का केन्द्र शिवपालगंज का छंगामल इन्टरमीडिएट कॉलेज है । वैध जी कॉलेज के मैनेजर हैं । उनकी मर्जी के बिना गाँव का एक पत्ता भी नही हिल सकता पूरे गाँव में उनका ही साम्राज्य और आतंक है ।

'अलग-अलग वैतरणी' (शिवप्रसाद सिंह) की पात्रसृष्टि के अन्तर्गत करैता गाँव के अनेक पात्रों की बाहरी-भीतरी परतों के आधार पर पहचान उभारी गयी है । यह पात्र अपने आप में सम्पूर्ण न होकर अपूर्ण ही रह गये है । अपूर्ण रहने पर भी ये

पात्र अपना इच्छित प्रभाव छोड़ते है और इसका "हर चरित अपने पैरों पर खडा होता है, चलता है । लड़खड़ाता भी है पर पर लेखकीय वैसाखी नहीं लगाता.... जिस चरित्र में जितना अधूरापन है लेखक ने उसे स्वीकार कर लिया है और एक आदर्श चरित्र रखनेके फेर में उसमें भराई नहींकी है । .... सभी अधूरे हैं । जैपालसिंह का अधूरापन अपनों के आगे विवश हो जाने का है, कनिया का अधूरापन पति को वश में न रख पाने का है, बुझारथ का अधूरापन पत्नीके आगे चुप हो जाने का है, पटहनिया भाभी का अधूरापन नपुंसक पति को छोड़कर खुलकर न खेलने का है ......।"[1] विपिन मास्टर, शशिकान्त डाक्टर देवनाथ, खलील मियाँ आदि एक से पात्र हैं जिन्हे आदर्श अभी छू भी नहीं गया है । इस उपन्यासके पात्र भी अंचल विशेष के ही न होकर व्यापक परिवेश के प्राणी है। पात्रों के चरित्र चित्रण में लेखक ने ऐसा कुछ नही किया है कि वे क्षेत्र विशेष के पात्र प्रतीत हों।

उपन्यास के एक पात्र खलील मियाँ के प्रति लेखक की अत्यधिक सहानुभूति हैं खलील मियाँ भारतवर्ष की मिट्टी के प्रति वफादार नेक, विचारवान मुसलमानों का प्रतिनिधित्व करते हैं । लेखक ने उनकी व्यथा को गहन व्यापक स्तर पर व्यक्त किया है । खलीलं मियाँके माध्यम से लेखक ने हिन्दू, मुसलमानों के बिगड़ते सम्बन्धों की ओर इंगित किया है ।

पाठक को अपने अनोखे चरित्र से प्रभावित करने वाला एक पात्र है हरिया। पटहनिया भाभी के चरित्र को विशेष नया रूप दिया है । सम्भवतः हिन्दी साहित्य में यह नया रूप है । वह मर्यादाओं का वहन करने वाले परिवार में पली है । किन्तु उसका विवाह एक नपुंसक के साथ कर दिया जाता है । भारतीय संस्कारों के अनुरूप उसकी मानसिकता भी है ।

इस उपन्यास में ऐसे अनेक छोटे बड़े पात्र है । जो अपनी विशेषता के कारण स्पष्ट और न भूलने वाला प्रभाव छोड़ जाते हैं ।

भीष्मसाहनी के उपन्यास 'तमस' में पात्रों की भरमार है । किसी विशिष्ट पात्र का चित्रण न करके लेखक ने आम आदमियों की प्रतिक्रियाओं को ही अधिक महत्व दिया है । परिणामस्वरूप प्रतिनिधि पात्रों की संख्या अधिक है । रिचर्ड, लीजा, बख्शीजी, जरनैल ,वानप्रस्थी जी ,मंत्रीजी, देवव्रत, बोधराज,मुबारक अली, मौला दाद, देवदत्त, मीरदाद, शाहनवाज, शजो, नत्थू आदि इस उपन्यास के पात्र हैं ।

रिचर्ड

रिचर्ड एक सरकारी अफसर है । यह अंग्रेजी सत्ता का प्रतिनिधित्व करने वाला पात्र हैं । वह इतिहास प्रेमी है । रिचर्ड साम्राज्यवादियों का सच्चा एवं

ईमानदार प्रतिनिधि है । उसके आदर्श और आचरण अलग है । सम्पूर्ण उपन्यास में रिचर्ड का प्रशासकीय रूप ही अधिक उभरा है । अंग्रेजो के गुण-दोषों का वह सही रूप में प्रतिनिधित्व करता है ।

जरनैल

जरनैल इस कस्बे का एक ईमानदार कॉंग्रेसी सैनिक है । बरसों जेल में रहा है । शरीर एकदम चुक गया है । कॉंग्रेस के दफतर से पन्द्रह रूपये महीना प्रचारक का मेहनताना लिया करता था । लेखक ने जरनैल के भूतकाल के सम्बन्ध में अधिक लिखा है । हिन्दुस्तान की आजादी के स्वप्न को लेकर वह जी रहा है । शहर के दंगे में उसकी मृत्यु हो जाती है ।

इस उपन्यास में कम्युनिस्ट विचारों के पात्रों के प्रति लेखक की अधिक सहानुभूति है क्योंकि भीष्म साहनी इस विचारधारा के प्रति प्रतिबद्ध हैं । देवदत्त का चरित्र एक सच्चे ईमानदार कम्युनिस्ट कार्यकर्ता के रूप में वह पाठक के समक्ष आता है। इस उपन्यास का सबसे अभागा पात्र नत्थू हैं । बुद्धिजीवी और तथाकथित प्रतिष्ठित लोग सामान्य व्यक्तियों का किस प्रकार अपने स्वार्थ के लिए अथवा साम्प्रदायिक अलगाव के लिए उपयोग कर लेते हैं इसका प्रमाण है - नत्थू । राजो का व्यक्तित्व इस उपन्यास में शीतल जल की तरह है । नफरत की इस भयावह अग्नि में भी राजो मानवीय भावों से प्रेरित थी ।

इस प्रकार 'तमस' में अनेक चरित्र हैं । अपनी एकांगिकता में जो पात्र थोड़े-थोड़े समय के लिए उभरते हैं वे अपनी पूरी छाप छोड़ जाते हैं । 'तमस' के दो पात्र लीजा और शाहनवाज खान बरबस ही पाठक का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हैं लेखक ने इनके अन्तर्मन को गहराई से परखा है और इन्हें इनकी समग्र चारित्रिक विसंगतियों के साथ प्रस्तुत किया है । शाहनवाजखान समूह चरित्र की विसंगतिऔर द्वन्द्व का सबसे अच्छा उदाहरण है । व्यक्ति के रूप में अपने विधर्मी मित्र के लिए वह कुछ भी कर सकता है, पर समूह में वह एक मुसलमान है और उसके चरित्र का यही पहलू उसे गरीब मिलखी की हत्या करने पर बाध्य कर देता है ।

उषा प्रियंवदा के उपन्यास 'रूकोगी नहीं' राधिका में सभी चरित्र स्पष्ट, निश्चित और द्विधाहीन है । इन चरित्रों में न कोई उतार चढ़ाव है न आत्ममंथन न कोई विकासात्मक परिवर्तन । राधिका के चरित्र ने उपन्यास में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त किया है । उपन्यास पढ़ने पर यह चरित्र सबके मन पर छा जाता है । अन्य पात्र राधिका के चारित्रिक विकास में निमित मात्र रह जाते हैं । विषा, पापा, बड़दा और किसी सीमा तक अक्षय का चरित्र एक साँचे में ढ़ला हुआ लगता है। पात्रों के अपने व्यवहार के द्वारा चरित्र अभिव्यज्जित हुआ है ।

---

1. आधुनिक हिन्दी उपन्यास, सं0 नरेन्द्र मोहन, पृ0 300.

राधिका

राधिका का चरित्र चित्रण उषा प्रियंवदा ने बड़े मनोयोग से किया है । राधिका के माध्यम से नारी की दुविधा और उसकी आत्मा की छटपटाहट को लेखिका भली प्रकार उभारने में सफल हुई है । राधिका माँ की शीघ्र मृत्यु हो जाने से पापा के ही लाड़ प्यार में पली है । बहुत अधिक दुलार और पापा के ही पास लगातार रहने के कारण वह पापा पर अपना अधिकार समझने लगती है । इसी अधिकार भावना से उसमें बड़ों की आज्ञा न मानना, मनमानी करना और अनुशासन हीनता जैसी भावनाएं उत्पन्न होती हैं । भीतर से वह बहुत भावुक है इसीलिए पापा का विद्या से विवाह करना उसकी भावुकता को ठेस पहुँचाता है और उसे विद्रोही बना देता हैं । स्वयं को प्रकट न करने के स्वभाव के कारण भी उसके चरित्र में आशंकापूर्ण दुविधा ने जन्म ले लिया । वह अक्षय और मनीश दोनों के प्रति आकर्षित है लेकिन निर्णय नहीं कर पाती वह भीतर ही भीतर घुटती है । विशेष परिस्थितियों में पड़कर उसका व्यक्तित्व विलक्षण प्रकार का आकार पाता है । राधिका स्वतन्त्र निर्णय लेने की शक्ति रखने के बावजूद अजीब बेबसी और सामाजिक घिराव में अपनेको बन्द पाती है । राधिका स्वतन्त्रता का विकास चाहती हैं; परम्परागत संस्कारों को तोड़ना चाहती है, अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व स्थापित करना चाहती है किन्तु इन बातों को प्राप्त करनेके बजाय उसका जीवन अन्तर्विरोधों, विसंगतियों, संत्रास और घुटन आदि का शिकार बन जाता है ।

पापा के चरित्र में एक विशेष प्रकार का गाम्भीर्य है । पुरुष पात्रों में केवल पापा का चरित्र बड़ा मार्मिक बन पड़ा है और प्रभावित भी करता है । जीवन के प्रति वे उदार और सुलझा हुआ दृष्टिकोण रखते हैं । किसी के व्यक्तित्व के स्वतन्त्र विकास में भी विश्वास रखते हैं । वे उत्तेजित कम ही होते हैं । उनका व्यवहार अत्यन्त संयत है तथा बातचीत में सधापन तथा संक्षिप्तता है । राधिका का पालन-पोषण उन्होंने बड़े लाड़-प्यार से किया है । उन्होंने राधिका को कभी किसी काम को करने से रोका नहीं । अकेला होने पर भी उन्होंने राधिका को अपने पास रहने के लिए विवश नहींकिया ।

विद्या के द्वारा कहा गया यह वाक्य जो विवाह के पहले ही उसने राधिका से कहा था कि क्या हम मित्रों की तरह नहीं रह सकते? इन शब्दों से विद्या का पूर्णचरित्र व्यंजित हो जाता है ।

अक्षय के चरित्र में शालीनता, दायित्व बोध और संयम है । कहीं भी वह मर्यादा का उल्लंघन नही करता ।

मनीष सबसे आकर्षक चरित्र हैं । वह नारी रूपी कली पर भँवरे के समान मँडराता है । लेकिन कहीं भी सीमा का उल्लंघन नहीं करता ।

'डार से बिछुड़ी' (कृष्णा सोबती) उपन्यास में प्रमुख पात्र है 'पाशों' । समस्त कथाचक्र के केन्द्र में 'पाशों' ही है । पाशों के जीवन में मार्मिक प्रसंगों का चित्रण लेखिका ने बड़ी ही कुशलता से किया है । जिससे यह चरित्र प्रभावी और सहज बन पड़ा है । उसके मानसिक संघर्ष और आन्तरिक द्वन्द्व को लेखिका ने मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्रित किया है । रचना के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक पाशों का चरित्र ही पाठकोंकेमन पर अधिकार किए रहता है । पाशों एक अल्हड़ और भोली-भाली युवती है पर अपनी माँ की करनी के फलस्वरूप पाशों को मामी नानी के ताने सहन करने पड़ते हैं वह अपनी माँ के पास आ जाती है वहाँ उसे लाड़ दुलार सभी कुछ मिलता है और उसका विवाह हो जाता है पर उसका सुख अधिक दिनों उसके साथ नहीं रहता उसके पति की मृत्यु हो जाती है । पुनः उसकी पहले वाली जिन्दगी आरम्भ हो जाती है । उसी समय फिरंगियों की लड़ाई शुरू हो जाती है और इस लड़ाई के बन्द होने पर पाशों अपने बीरजी (शेखजी के बेटे) के पास उसके संरक्षण में चली जाती है । पाशों इस लघु उपन्यास का प्रमुख चरित्र है ।

वैसे इस रचना में अन्य पात्र भी हैं । वे सभी अपनी - अपनी जगह पर महत्वपूर्ण हैं । इन पात्रों में माँ, मामा, मामी, नानी, दीवान जी आदि । इस उपन्यास के सभी पात्र नितान्त सहज एवं स्वाभाविक है । कृष्णा सोबती के पात्र सदैव पाठकों के समीप रहते हैं ।

'कृष्णा सोबती' के उपन्यास 'मित्रों मरजानी' में एक बेझिझक साहसी चरित्र का निर्माण हुआ है । ऐसा चरित्र निर्माण सम्पूर्ण हिन्दी उपन्यास साहित्य में अनूठा है। मित्रों इस उपन्यास का प्रमुख चरित्र है । उपन्यास की सारी कहानी मित्रों के इर्द-गिर्द ही घूमती है । सुमित्रावन्ती (मित्रों) पंजाब, के एक मध्यमवर्गीय परिवार में बहू बनकर आती है। वह वहाँ की परम्पराओं और रूढ़ियों को आत्मसात नहीं कर पाती । दैहिक क्षुधा उसे पीड़ित किए रहती है । पराए पुरुष से बातचीत करने में उसे कोई झिझक महसूस नहीं होती । यही सब बातें उसके जेठ, ससुर को पसन्द नही आतीं । वह घर के सभी लोगों को कुछ न कुछ कहकर अपने मन को ठण्डक पहुँचाना चाहती है । पति से वह छल भी करती है और उसकी सहायता भी करती है । अन्त में अपने अधिकार का हनन होते देख वह पति के पास लौट आती है और उसके प्रति एकनिष्ठ होकर रहती है ।

धर्मवीर भारती के उपन्यास 'गुनाहों का देवता' की अधिकांश कथा कथोपकथन द्वारा अभिव्यंजित हुई है । सुधा और चन्दर के संवाद ही कथा को आगे बढ़ाते हैं। इस उपन्यास में कथोपकथन सरस और भावाभिव्यक्ति में सहायक हैं । भारती जी के कथोपकथन में ही उनकी शैली को प्रसिद्धि मिलती है । उनके उपन्यास में मीठे तीखे व्यंग्य, अप्रत्याशित आघात, रसात्मकता आदि के साथ-साथ शिष्ट स्मित हास और करूणा का निपुण प्रयोग मिलता है । शोखी भरी भाषा का एक उदाहरण दृस्टव्य है - दृष्टव्य

'चाय नहीं पिऊँगा। वाह वाह!' सुधा की हँसी में दुधिया बचपन झलक उठा।'मुँह तो सूखकर गोभी हो रहा है, चाय नहीं पिऊँगा।'

चुहल

'मास्टरनी जी के क्लास के आनन्द का सारा चरम' खत वत भेजती रहना सुधा' (पृष्ठ 47) गालिब की शायरी से लेकर हसरत के पिल्लें तक और शरत के उपन्यासों से लेकर मालिन ने गिलट का कड़ा बनवाया है - की बातचीत करने वाली सुधा और गेंसू की दुनिया को, पम्मी और बर्टी, सुधा, विनती, और चन्दर के संसार को सजीव करने वाले कथोपकथन में भावना, विचार और कल्पना की मोहकता और व्यंग्य भरे अवसाद का रस भरा है। केवल चन्दर और डॉ0 शुक्ला का परम्परा को लैकर वाद-विवाद महा शुष्क, असिद्ध, अधीत और भार स्वरूप हैं। ठेठ की जैसी सजीव अपशब्द प्रतिमा, ग्रामीण जीवन की जैसी सप्राण मुहावरेदार मंगलमूर्ति बुआ जी हैं, वैसी कम देखने का मिलती है। इतने में फिर उनकी आवाज आई - 'पैदाकरत बखत बहुत अच्छा लाग रहा, पालत बखत टें बोल गए। मर गए रहों तो आपन सन्तानौ अपने साथ ले जात्यों। हमरे मूड़ पर ई हत्या काहें डाल गयो। ऐसी कुलच्छनी है कि पैदा होते दिन बाप को खाए गए'(पृष्ठ 95)[1]

---

1. हिन्दी उपन्यास साहित्य का उद्भव और विकास

उपन्यास में प्रेम के उदान्तीकरण का चित्र स्पष्ट दिखाई देता है । प्रेम वही सार्थक होता है जो मनुष्य की दुर्बलता न बने । इसी दुर्बलता के प्रायश्चित का वर्णन सुधा के इस कथन में दिखता है - "दुर्बलता-चन्दर तुम्हें ध्यान होगा, एक दिन हम लोगों ने निश्चय किया था कि हमारे प्यार की कसौटी यह रहेगी कि दूर रहकर भी हम लोग ऊँचें उठेंगें , दूर हो जाने के बाद चन्दर, तुम्हारा ध्यान तो मुझमें एक दृढ़ आस्था और विश्वास भरता रहा, उसी के सहारे मै अपने जीवन को तूफानों से पार कर ले गई, लेकिन पता नहीं मेरे प्यार में कौन सी दुर्बलता रही कि तुम उसे ग्रहण नही कर पाए.. मैं तुमसे कुछ नहीं कहती । मगर अपने मन में कितनी कुण्ठित हूँ कि कह नहीं सकती'......।[1]

सुधा चन्दर के चरित्र के लिए अति आवश्यक व्यक्तित्व रखती हैं । उसके निःस्वार्थ प्रेम में पाप-पुण्य का कोई झगड़ा नहीं । इसलिए एक स्थान पर सुधा कहती है -

'मेरे बिना तुम केवल शरीर रह जाते हों।' चन्दर ही सुधा का सबकुछ है चन्दर के बिना वह स्वयं को भी नहीं जानती, प्यार जैसी बात भी वह चन्दर से ही पूछती हैं । 'चन्दर हमने कभी किसी से प्यार तो नहीं किया न?"

---

1. 'गुनाहों का देवता', दसवाँ संस्करण,पृष्ठ 335.

अपने व्यक्तित्वको चन्दर की आत्मा का एक खण्ड समझती है जो अलग होने पर भी जन्म जन्मान्तर तक उसके चारों ओर चक्कर लगाता रहेगा ।

वह कहती हैं, "मैं तुम्हारी आत्मा का ही एक टुकड़ा हूँ, जो एक जन्म के लिए अलग हो गई, लेकिन हमेशा चारों ओर चन्द्रमा की तरह चक्कर लगाती रहूँगी।[1]

---

1. "गुनाहों का देवता' दसवाँ संस्करण, पृष्ठ 294.

बंगला उपन्यासों के प्रमुख पात्र तथा चरित्र चित्रण

'चन्द्रशेखर' (1875) बंकिम के श्रेष्ठ उपन्यास समूह में एक है । इसमें हम लोगों के पारिवारिक जीवन के साथ विशाल राजनैतिक जगत के सम्मिलन ने लगभग सर्वतो रूप से परिणति प्राप्त किया है । इसलिए ऐतिहासिक उपन्यास का आदर्श इसमें अनेकांश सार्थक है । 'चन्द्रशेखर' में युग परिवर्तन की कहानी का परिचय मिलता है । उस समय बंगाल में मुसलमान राजशासन ध्वंसोन्मुख हो रहा था और अंग्रेज बनिया-अर्थ उपार्जन के मोह से प्रजा शोषण की ओर अधिक आकृष्ट थे। उस आधुनिक युग का इतिहास 'दुर्गेश नन्दिनी' अथवा 'मृणालिनी' के ऐतिहासिक अंश की तरह व्यर्थ और कल्पना प्रधान नहीं हुआ है । अंग्रेजी साम्राज्य के प्रथम सोपान का परिचय इसी में मिलता है । बंकिम चन्द्र के अपने युग से इसकी दूरी मात्र सौ वर्ष है । उस युग की स्मृति बगांल के मन में स्पष्ट थी । विशेषतया अंग्रेजों ने इतिहास में उस समय के मुक्त घटना समूहों का उल्लेख करके रख दिया । इसलिए उन घटनाओं को भूला नहीं जा सकता है ।

'चन्द्रशेखर' का रोमांस मुख्यतः उस समय की फैली हुई अराजकता और केन्द्रीय शक्ति की शक्तिहीनता से ही संभव हुआ है । कई बार हम लोगों के शान्त पारिवारिक जीवन के ऊपर एकाएक दैव विप्लव की तरह वैदेशिक शक्ति का प्रभाव आ पड़ता है और शान्त जीवन में एक अभूतपूर्व गतिवेग वैचित्र्य संचालित कर देता है

नहीं इसमें सन्देह है । विनोदिनी का यह परिवर्तन एकाएक संघटित नहीं हुआ है। महेन्द्र के प्रति विराग और बिहारी के प्रति उन्मुखता ने उसके चरित्र को धीरे-धीरे परन्तु नितान्त अनिवार्य रूप से विकसित किया है । महेन्द्र के हृदय के भीतर कपटता का परिचय पाकर बिहारी के प्रति आकृष्ट होने में समर्थ हुई है । बिहारी को ग्रहण योग्य पहचान का महेन्द्र को खेल की गुड़िया की तरह छोड़ देती है । उसके इस आभ्यन्तरीन परिवर्तन की कहानी वास्तविक विश्लेषण कीतुलना में कवि कल्पना मूलक अधिक सिद्ध होती है । उपन्यास के अन्तिम भाग में विनोदिनी कल्पलोक में रहने वाली दिखने लगती है । वास्तविकता के आधार पर विश्लेषण की सीमा का लंघन करके उदार असीम भाव लोक में पहुँच जाती है ।

'चतुरंग' (1916) रवीन्द्रनाथ के अन्तिम युग के उपन्यास समूहों में सबसे अधिक (fragmentary) लक्षणाकान्त है। इसकी अन्तर्निहित समस्या भाव गंभीरता के बदले में लघु और द्रुत संचारी हास्यरसात्मक रूप से आलोचित हुई है । साधारण उपन्यासकार जिस तरह सर्वतोमुखी सतर्कता के साथ स्वयं रचित चरित्रों के पारस्परिक सम्पर्क और स्वभाव के क्रम परिवर्तन को प्रकट करते हैं। यहाँ इस तरह नही हैं । शचीश-दामिनी का सम्पर्क एकाएक परिवर्तन और आकस्मिक ख्याल और खुशी के अनुसार बालसुलभ चपलता की तरह प्रतीत होता है । उनकी क्षण-क्षण में परिवर्तनशीलता कोई महन (गहरे) नियम की अनुवर्ती नहीं है, ऐसा ही लगता है ।

'घर के भीतर की लज्जाशील नारी को बाहर की इस मलिनता में बहा ले जा सकता है । फिर भी इस तरह के रोमांस में गहराई का अवसर नहीं है ।

'चन्द्रशेखर में बंकिम चन्द्र ने शैवलिनी को बाहरी शक्ति से केवल पीड़ित करके ही नहीं दिखाया बल्कि जिस प्रथम आंधी के आधार से उसे अपने शान्त गृहकोण और सुरक्षित सामाजिक जीवन से खींचकर बाहर किया है उसका यथार्थ उद्भव स्थल उसका अपना अशान्त हृदयतल ही है । विद्युतशिखा जिस तरह बादल के आश्रय में रहकर अपने को प्रकाशित करती है उसी तरह शैवलिनी की ज्वालामयी प्रवृत्ति फास्टर के रूप मोह और साहसिकता का अवलम्बन करके बाहर आ पहुँचती है और इसी से उसका प्रवृत्ति समूह तीव्र भी हुआ है । घटना चक्र की जो परिणति हुई है उसमें दोनों का दायित्व है । शैवलिनी के मन के भीतर पाप का अंकुर न रहने से केवल फास्टर की पाप इच्छा और आग्रह उसे गृहाश्रय से बाहर नहीं ला सकते पुनः फास्टर की साहसिकता का एकाएक सहारा न पाने से शैवलिनी के मन का छुपा हुआ पाप गोपन में दबा हुआ रहता है । प्रकाश्य, विद्रोह से प्रज्ज्वलित नही हो उठता।इसलिए शैवलिनी की कहानी साधारण अत्याचार की कहानी से भिन्न है और उसका मानसिक सम्पर्क और प्रतिक्रिया समूह बहुत सूक्ष्म और गहरे रूप से आलोचित हुआ है । फास्टर द्वारा बल प्रयोग करके शैवलिनी को ले जाने पर भी यथार्थ रूप से शैवलिनी की इच्छा और सम्मति भी फास्टर के ऊपर विजयी हुई है । ऐसा क्या उस

नारी ने फास्टर को अपने अन्तर्निहित अभिप्राय को पूर्ण करने के उपायों के रूप में प्रयोग किया है । इसलिए 'चन्द्रशेखर' साधारण उपन्यासकार के अत्याचार कहानी से अलग है । अन्य उपन्यासों में मृत्यु जो सहज समाधान का रास्ता दिखा देती है बंकिम की प्रतिभा ने उसे नहीं ग्रहण किया । शैवलिनी के प्रायश्चित का जो चित्र अंकित किया गया है उसका कितना मूल्य है यह बताना मुश्किल है। इतने बड़े युगान्तकारी विप्लवपूर्ण अनुभूति के लिए शैवलिनी का हृदय तैयार नहीं था, इसमें कोई सन्देह नहीं था । बंकिम ने अति द्रुत गति से और असाधारण परिवेश के भीतर इस मानसिक परिवर्तन को संसाधित किया है । इसमें कल्पना समृद्धि और अन्तर्दृष्टि का परिचय मिलता है ।

बंकिम का घटना समावेश और कुशलता का चरम विकास शैवलिनी की कहानी के साथ दलनी का विवरण इन दोनों को गूँथने में है । इन दोनोंकरूण विषादमय कहानियों को गूँथने में बंकिमचन्द्र ने जो आश्चर्यजनक सृजन शक्ति का परिचय दिया है, उपन्यास को भाव गौरव से जो सार्थकता दी है यह विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है । दलनी के जीवन की ट्रेजडी क्रूर निष्ठुर दैव के परिहास की भांति पाठकों के मन में एक भय तथा विस्मय को संचालित कर देती है ।

चरित्रांकन की दृष्टि से शैवलिनी के चरित्र में बहुत जटिलता है । उसके हृदय के भीतर तक बंकिम चन्द्र ने अपनी तीक्ष्ण दृष्टि प्रसारित की है । अन्यान्य

समस्त चरित्रों की तुलना में सरल, सम्पूर्ण वास्तविक तथा जीवन्त (सजीव) होने पर भी उन चरित्रोंमें गहराई नहीं है । बंकिम ने बड़ी कुशलता से शैवलिनी के अधोपतन के क्रम विकास को चित्रित किया है । प्राथमिक यौवन में प्रताप-शैवलिनी के भीतर जो व्यर्थ की प्रणय वेदना का विवरण मिलता है उसमें शैवलिनी की स्वार्थपरता तथा चारित्रिक दुर्बलता स्पष्ट प्रतीत होती है ।

'चन्द्रशेखर' में बंकिम ने गृहस्थ जीवन पर राजनैतिक घटना का प्रभाव सुन्दर रूप से दिखाया है । शैवलिनी एक जटिल स्त्री चरित्र है । वह हम ही लोगों के वास्तविक जगत की रहने वाली है । 'चन्द्रशेखर' उपन्यास में कल्पना शक्ति की समृद्धि उपभोग योग्य है। इसके कला सौन्दर्य से पाठक मोहित होता है । 'चन्द्रशेखर', 'आनन्दमठ' के अवास्तविक आदर्शवाद और 'देवी चौधुरानी' के अनुशीलन तत्वप्रियता से पहले लिखा गया है ।

'नौका डूबि' उपन्यास में रवीन्द्रनाथ का विशेष स्वर ध्वनित होता है । 'नौका डूबि' (1906) उपन्यास की तरह एक विस्मयकारी घटना की तरह प्रतिष्ठित हुआ है । जिस दैविक दुर्घटना से रमेश और कमला एक दूसरे के साथ आबद्ध हुए उसे प्रात्यहिक अथवा सहज घटनाओं के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता । रमेश के परिवार के नारियों के लिए भ्रांति दूर करना बहुत सहज था । दो-चार प्रश्नों से ही

जटिल समस्या का समाधान हो सकता या इसलिए 'नौका डूबि' उपन्यास में अप्रत्याशित अंश कुछ अधिक हो गया है । परन्तु घटना विन्यास को छोड़ देने से लेखक की रचना प्रणाली ने वास्तविकता का मार्ग अपना लिया है । नौका यात्रा के प्रतिदिन का स्पष्ट विवरण निस्तारित वर्णन में प्रेमोन्मुख कमला के हृदय के घात - प्रतिघात के विश्लेषण में और रमेश के प्रणय तथा कर्त्तव्य बुद्धि के संघात के चित्रण में रमेश और कमला के भीतर का सम्बन्ध मधुर और जीवन्त हो उठा है । यह उपन्यास आरम्भ से अन्त तक मृदु और स्वच्छन्द गति से प्रवाहित होता है ।

चरित्र विश्लेषण की दृष्टि से इस ग्रन्थ में हमें नलनी का स्थान सबसे ऊँचा मिलता है। रवीन्द्र चन्द्र के समस्त उपन्यास में पाठक जिस तरह की नायिका के साथ परिचित होते हैं, हेमनलिनी उसी परिचित वर्ग का प्रथम उदाहरण है । वह 'गोरा' की सुचरिता, 'शेषेर कविता' की लावण्य और 'योगायोग' की कुमुदिनी की पूर्णवर्तिनी है । शान्त, संयत, नीरव, एकनिष्ठ प्रेम में आत्म समाहित कोमल अविचलित दृढ़ता के साथ समस्त विरूद्ध शक्ति का सामना करने में समर्थ है । इस तरह की नायिकाएं एक तरफ जैसे उनके चारों ओर एक मृदु प्रभाव फैला देती है वैसे ही दूसरी तरफ एक उत्तेजना रहित हार्दिक शक्ति का आभास देती रहती हैं । हेमनलिनी के चरित्र में सुचारिता की पूर्णता, लावण्य की सूक्ष्मविचार बुद्धि और गहरी आत्मजिज्ञासा अथवा कुमुदिनी का कवित्वमय नारी सौन्दर्य विश्लेषण नहीं है । वह सुचरिता के एक

अपरिणत संस्करण की तरह रह गयी है । उपन्यास के प्रथम अंश में कमला का चरित्र जीवन्त है । उसका उच्छवास और प्रणयावेग, रमेश के दुविधाग्रस्त और सन्देहपूर्ण आचरण से बाधित होकर स्नेह प्रीति और भक्ति के आकार में रूपान्तरित होकर नये रूप में प्रवाहित होने लगता है । रमेश के प्रति आचरण में धीरे-धीरे जो परिवर्तन आया है उसका सुन्दर चित्रण रवीन्द्र रचना में मिलता है । शैलजा के साथ मित्रता के बन्धन में बँधकर वह अपने प्रेम की वास्तविकता और अपरिपूर्णता की स्पष्ट रूप से उपलब्धि करने में समर्थ होती है । क्रमशः रमेश के प्रति एक विमुखता आ जाती है और जीवन का जो चरम संकटमय मुहूर्त - जब हेमनलिनी को लिखित रमेश के पत्र में उसके जीवन का लज्जामय रहस्य उद्घाटित होता है, उसके विश्लेषण में भी आशानुरूप गहराई और आवेग का लक्षण नहीं मिलता। हेमनलिनी और कमला घटित उसका समस्त आचरण दुविधाग्रस्त कमजोरियों से भरा हुआ है । उसके जीवन समस्या समाधान का कोई सरल उपाया नहीं हुआ ।

'नौका डूबि' प्रथम श्रेणी का उपन्यास न होते हुए भी रवीन्द्र नाथ की विशेषता इसी के भीतर व्यक्त हुई है, और नई धारा के वास्तविकता प्रधान उपन्यास के उदाहरण के रूप में उल्लिखित होता है ।

'चोखेर बालि' (1903) उपन्यास 'नौका डूबि' के पूर्ववती होने पर भी इसमें रवीन्द्र नाथ और आगे बढ़ सके हैं । इसमें घटना विन्यास और चरित्र विश्लेषण में

लेखक गहराई और कुशलता दिखाने में समर्थ हुए हैं । 'नौका डूबि' की उपन्यास की सहज सरल और एकमुखी प्रवाह के साथ तुलना में इस उपन्यास में कदम-कदम पर संघात और जटिलता की सृष्टि हुई है । महेन्द्र, विनोदिनी, बिहारी और आशा ये चार चरित्र मिलकर उन लोगों के चारो तरफ एक आवर्त की सृष्टि करते हैं । इन लोगों के पारस्परिक सम्बन्ध अत्यन्त विचित्र और जटिल हैं । महेन्द्र और विनोदनी के गूढ़ आकर्षण - विकर्षण की लीला ही इस आवर्त की केन्द्रस्थ शक्ति है । परन्तु इसमें बिहारी और आशा भी अपनी प्रतिक्रिया द्वारा नूतन जटिलता का संचार करते हैं । बिहारी के सबल एकनिष्ठ चित्त ने विनोदनी को आकर्षित किया है और उसके कठोर प्रत्याख्यान ने इस आकर्षण को अनिवार्य वेग (गति) और व्याकुलता से मंडित कर दिया है । पुनः बिहारी के मन के गोपनतम कोने में आशा के प्रति जो अनुराग का बीज छिपा हुआ था उसी ने विनोदिनी की ईर्ष्याग्नि में एक नया ईंधन जोड़कर इसे आशा और महेन्द्र का सर्वनाश करनेके लिए दृढ़प्रतिज्ञकर दिया। आशा का सरल विश्वास और स्वाभाविक शिथिलता महेन्द्र-विनोदिनी को अवसर देती है और उपन्यास में विपदा घनीभूत होने लगती है । आशा के प्रति बिहारी के प्रेम ने महेन्द्र के ऊपर उसके नैतिक प्रवाह को म्लान कर दिया है । इस तरह इन चार चरित्रों का क्रिया - प्रतिक्रिया समूह बहुत सूक्ष्म और जटिल कड़ियों से जोड़ा गया है जो एक सुन्दर समन्वय प्राप्त करता है ।

चरित्र सृष्टि की दृष्टि से महेन्द्र ही सबसे ज्यादा जीवन्त और पूर्णांग हैं।

उसके चरित्र का समस्त परिवर्तन एक अतिशयता और असंयम मिलाकर गूंथा गया है। उसकी मातृभक्ति और पत्नी प्रेम, विनोदिनी के साथ सम्पर्क और निर्लज्ज पूर्व सूचना, सभी के मुल में उसका आत्म अभिमान विराजित है । पत्नी प्रेम और परनारी आसक्ति आत्माभिमान के फलस्वरूप ही संघटित होता है । आशा के सम्पर्क से बिहारी को इतनी सरलता से हटा सकने का कारण ही विनोदिनी के प्रति आकृष्ट होने में समर्थ हो जाता है । पर उसका अवलम्बित उपाय भूलों से भरा हुआ रहने के कारण अनत तक व्यर्थ हो जाता है । महेन्द्र उद्देश्य सिद्धि का उत्कृष्ट मार्ग अपना नहीं सका था । ईर्ष्या के झोंके से बार-बार उसका प्रणय दीपक काँप उठा है । फिर भी वह अपने आप को रोकने में असमर्थ रहा । विनोदिनी के साथ परिचय से पूर्व हृदय सम्पर्कित घटनाओं में महेन्द्र बहुत सफल था। केवल मात्र विनोदिनी के सम्पर्क में आकर उसे योग्यता का परिचय देना पड़ा और वह सम्पूर्णतया व्यर्थ हो गया । उसकी चेष्टा में कमी नहीं थी और विनोदिनी ने अनिवार्य वेग के साथ उसे आकर्षित किया था वह भी ठीक नहीं है। परन्तु बिहारी के प्रति विनोदिनी के अनुराग की संभावना से ही उसकी आत्मदमन चेष्टा नष्ट हो जाती है । 'आत्माभिमान मूढ़ता' महेन्द्र के समस्त चरित्र और आचरण के ऊपर यह शब्द स्पष्ट अक्षर में मुद्रित हो जाता है ।

विनोदिनी के चरित्र में स्थूल वास्तविकता और उच्च आदर्शवाद विपरीत धर्मी इन दोनो का संयोग किया गया है । यह संयोग कला की दृष्टि द्वारा अनुमोदित है या

दामिनी के भावों का परिवर्तन इस उपन्यास की सबसे बड़ी समस्या है । पहले पाठक उसे विद्रोहिणी नारी के रूप में देखते हैं - पति के अन्धधर्मोन्माद ने उसे गुरूदेव के चरण श्रृंखल में श्रृंखलित कर दिया है । उसकी प्रबल उपेक्षा और अस्वीकार ही उसके चरित्र का यथार्थ परिचय है । गुरूदेव के नारी चरित्र के प्रति अन्तर्दृष्टि ने उसे समझा दिया है कि दामिनी का यह विद्रोह एक क्षणस्थायी विकार मात्र है । शचीश उसे साधारण मानवी के रूप में न देखकर केवल मात्र देहातीत सौन्दर्य और सेवा के प्रतीक रूप में देखता है । इसलिए दामिनी के आत्मविर्सजन में उसके अनजाने में एक विद्रोह की तीव्रता अनुभव की जा सकती है । इसके बाद एक और परिवर्तन की धारा आती है । व्यर्थ प्रेमाकांक्षा पुनः विद्रोह के रूप में प्रकटित होती है । दामिनी पुनः गृहिणी के कर्तव्य का प्रतिपालन करने लग जाती है। उसका अवरूद्ध प्रणयावेग अपने आप को निस्सारित करना चाहता है । शचीश के प्रति उसका आचरण एक कठोर आत्मदमन चेष्टा में रूपांतरित हो जाता है ।

इसके बाद शचीश के परिवर्तन की बारी आती है । उसकी धर्मनिष्ठा और गुरू सेवा में उसे परिपूर्णता नहीं मिलती । एक अज्ञात कमी वह निरन्तर अनुभव करने लगता है । दामिनी के प्रति अस्वीकृत आकर्षण क्रमशः उसके अन्तःकरण में एक परिवर्तन की धारा प्रवाहित करता है । श्रीविलास के प्रति दामिनी का सहज, प्रीतिपूर्ण आचरण उसके मन में ईर्ष्या का भाव जाग्रत कर देता है । इस विषय में उसकी मूर्खता

उपन्यासकार ने श्रीविलास के माध्यम से सुन्दर रूप से व्यक्त कर दिया है।

रवीन्द्रनाथ के ऊपर इस उपन्यास में कहानी का अंश कुछ शिथिल कड़ियों से आकस्मिक और प्राणावेग चंचल घटनाओं के प्रभाव से इस उपन्यास के चरित्र और परिवेश की सृष्टि की है । इस शैली में उपन्यासकार को उच्चांग कवि कल्पना का अवसर मिल गया है । साधारण उपन्यास के उत्तरदायित्वपूर्ण विश्लेषण में उनको यह अवसर नहीं मिलता और कवि कल्पना का विकास समूह इस उपन्यास का मुख्य आकर्षण भी नहीं होता ।

'चरित्रहीन' ⟅1917⟆ उपन्यास के नामकरण से शरत्चन्द्र ने जैसे हम लोगों के प्रचलित समाज नीति के आदर्श पर प्रकाश्य रूप से व्यंग्य किया है । समाज विचार के मानदण्ड का जैसे विद्रोह के साथ अतिक्रमण किया है । सतीश -सावित्री की प्रेम लीला ग्रन्थ में एक मुख्य स्थान प्राप्त करती है । इसी के चारो तरफ उपेन्द्र, दिवाकर, किरणमयी, ने अपने-अपने दुश्छेद्य जाल बुनकर प्रेम की रहस्यमय जटिलता को और घनीभूत किया है । सतीश और सावित्री का सम्पर्क समस्त सामाजिक वैशम्य और अवस्था की भिन्नता का उल्लंघन करके लघु हास परिहास और सस्नेह देखभाल के भीतर से चलते चलते अनिवार्य रूप से असंवरणीय प्रेम के स्तर पर पहुँच गया। प्रणय इतिहास की यह चिररहस्यमय कहानी यहाँ अद्भुद सूक्ष्मदर्शिता के साथ वर्णित हुई है । आरम्भ से यह सम्पर्क प्रभु और भृत्य के साधारण आचरण की तरह नहीं

चला। सतीश के परिहास का उद्देश्य निर्दोष होने पर भी प्रथा संगत नहीं था। सावित्री भी सतीश की कल्याण कामना में एक श्लेष और स्पष्टवादिता के द्वारा जैसे प्रणयिनी की मर्यादा प्रतिष्ठित करना चाहती थी । लगभग यह सम्पर्क कलंकित मोह बन्धन बन रहा था ठीक इसी समय अद्भुद आत्म संयम और सतीश के लिए उसका आन्तरिक हितैषी होना उसे बहुत ऊँचे स्तर पर प्रतिष्ठित कर देता है । यह सब हास-परिहास, मान-अभिमान, और घात-प्रतिघात के समस्त आवरण को भेद कर प्रेम का दीप्ति सौन्दर्य प्रतिष्ठित होने लगा । सावित्री अपने आपको संयत और संवृत रखकर सतीश के उद्दाम बाधाहीन आसक्ति को निष्ठुर आघात से रोकने की चेष्टा करती है । बाद में सतीश की निकटता से अपने आपको हटा लेती है । सावित्री के लांछित जीवन की चरम सार्थकता आई तब जब उसके कठोर विचारक उपेन्द्र उसके गुणों से मुक्त होकर उसके भक्त बन जाते है और उसे अपने रोग पीड़ित जीवन का साथी कर लेते हैं । उपेन्द्र का यह स्नेहाकर्षण ही उसके प्रति समाज के निष्ठुर अत्याचार का एकमात्र प्रायश्चित हो गया । सावित्री के चरित्र की विशेषता यह है कि उसके आत्म संयम और चरित्र गौरव के भीतर से सर्वत्र एक वास्तविकता का स्वर निस्सन्देह रूप से ध्वनित होता है । सावित्री को कभी भी एक पौराणिक शाप भ्रष्टा देवी के रूप में पाठक नहीं सोच सकता है ।

इस उपन्यास में सबसे आकस्मिक चरित्र है किरणमयी । किरणमयी

शरत्चन्द्र की एक अद्भुत सृष्टि है । बंगाल के समाज और परिवार में अथवा उपन्यास की पृष्ठा में जितनी विविध प्रकृति की नारियों के दर्शन मिलते है उनके साथ किरणमयी का एकदम सादृश्य नहीं है । उसके चरित्र में असाधारण शक्ति, तेजश्विता तीक्ष्य विश्लेषण शक्ति और विचारबुद्धि के साथ द्विधाहीन, संस्कारमुक्त धर्मज्ञान वर्जित सुविधावाद का एक आश्चर्य सम्मिश्रण हुआ है ।

किरणमयी के साथ पहले परिचय का दृश्य पाठक को आकृष्ट करने में समर्थ है । जीर्ण, मरणासन्न पति के साथ टूटे-फूटे मकान में एक उज्ज्वलनारी का अस्तित्व एक मुहुर्त में पाठक के हृदय मेकं असहनीय वातावरण उत्पन्न करता है । उसके बाद अनंग डाक्टर के साथ उसका लगभग प्रकाश्य अवैध प्रेम अभिनय और उनके सास का इस नीच आचरण का प्रश्रय देना इन सब विचित्र परिवेश के भीतर पति की निर्विकार उदासीनता - सब घटना और मनोवृत्तियों ने मिलकर पाठक की घृणा को और तीव्र बना दिया है । परन्तु लेखक ने दिखाया है कि किरणमयी थोड़े ही समय में उपेन्द्र का महत्व अनुभव करने लगती है । विशेषतया सतीश के साथ उसका सम्बन्ध एक नितान्त सहज मधुरता से भर उठा है । इस नई प्रियानुभूति के प्रथम फल स्वरूप अंनग डाक्टर का त्याग करती है और पति की सेवा करने में अपना समय बिताती है । इसके बाद दिवाकर के साथ शास्त्र आलोचना के समय उसके चरित्र की एक और अप्रत्याशित दिशा उद्घाटित होती है । विचारशक्ति की स्वाधीनता । विश्लेषण करने में निपुणता शास्त्र अनुशासन की विचार शून्य जोर जबरदस्ती के विरूद्ध प्रतिवाद,

किरणमयी के चरित्र के आधार के ऊपर आश्चर्य जनक आलोक जाग्रत करता है । इस असाधारण शक्ति का परिचय देने के बाद ही पुनः एक साधारण नारी सुलभ भावोच्छ्वास इस नारी की चरित्र जटिलता का परिचय देता है । इसके बाद दिवाकर के सस्नेह संरक्षक के रूप में किरणमयी के जीवन में और एक क्षण स्थायी अध्याय जुड़ता है। दिवाकर को खिलाकर हास - परिहास करके उसके साहित्य प्रयास के प्रति सरस विद्रूप (मजाक) करके उसका समय व्यतीत हो रहा था । दिवाकर के साथ साहित्य आलोचना के प्रसंग में उपन्यासकार ने किरणमयी के मुख में रोमेण्टिक उपन्यास में वर्णित प्रणयचित्र के ऊपर अपना ही मतामत लिपिबद्ध किया है । इस प्रणय के मूल में प्रत्यक्ष अनुभव अथवा गहरी उपलब्धि नहीं है । दिवाकर के साथ किरणमयी के कथोपकथन में उपन्यासकार की उच्च मनन शक्ति का परिचय मिलता है । प्रेम की प्रकृति और दुर्वार शक्ति तथा पदस्खलन के विचार के विषय में जो सूक्ष्म विचारपूर्ण गहरी आलोचना किरणमयी के मुख से दी गई है वह केवल बंगला साहित्य नहीं, समस्त साहित्य की श्रेष्ठ चिन्ता के साथ बराबरी कर सकती है। किरण मयी की चरित्र आलोचना करते समय हम लोग देखते हैं कि प्रेमतत्व के सूक्ष्म विश्लेषण के साथ-साथ दिवाकर के साथ उसका एक ऐसे हास-परिहास का अध्याय चल रहा है . जिसके भीतर गोपन आसक्ति का बीज छिपे रहने की बहुत सम्भावना थी। इस रसालाप के भीतर किरणमयी का चित्त विकास रहे या न रहे दिवाकर के मन में चित्त विकार का उपादान संचित हो रहा था । इस बीच एक दिन उपेन्द्र ने एकाएक

आकर दिवाकर और किरणमयी के सम्पर्क की अनुचित घनिष्ठता को देख लिया और किरणमयी को कठोर रूप से तिरस्कृत किया तथा दिवाकर को स्थानान्तरित करने का हुकुम जारी कर दिया। इस असहनीय आघात से किरणमयी के भीतर की पैशाचिक वृत्ति जाग्रह होती है और उसकी समस्त शिक्षा दीक्षा उसकी तीक्ष्ण और मार्जित बुद्धि को पीछे छोड़कर भयंकर रूप में उठखड़ी होती है। यह 'क्रोधोन्मत्तारमणी' उपेन्द्र से प्रतिहिंसा (बदला) लेने के लिए परम स्नेहास्पद पात्र दिवाकर को काँख में दबाकर अराकान यात्रा के लिए कदम बढ़ा देती है और इस तरह किरणमयी का विचित्र उज्ज्वल चरित्र एक मूर्खा विहलता और मनोविकार के भीतर अपने आपको समाप्त कर देता है।

'चरित्रहीन' उपन्यास के पुरुष चरित्र समूह भी विशेष रूप से उल्लेख योग्य हैं। उपेन्द्र, सतीश, दिवाकर सभी बहुत सूक्ष्म और जीवन्त रूप से चित्रित हुए हैं। प्रत्येक के कथोपकथन, चित्त विश्लेषण और स्वभाव में भेद बड़ी निपुणता के साथ अलग-अलग चित्रित किए गये हैं। विशेषतया ग्रन्थ के नायक सतीश का चरित्र अपनी समस्त त्रुटि और कमजोरी के बावजूद भी उदारता और महत्व से भरा हुआ है। सावित्री के प्रति उसका दुर्निवार आकर्षण और सरोजिनी के प्रति लज्जा कुण्ठित प्रेम इन दोनो में जो भेद है वह सुन्दर रूप से चित्रित हुआ है। 'चरित्रहीन' बंगला उपन्यास साहित्य का एक श्रेष्ठ ग्रन्थ है। जीवन समस्याकी आलोचना जो गहरे

अनुभव और उदार सहानुभूति से भरी हुई है वह हम लोगों के नैतिक और सामाजिक विचार को एक चिरन्तन परिवर्तन साधन करने की प्रेरणा देती रहती है ।

'गृहदाह' उपन्यास के समस्त चरित्र बहुत सुन्दर रूप से विकसित हुए हैं। सुरेश की उत्तेजना प्रवृत्ति एक चरम सीमा से दूसरी चरम सीमा तक प्रसारित हुई है एक तरह प्रेम और उदार आत्मोत्सर्ग। दूसरी तरफ किसी बाधा से रूकावट होने पर एक हिंस्र तीव्रता तथा निम्नतम आचरण की नीचता तक उतर जाती है । केदारबाबू के चरित्र में भी इसी तरह के भाव मिलते है । एक तरफ अर्थ। लोभ और अर्थ। लोभ के कारण वैवाहिक सम्बन्ध को तोड़ना दूसरी तरफ अचला के विवाह पर अचला और सुरेश के पारस्परिक सम्पर्क के प्रति उनके सन्देह का अन्त नहीं है । सुरेश की ऋण मुक्ति के प्रस्ताव से उसके हृदय का संचित क्रोध एकदम से जल उठा है । ग्रन्थ के अन्तिम अंश में मृणाल के स्नेहमय स्पर्श। से उसके हृदय की ज्वाला दूर होती है और जिस काल्पनिक अपराध के लिए अचला को किसी ने क्षमा नहीं किया यही केवल स्नेह मण्डित क्षमा की दृष्टि से उसे देखने में समर्थ। हुई है । केवल महिम के चरित्र के सम्बन्ध में थोड़ा सा संशय रह जाता है । उसकी सहिष्णुता और आत्मसंयम का उदाहरण सारे उपन्यास में विस्तारित है । सुरेश की मित्रता और अचला का प्रेम उसने (महिम) किस तरह हासिल (प्राप्त) किया? इसके भविष्यत् आचरण के विषय में पाठक कोई इशारा नहीं पाता है । सुरेश का मित्र प्रेम बार-बार अभिव्यक्ति के द्वार से लौट

आया । अचला का हृदय जीत लेने, उसकी शान्त सहिष्णुता और अविचलित आत्मनिर्भरता के अतिरिक्त और किसी कोमल गुण की आवयकता थी परन्तु उपन्यास में, उसकी चारित्रिक मधुरता की तरफ एकदम ध्यान नहींदिया गया । कुछ भी हो पाप की इच्छा न रहने पर भी पाप की प्रतिक्रिया का जो भयानक रूप होता है उसका निपुण विश्लेषण बहुत सूक्ष्मता के साथ इसमें प्रदर्शित हुआ है ।

बंगला उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में सबसे स्मरणीय बात महिला उपन्यासकारों का आविर्भाव है । उपन्यास का मुख्य उपजीव्य विशय-प्रेम नर-नारी के पारस्पर के प्रति गहरे आकर्षण का रहस्य इसी विषय की अनन्त विचित्रता उपन्यास की पृष्ठाओं पर पल्लवित हुई है । इस प्रेम चित्र को अंकित करना केवल मात्र पुरूष द्वारा होने से यह खण्डित ही रह जाता है । एक देशदर्शिता का दोष इसमें पनपने लगता है । महिला उपन्यासकार समूहों से खण्डित चित्र, अखण्डित पूर्णता प्राप्त करने में समर्थ होता है । एक की रचना में जिस सीमा तक परिचय मिलता है दूसरे की सीमा में जो कुछ अवशिष्ट था उसका विकास होता है । बंगला साहित्य के उपन्यासों में प्रेम पुरूष और नारी दोनों के लिए ही परिपूर्ण होने होने के लिए दोनो की ही सहयोगिता की आवश्यकता होती है । यूरोपीय उपन्यास साहित्य में भी प्राथमिक युग के नारी की भाषा स्वोच्चार नहीं थी । बंगाल की नारी-पुरुष की समानता और प्रतियोगिता का कोई व्यापक आधार उपस्थित नहीं करती है । केवल कई अन्याय, अत्याचार और

वैषम्य के हाथ से आत्मरक्षा का प्रयास करनेके लिए इच्छा का प्रयास करती है । हम लोगों के सामाज में नारी के पक्ष में जितने आन्दोलन हुए इनमें पुरूष ने ही बढ़कर नारी हृदय की शिकायतों को साहित्यिक अभिव्यक्ति देकर समस्त पाठकों को आकर्षित किया है । महिला उपन्यासकारों के द्वारा ऐसा बंगला साहित्य के उपन्यास में प्रतिभाशाली महिला उपन्यासकारों के विशिष्ट अवदानों का प्रत्याशित परिचय मिलता है ।

रचना की उत्कर्षता की दृष्टि से स्वर्णकुमारी देवी का नाम सर्वप्रथम लिया जा सकता है । उनके उपन्यास समूहों में मुख्यतः ऐतिहासिक और सामाजिक ये दो श्रेणियाँ मिलती हैं । 'दीप निर्वाण' (1876), 'फूलेरमाला' 'मिवार राज्य', 'विद्रोह' आदि ऐतिहासिक उपन्यास हैं । ऐतिहासिक उपन्यासों में नारी हृदय के ऊपर कोई नवीन दृष्टिपात नहीं किया गया है ।

वर्तमान समाज व्यवस्था में हम लोगं और एक तरफ से नारी के अवदान की विशिष्टता की आशा कर सकते हैं । नारी की जीवन समस्या के विश्लेषण में उनका मतामत और चिन्तन धारा के भभ्तर इस कुछ ललिते गुणों की अधिकता और परुषता की कमी समालोचक की दृष्टि में आती है । बंगला साहित्य के उपन्यासों में लेखिकाओं की रचनाओं में इन गुणों का विकास और प्रतिष्ठा लेखिका के अवदान के रूप में प्रतिष्ठित होता है । स्वर्णकुमारी देवी की रचनाओं में इसकी कमी नहीं है ।

उनके उपन्यासों में भाषा और मतामत व्यक्त करने की प्रक्रिया बड़ी निपुणता के साथ की गई है । सत्य निष्ठा और तथ्य अनुवर्तन में रमेशचन्द्र दत्त की रचना के साथ उनकी तुलना की जा सकती है । 'दीप निर्वाण' स्वर्ण कुमारी देवी के अल्पवयस की रचना है। 'फूलेर माला' उपन्यास में ऐतिहासिकता की मर्यादा अधिक रक्षित हुई है । इसकी पृष्ठभूमि बंगाल के पठान शासकों के समय जब सिकन्दरशाह दिल्ली की आधीनता त्याग करके बंगाल में स्वाधीन राज्य प्रतिष्ठा करने का प्रयासकर रहे थे, है 'मिवार राज्य' और 'विद्रोह' राजपूत इतिहास की कहानी के आधार पर रचित हुआ है । भील और राजपूतों के जातिगत विरोध का विवरण इसमें मिलता है । पर्वत में रहने वाली भील जातियों के एक तरफ राजभक्ति और सरल विश्वास प्रवणता तथा दूसरी तरफ चिराचरित प्रथा के प्रति अटूट निष्ठा और वंशानुक्रमिक बैरी भाव रखने का सुन्दर चित्र मिलता है। राजपूत भील के प्रति मन ही मन एक घृणा और तुच्छ भाव रखते है । इस जाति विरोध और प्रतिद्वन्द्विता के भाव के उपन्यास में स्पष्ट रूप से अंकित किया गया है । भील युवक जुमिया के प्रति राजा की मित्रता और जुमिया की पालित कन्या सुहार के प्रति उसका आकर्षण उनके राज्य और परिवार जीवन में जो अंसतोष संचार करता है उसका चित्रण भी सजीव है । राजपूत और राजपूतवंश के भविष्य की आशा और आकांक्षा के प्रति दृष्टि प्रसारित हुई है । उपन्यास की ट्रेजडी एक अनिवार्य क्रम विकास के वेग से परिणति प्राप्त करने में समर्थ हुई है ।

'विद्रोह' स्वर्ण कुमारी देवी का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है । राजसभा, भील और राजपूत के पारस्परिक सम्बन्ध भीलों के सरस ग्राम्य जीवन, कुसंस्कार परायणता की अवस्था का चित्र बहुत ही रोचक शैली में लिखा गया है । 'विद्रोह' उपन्यास रमेशचन्द्र के ऐतिहासिक उपन्यासों के साथ तुलना करने योग्य है । भाषा कवित्व शक्ति और विश्लेषण की क्षमता को परिचय इस उपन्यास में स्पष्ट रूप से मिलता है ।

स्वर्णकुमारी देवी के सामाजिक उपन्यासों में छिन्नपुकल', 'हुगुली इमामबाड़ी' 'स्नेहलता' और 'काहाके' इन चारों का नाम लिया जा सकता है । केवल अन्तिम उपन्यास कुछ विशिष्ट है । समाज और धर्म संस्कार की उत्तेजना ने उस समय उपन्यास की पृष्ठाओं में तूफान मचा दिया था । स्वर्ण कुमारी के सामाजिक उपन्यासों के अधिकांश में एक दोष बहुत अधिक है । जैसे 'हुगलीर इमाम बाड़ी' उपन्यास में निरन्तर लम्बी धर्म तत्व आलोचना ने कहानी की सरस वास्तविकता को ग्रस लिया है। सन्यासी अपनी अति मानीवीय शक्ति द्वारा बार बार उपन्यास में अविर्भूत हुए हैं और कहानी की सहज धारा को परिवर्तित कर दिए है । दार्शनिक आलोचना की अतिशयता के कारण यह उपन्याय त्रुटिपूर्ण हुआ है ।

'स्नेहलता' (1891) उपन्यास ने भी इसी तरह समाज और धर्म संस्कार मूलक तर्क-वितर्क में अपने यथार्थ उद्देश्य को खो दिया है । जगतबाबू के पारिवारिक जीवन कस सुन्दर चित्र आरम्भिक स्तर में पाठक के मन में आशा का संचार करता है। पुनः तार्किकता की एक आकस्मिक तरंग समस्त स्वाभाविक विशिष्टता को पोंछकर निश्चिंह कर देती है । ऐसे जगत बाबू के परिवार का चित्र बहुत सम्पूर्ण रूप से

चित्रित किया गया है । पुरुष की दृष्टि में नारी का सौन्दर्य जैसा है उसी तरह मनोभाव में भी थोड़ा आदर्शवाद मिलने की संभावना रहती है । परन्तु स्वर्ण कुमारी देवी की रचना में नायिका के प्रत्येक वाक्य तथा मतामत मधुर कोमलता से भरे हुए मिलते हैं । आरम्भ में नारी के ऐतिहासिक ज्ञान की कमी, सन् और तारीख याद रखने में अक्षमता आदि के वर्णन में एक विशिष्ट नारी स्वर ध्वनित होता है । उपन्यास की समस्त घटनाओं में नारी सुलभ सूक्ष्मदर्शिता और भावावेग पूर्णता का परिचय मिलता है । साधारणतया पुरुष उपन्यासकार आधुनिक शिक्षित नारी के भीतर जो एक अधिक बोलने का और पुरुष बुद्धि प्रयोग करने का आरोप करते हैं इसमें एसी बात नहीं मिलती है । इस स्त्री मनोभाव के स्पष्ट चित्र के रूप में इनके उपन्यास विशेष रूप से आकर्षक है।

स्वर्ण कुमारी देवी के परवर्ती महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में दो विपरीतमुखी धाराओं का अनुवर्तन मिलता है । एक स्तर की लेखिका ने हिन्दू समाज के ऊपर आक्रमण और समालोचन की प्रतिक्रिया के रूप में अपनी लेखिनी धारण कर ली है । इस श्रेणी की मुख्य प्रतिनिधि निरूपमा देवी और अनुरूपा देवी है । विशेषतया अनुरूपा देवी के लगभग सारे उपन्यासों में स्वार्थ त्याग, भगवत्प्रेम और और लोकहितैषिणा, हिन्दू समाज के आदर्श और अनुप्रेरणा - इन्हीं को बड़े अनुराग और सहानुभूति के साथ चित्रित किया गया है । अनुरूपा देवी एकाधिक उपन्यास में एक आदर्श समाज नेता और धर्मनिष्ठ ब्राह्मण पन्डित का चित्र है जो सांसारिक दुःख, कष्ट,

अत्याचार,उत्पीड़न के भीतर अटल रहककर अपने विश्वास पर प्रतिष्ठित रहते हैं । इस तरह के चरित्र समूह एक श्रेणी विशेष के प्रतिनिधि बने हुए हैं । व्यक्तित्व सूचक विशिष्टता इसमें नही मिलती है । धर्मानुष्ठान प्राचीन प्रयासक्त बंगाल के परिवार में बहुत अधिक प्रभाव विस्तार करने में समर्थ होता है । इन उपन्यासों में हम लोग उन्हीं का परिचय प्राप्त करते है । शंख-घंटा की ध्वनि निनादित आरती, धूप, और धूम की सुगन्ध, मन्त्रोंच्चारण की मधुर गम्भीर आवाज जैसे इन उपन्यासों की पृष्ठाओं पर एक आवेश सृष्टि करती है।धर्मानुष्ठान जो केवल एक दृश्य सौन्दर्य अथवा वाह्‌याडम्बर की तरह से वर्णित हुए है । ऐसी बात नही, हृदय के ऊपर गहरा प्रभाव डालना ही इनकी विशेषता है । परिवार सुख भोग रहित नारी अपने हृदय की कमी को पूरा करने के लिए देव मन्दिर के भीतर आश्रय गृहण कर लेती है । देवता के साथ मधुर स्नेह भक्ति का संपर्क स्थापन करके सांसारिकता की कमी को पूरा करने का प्रयास करती है निरूपमा देवी का 'दीदी' और अनुरूपा देवी 'मन्त्रशक्ति' इस विषय का सुन्दर उदाहरण है । दाम्पत्य मनमुटाव और पिता-पुत्री का मधुर स्नेह सम्पर्क इन उपन्यासों में आलेचना का मुख्य विषय है । पति-पत्नी के मान-अभिमान का विच्छेद, मन-मुटाव और विभिन्न सूक्ष्म परिवर्तन इन उपन्यास समूहों में प्रतिफलित हुआ है । पुनः पति प्रेम वंचिता किस तरह व्याकुल आग्रह के साथ पिता की स्नेहपूर्ण गोद में आश्रय प्राप्त करती है । उपन्यासों के भीतर इन भावों का परिचय मिलता है । बंगाल के परिवार की दो मुख्य धाराओं ने इन उपन्यासों के भीतर प्रवाहित होकर इन्हें सौन्दर्यमंडित किया है ।

'प्रथम प्रतिश्रुति' उपन्यास में आशापूर्णा देवी ने नारी व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा की चेतना प्रक्रिया को क्रमशः तीन उपन्यासों में व्यक्त किया है । प्रथम उपन्यास 'प्रथम प्रतिश्रुति' में जिस कालयुग और दृष्टिकोण के भीतर सत्यवती का जन्म हुआ उसमें सत्यवती स्नेह, प्रेम और नितान्त प्रिय बालिका के रूप में बड़ी होने लगी। चारों तरफ के समस्त गतानुगतिक जीवन धारा के भीतर अपने मन में जो थोड़ी सी स्वतन्त्र चिन्तन धारा के प्रवाह का स्पर्श वह पाती है उसके समर्थन में जाग्रत स्वाभाविक हृदयवृत्ति के विकासों को सहज प्रवाह नही दे पाती परन्तु परिवेश के समक्ष अपनी बलिष्ठ स्वतन्त्रता को अवनमित करने योग्य कमजोरी वह नहीं अनुभव करती है । निरन्तर विकास और परिवर्तन की धारा इतनी धीरे-धीरे चलती है कि बाहर से सहज ही उसका स्वरूप निर्णय करना कठिन हो जाता है । परन्तु परिवार के अन्तःपुर में कही न कही इस स्वतन्त्र शक्ति का अभ्युदय और निरन्तर बाधा का अतिक्रमण चलता रहता है । इस तरह से सत्यवती और फिर सत्यवती के बाद 'बकुल कथा' में बकुल की जीवन धारा का चित्रण तथा नवचेतना जागृत हृदय की बलिष्ठता एक आश्चर्यचकित करने वाला विषय है । 'स्वर्णलता' में वही क्रम और आगे बढ़ता है ।

'प्रथम प्रतिश्रुति' सबसे बलिष्ठ उपन्यास है इसी उपन्यास के लिए उन्हें ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है ।

'नीलांगुरीय' (1945) विभूतिभूषण का प्रथम पूणागं उपन्यास है । इस

उपन्यास में प्रेम की घृणा और आकर्षण मिश्रित रहस्यमय भाव विश्लेषण की चेष्टा हुई है । उपन्यास में सर्वत्र मननशीलता, सूक्ष्मदर्शिता, घटनाविन्यास, और कथोपकथन को सावधानी के साथ नियंत्रित करने का प्रयास चिन्हित हुआ है । उपन्यास का मुख्य वर्णनीय विषय अभिजात्य गौरवशीला बैरिस्टर की बेटी मीरा के मन में दरिद्र गृह शिक्षक शैलेन के प्रति अनिवार्य प्रणयोन्मेष, प्रेम और वंश अभिमान में प्रबल विरोध चित्रित हुआ है । उपन्यास में सबसे गहरी उपलब्धि का विषय अपर्णा देवी का चरित्र है । पुत्र के सम्बन्ध में उनकी आशा का भंग होना और पति के साथ आदर्श का वैषम्य उनको एक शोकाच्छन्न स्वप्न भाषी महिमा द्वारा आवृत्त करता है । उनकी आत्म समाहित निर्लिप्तता तथा परिवार के प्रत्येक के साथ सम्पर्क में विषमता रहने के कारण समस्त परिवेश में एक द्वैतभाव आ जाता है । ग्रन्थ का असली आकर्षण ग्राम्य जीवन की स्मृति के आवेदन के चमत्कारित्व पर प्रतिष्ठित है । कलकत्ते की यांत्रिक जीवन यात्रा की मूल प्रेरणा क्या है ? यह समझा नही जा सकता है । परन्तु अनिल के परिवार में उसकी पत्नी अम्बुरी का प्रभाव निस्सन्देह अनुभव का विषय है । 'नीलांगुरीय' उपन्यास प्रथम श्रेणी का न होने पर भी इसमें उपन्यासकार के उज्ज्वल भविष्य का आभास स्पष्ट रूप से मिलता है ।

रोमाण्टिक उपन्यासकारों में विभूतिभूषण बन्धोपाध्याय (1894-1950) की श्रेष्ठता एक विशेष स्थान प्राप्त कर चुकी है । पारिवारिक जीवन को लेकर भी उन्होंने उच्च कोटि की कहानी रचित की है । इनमें परिकल्पना की मौलिकता नहीं है

परन्तु भाव की गहराई और करूण रस का संचार है ।

'पथेरपाँचाली' ‖1929‖ और 'अपराजित' दो खण्ड ‖1932‖ विभूतिभूषण के श्रेष्ठ गन्थ हैं । इन तीन खण्डों में विभक्त उपन्यास एक अध्यात्म दृष्टि सम्पन्न जीवन की क्रमाभिव्यक्ति के महाकाव्य के रूप में समाहृत हो सकता है। उसकी मौलिकता और सरस नवीनता ने बंगला उपन्यासों में एक आकर्षक क्षेत्र का उद्घाटन किया है । अपू की तरह जीवन्त और पूरे तौर से चित्रित चरित्र बंगला उपन्यास में नहीं मिलता है । शिशु हृदय की रहस्यमयता के समबन्ध में काव्य में और दर्शन में जो उक्ति हम लोग सुनने में अभ्यस्त हैं इस उपन्यास में उसका अनेक उदाहरण विचित्र प्रमाण की सहायता से दृढ़ रूप से प्रतिष्ठित हुआ है । व्यापकता और गम्भीरता की दृष्टि से इस शिशु हृदय के रहस्य का इतिहास जानने योग्य है । अपू की अध्यात्म दृष्टि अनिवार्य रूप से काव्यिक सौन्दर्य का परिचय देती है । शिशु हृदय में जिस परिचित जगत की तुच्छता में एक आलौकिक माया राज्य सृजन कर लेता है, विभूतिभूषण ने उसी रूपकथा के राज्य के रहस्य को हम लोगों के सामने विश्लेषित करके उसकी जादुई शक्ति को सर्वसाधारण के सामने रख दिया है । विश्लेषण करते समय यह माया लोक छिन्न अथवा विच्छिन्न नहीं हुआ है । लेखक का कृतित्व वहीं प्रतिष्ठित होता है ।

ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में अपू के एक दूर के रिस्ते की बूढ़ी बुआ इन्दिर

ठकुरानीके दुर्गतिपूर्ण जीवन इतिहास का विवरण दिया गया है । अपू की माँ सर्वजया की निर्ममता और बेटी दुर्गा की स्नेह शीलता इस प्रसंग में प्रकटित होती है । इस अध्याय के साथ मूल ग्रन्थ का कोई अनिवार्य सम्बन्ध नहीं है । अपू के पितृ वंश और पूर्व इतिहास में जो कौलिन्य प्रथा थी उसी का परवर्ती संस्करण 'पथेर पाँचाली' में मिलता है । कौलिन्य प्रथा का युग हम लोगों के सामने से हमेशा के लिए समाप्त हो जाने पर भी उसी की असहायता का करूण चित्र अप्पू के घरेलू जीवन के सूत्रपात में है। इस अध्याय में अपू जन्म ग्रहण करता है। उसकी बड़ी बहन दुर्गा के मन में विस्मय की भावना जाग्रत होती है । बाद के दो अध्यायों 'आम आँटिर भेपू' और 'उड़ोंपायरा' (उड़ता हुआ कबूतर) में - अपू के शैशव जीवन की आशा, कल्पना, क्रीडा, और कौतुक का विस्तृत विवरण मिलता है । इन दोनों अध्यायों की नायिका अपू की दीदी दुर्गा है अपू यहाँ दुर्गा के अभिभावकत्व के अधीन है । दुर्गा के चरित्र में एक ऐसी मौलिकता, भयशून्य विचरण स्पृहा, नए-नए खेलों की उद्भावनशक्ति और स्वालम्बन प्रियता है । जिसमें वह पाठक के हृदय में विस्मय मिश्रित श्रद्धा का आकर्षण रचना करती है । दुर्गा के उज्ज्वल आनन्द मुखर व्यक्तित्व के समक्ष और सभी प्रभाहीन हो गये हैं । ऐसा होते हुए भी उसे आदर्शवाद द्वारा बिन्दुमात्र रूपान्तरित नहीं किया गया है । उसमें साधारण निर्धन ग्राम्य बालिका की लोभातुरता ऐसी थी कि प्रलोभन के वश चोरी करने की प्रवृत्ति भी है । ऐसा होते हुए भी ऐसी एक अदम्य जीवन शक्ति और न खत्म होने वाली आहरण क्षमता है जिससे अनेक कमियों के रहते हुए भी वह हम लोगों के समक्ष चिरप्रिय सैशव चपलता का चिन्तन प्रतीक होकर रहती है ।

अपू के जीवन में जिन प्रभावों का रूप मिलता है उसमें बड़ी बहन दुर्गा का साहचर्य प्रथम है और प्रधान भी । दुर्गा बड़ी आसानी से उन लोगों के खेल का नेतृत्व करती है,वही हाथ पकड़ कर अपू को प्राकृतिक जंगल की रहस्यमय निर्जनता में ले गयी है । यहाँ एक विषय लक्ष्य किया जा सकता है कि दुर्गा अपू की तरह प्रकृति के साथ एक निविड़ एकात्मकता की उपलब्धि नहीं करती है ।

प्रकृति के साथ परिचय के भीतर से कल्पना का विकास - यही अपू के जीवन की क्रम अभिव्यक्ति की मुख्य बात है । इस तरह का कल्पना प्रस्तर अनेक प्रभाववश आया है ।

इसके बाद मनसापोता के जीवन में अपु अपना भविष्य निश्चित कर लेता है । वह अपनी माँ की इच्छा के विरूद्ध ग्राम्य पुरोहित का जीवन त्याग करके पाश्चात्य शिक्षा ग्रहण करने के लिए आगे बढ़ता है । कलकत्ते में कालेज के जीवन में दरिद्रता के विरूद्ध लगातार लड़ाई के अलावा और कोई विशेषता नहीं है । इसके ठीक परवर्ती स्तर में अपू के जीवन में दो प्रधान घटना घटित होती है - एक माता की मृत्यु और दूसरा विवाह । विवाह भी अपू के मन में गहरे प्रणय अनुराग से अधिक कौतूहल की चेतना जाग्रत करता है । अपर्णा के शांत संयत सौन्दर्य में मादकता कुछ

भी नही थी । अर्पणा जैसे अपू की स्वर्गगता माता का ही एक तरूण संस्करण है । सेवा निपुणता, मंगलाकांक्षा, गृहस्थी का कल्याण साधन, दु:ख में सहानुभूति और थोड़ा सा कौतुक मिश्रित हास्य-परिहास इन समस्त विषयों में माता और पत्नी एक हो जाते हैं । विभूतिभूषण के समस्त स्त्री चरित्र लगभग इसी साँचे में ढले हुए हैं । कलकत्ते के धूल और धुएं से भरे हुए आसमान के नीचे अपू का सारा रंगीन यौवन स्वप्न म्लान होने लगा । उसके बाद अपर्णा का एकाएक देहान्त हो जाता है और उसके मन को शून्यता के पाषाण भार से अभिभूत कर देता है । उसके शोक में तीव्रता नही है है केवल एक तरह की गुरूभार पीड़ित जड़ता का प्रभाव । इस उद्भ्रान्त अवस्था में लीला के विवाह के समाचार ने उसके जीवन को मोहभंग की तिक्तता से भर दिया है ।

इस दारूण आघात से अपू का जीवन एक नवीन सार्थकता के मार्ग में पहुँचने के विधि निर्दिष्ट संकेत की तरह आ जाता है । प्राथमिक अवसाद के प्रभाव से अपू नीचे उतरने लगता है । चाँपदानी में उसकी उद्देश्यहीन जीवनयात्रा से पहले का आदर्शवादपूर्ण जीवन एकदम मिट जाता है । एक प्रकार के निरूद्यम और तुच्छता से घिरा हुआ अपू अपने आपको स्थिर नहीं कर पाता । पटेश्वरी के प्रति स्नेहपूर्ण सहानुभूति ही चाँपदानी के जीवन का अन्तिम अध्याय है । चौंपदानी से दिल्ली के स्मृतिपूर्ण भग्नावशेष और मध्य प्रदेश के अरण्य की निर्जनता उसके जीवन में चरम सीमा की अनुभूति जाग्रत करता है । इस अरण्य प्रकृति का वर्णन बंग साहित्य की एक अमूल्य

सम्पत्ति है । केवल मध्य प्रदेश का गहरा जंगल नहीं बल्कि निश्चित्तपुर के ग्रामीण वन जंगल में भी लेखक की क्षमता का परिचय मिलता है । यद्यपि सभी लेखको का तथ्य समावेश एक ही सा होता है फिर भी प्रकृति के सम्बन्ध में जिनकी अन्तर्दृष्टि है उनके समक्ष इस वस्तुपुंज समावेश की एक नवीनता का आविर्भाव होता है । विभूतिभूषण ने इस वर्णन को साहित्य गुण समृद्ध किया है ।

प्रकृति की निर्जनता में अपू बंगाल में लौट आता है । कुछ साल बाहर रहने के बाद बंगाल का परिचित्र स्नेहपूर्ण सौन्दर्य उसके नेत्रों में नवीन प्रतिबिम्ब रचना करने में समर्थ होता है ।

निश्चिन्तपुर में लौटना पुत्र काजल के लिए कितना प्रभावशील हुआ है वह अनिश्चित है परन्तु अपू के लिए यह उसके मन के पुनर्जन्म के रूप में प्रतीत होता है । अपू का जीवन निरन्तर वृहत से वृहत्तर परिधि में प्रसारित हुआ है । परिचित सीता को छोड़कर निरन्तर दूर अपरिचित दिगन्त की तरफ बढ़ता गया है। पारिवारिक बन्धन, दाम्पत्य प्रेम, अपत्य [सन्तान] स्नेह उसे स्थितिशीलता में सीमित नहीं कर सका इसलिए जहाँ हम लोग एकनिष्ठ गंभीरता की प्रत्याशा करते हैं वहाँ हम लोग बन्धन शून्य विरामहीन गतिशीलता, जटिल आवर्त और क्षुब्ध पुनरावृत्ति के बदले में चिरचंचल प्रवाह में बहते हुए जीवन को पाते हैं । अपू का चरित्र पौढ़त्व की शेष सीमा तक

नित्य नवीन अनुभव आहरण करते-करते परिपक्कवता के एक स्तर से दूसरे स्तर में बढ़ता गया है और अन्त में इस उच्चतम दार्शनिक स्वर में ही इस महाकाव्य के न्याय विराट उपन्यास की परिसमाप्ति होती है ।[1]

---

1. बंग साहित्ये उपन्यासेर धारा - श्रीकुमार वन्द्योपाध्याय ।

सहायक ग्रन्थ सूची

हिन्दी

1. डॉ0 अमर जायसवाल	हिन्दी के बहुचर्चित उपन्यास और उपन्यासकार	विद्याविहार, गाँधीनगर, कानपुर ।
2. डॉ0 अमर प्रसाद, गणेश प्रसाद जायसवाल	हिन्दी लघु उपन्यास	विद्याविहार, कानपुर
3. डॉ0 अहिबरन सिंह	अश्क का कथा साहित्य	कौशिक साहित्य सदन, दिल्ली
4. डॉ0 आदित्य प्रसाद त्रिपाठी	औपन्यासिक समीक्षा और समीक्षाएं	अनुभव प्रकाशन, कानपुर
5. डॉ0 आदर्श सक्सेना	हिन्दी के आँचलिक उपन्यास और उनकी शिल्पविधि	सूर्य प्रकाशन मन्दिर बीकानेर
6. डॉ0 इन्दु वशिष्ठ	उपन्यासकार आचार्य चतुरसेन शास्त्री	जवाहर पुस्तकालय, मथुरा।
7. डॉ0 इन्द्रनाथ मदान	प्रेमचन्द: एक विवेचन	राजकमल प्रकाशन
8. डॉ0 इन्दिरा जोशी	भारतीय उपन्यासों में वर्णन कला का तुलनात्मक मूल्यांकन	विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
9. डॉ0 इन्द्रनाथ मदान	हिन्दी उपन्यास पहचान और परख	लिपि प्रकाशन, दिल्ली।
10. डॉ0 इन्दिरा जोशी	हिन्दी उपन्यासों का लोकवार्ता परख अनुशीलन	सरस्वती प्रकाशन मन्दिर, इलाहाबाद।
11. डॉ0 ऊषा डोंगरा	हिन्दी के आँचलिक उपन्यासों का लोकतांत्रिक विमर्श	अनुभव प्रकाशन, कानपुर ।
12. डॉ0 उषा सक्सेना	हिन्दी उपन्यासों का शिल्पगत विकास	शोध साहित्य प्रकाशन, इलाहाबाद।
13. डॉ0 श्रीमती उमा मिश्रा	डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी का उपन्यास साहित्य : एक अनुशीलन ।	अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर।

14.ओम प्रकाश शर्मा	जैनेन्द्र के उपन्यासों का शिल्प	पाण्डुलिपि प्रकाशन, दिल्ली।
15.डॉ0 ओम शुक्ल	हिन्दी उपन्यास की शिल्पविधि का विकास	अनुसंधान प्रकाशन,कानपुर।
16.कुसुम त्रिवेदी	अज्ञेय की औपन्यासिक कृतियाँ	साहित्य संस्थान,कानपुर।
17.डॉ0 कैलाश प्रकाश	प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास	हिन्दी अनुसन्धान परिषद, दिल्ली विश्वविद्यालय,
18.डॉ0 कैलाश जोशी	आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में स्वप्न मनोविज्ञान	संघी प्रकाशन, जयपुर ।
19.डॉ0 कुसुम वार्ष्णेय	हिन्दी उपन्यासों में नायक	शोध साहित्य प्रकाशन, इलाहाबाद ।
20.कोमल कोठारी, विजयदान देथा	प्रेमचन्द के पात्र	अक्षर प्रकाशन, दिल्ली।
21.डॉ0 कमला गुप्ता	हिन्दी उपन्यासों में सामन्तवाद	अभिनव प्रकाशन,दिल्ली।
22.डॉ0 कमल किशोर गोयनका	प्रेमचन्द के उपन्यासों का शिल्प विधान	सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद।
23.डॉ0 कमलेश माथुर	वृन्दावन लाल वर्मा के उपन्यासो में नैतिकता	मलिक एण्ड कम्पनी,जयपुर
24.डा0 कृष्णा मजीठिया	हिन्दी के तिलस्मी व जासूसी उपन्यास	पंचशील प्रकाशन,जयपुर ।
25.डा0 कुलदीप चन्द्र गुप्त	उपन्यासकार उपेन्द्रनाथ अश्क	पंचशील प्रकाशन,जयपुर।
26.डॉ0 कृष्णा अवस्थी	वृन्दालाल वर्मा के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन	पुस्तक संस्थान,कानपुर।

27.	डॉ0 कृष्ण रैना	प्रभाकर माचवे के हिन्दी उपन्यास	विभूति प्रकाशन,दिल्ली।
28.	डॉ0 श्रीमती कमलेश अग्रवाल	हिन्दी के मनोविश्लेषाणात्मक उपन्यास	दीपक पब्लिशर्स,जालन्धर।
29.	कुसुम सोफट	फणीश्वर नाथ रेणु की उपन्यास कला	वसुमती प्रकाशन, इलाहाबाद
30.	कृष्ण कुमार विस्सा 'चन्द्र'	साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में राजनीतिक चेतना ।	दिनमान प्रकाशन,दिल्ली
31.	डॉ0 कमल कुमार जौहरी	हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी उपन्यास	ग्रन्थम, कानपुर ।
32.	डा0 कुसुम वार्ष्णेय	भगवती चरण वर्मा - (चित्रलेखा से सबहिं नचावत राम गुसाईं तक)	साहित्य भवन,इलाहाबाद।
33.	कैलाश जोशी	धर्मवीर भारती : उपन्यास साहित्य	चिन्मय प्रकाशन,
34.	डॉ0 गोविन्द जी	हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास प्रयोग ।	कल्पना प्रकाशन
35.	गंगा प्रसाद विमल	प्रेमचन्द	राजकमल प्रकाशन,दिल्ली।
36.	गिरीश रस्तोगी, जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव	प्रसाद का कथा साहित्य	दिमैकमिलन कम्पनी, ऑफ इन्डिया,दिल्ली।
37.	डॉ0 गोविन्द जी	ऐतिहासिक उपन्यास प्रकृति एवं स्वरूप	साहित्यवाणी,इलाहाबाद।
38.	डॉ0 गोपाल कृष्ण शर्मा	उपन्यास और समाज	तारामण्डल, अलीगढ़।
39.	डॉ0 गिरधर प्रसाद शर्मा	हिन्दी उपन्यासों का मनो विश्लेषाणात्मक अध्ययन	इन्द्र प्रस्थ प्रकाशन,दिल्ली।
40.	डॉ0 चन्द्रभान सोनवणे	कथाकार फणीश्वर नाथ रेणु	पंचशील प्रकाशन,जयपुर।

41.	चन्द्रकान्त वांदिवडेकर	आधुनिक हिन्दी उपन्यास सृजन और आलोचना	
42.	चण्डीप्रसाद जोशी	हिन्दी उपन्यास:समाज शास्त्रीय विवेचन	अनुसंधान प्रकाशन,कानपु
43.	डॉ0 जगत नारायण हैकरवाल	प्रेमचन्द	अक्षरपीठ प्रकाशन,इलाह
44.	डॉ0 जगन्नाथ ओझा	हिन्दी उपन्यास और शरत्चन्द्र	अनुपम प्रकाशन,पटना ।
45.	डॉ0 डी0डी0 तिवारी	हिन्दी उपन्यास:स्वातन्त्र्य संघर्ष के आयाम	तक्षशिला प्रकाशन ।
46.	डॉ0 देवराज उपाध्याय	जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन	पूर्वोदय प्रकाशन,दिल्ली।
47.	डॉ0 देवराज उपाध्याय	कथा साहित्य के मनोवैज्ञानिक समीक्षा सिद्धान्त	सौभाग्य प्रकाशन,इलाहाब
48.	डॉ0 देवराज उपाध्याय	आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान	साहित्य भवन,इलाहाबाद
49.	डॉ0 दंगल झाल्टे	उपन्यास समीक्षा के नयेप्रतिमान	वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
50.	डॉ0 दुर्गा शंकर मिश्र	अज्ञेय का उपन्यास साहित्य	
51.	डॉ0 घनराज मानधाने	हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास	ग्रन्थम,कानपुर ।
52.	नवल किशोर	आधुनिक हिन्दी उपन्यास और मानवीय अर्थवत्ता	प्रकाशन संस्थान,दिल्ली।
53.	नरेन्द्र मोहन	आधुनिक हिन्दी उपन्यास	दि मैकमिलन कम्पनी ऑ इण्डिया लिमिटेड,दिल्ली

54.	नरेन्द्र कोहली	हिन्दी उपन्यास सृजन और सिद्धान्त	सौरभ प्रकाशन,दिल्ली।
55.	नन्दिनी मिश्र	मन्नू भण्डारी का उपन्यास साहित्य	हिन्दी साहित्य भण्डार, लखनऊ।
56.	डॉ0 निर्मला जैन	प्रेमचन्द भारतीय साहित्य सन्दर्भ।	वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
57.	नरेन्द्र कोहली	प्रेमचन्द	विक्रान्त प्रेस,दिल्ली।
58.	डॉ0 नगीना जैन	आँचलिकता और हिन्दी उपन्यास	अक्षर प्रकाशन,दिल्ली।
59.	डॉ0 नन्द कुमार राय	अज्ञेय की औपन्यासिक संचेतना	
60.	डॉ0 परमानन्द श्रीवास्तव	उपन्यास का यथार्थ और रचनात्मक भाषा	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
61.	डॉ0 प्रताप नारायण टण्डन	हिन्दी उपन्यास कला	हिन्दी समिति सूचना विभाग लखनऊ।
62.	प्रकाश चन्द्र मिश्र	यशपाल का कथा साहित्य	दिमैकमिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया लिमिटेड,दिल्ली।
63.	डॉ0 पारस नाथ मिश्र	मार्क्सवादी और उपन्यासकार यशपाल	लोक भारती प्रकाशन,इला0
64.	प्रा0भा0ए0गवली	प्रेमचन्द्र के उपन्यासों में विचित्र सम्बन्धों का अनुशीलन	अन्नपूर्णा प्रकाशन,कानपुर।
65.	डॉ0 पी0के0 पद्मजा	हिन्दी उपन्यास साहित्य पर वैचारिक आन्दोलनो का प्रभाव	पंकज पब्लिकेशन, गाजियाबाद ।
66.	डा0 प्रेम कुमार	हिन्दी उपन्यास अन्तरंग पहचान	गिरनार प्रकाशन, उ0गुजरात।

67.	प्रताप पाल शर्मा	प्रसाद के उपन्यास	राज्यश्री प्रकाशन,मथुरा।
68.	परमानन्द श्रीवास्तव	जैनेन्द्र और उनके उपन्यास	दिमैकमिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया लिमिटेड,नईदिल्ली।
69.	प्रकाश चन्द्र मिश्र	अमृत लाल नागर का उपन्यास साहित्य	साहित्य प्रकाशन दिल्ली।
70.	प्रो0 प्रवीण नायक	यशपाल का औपन्यासिक शिल्प	सरस्वती पुस्तक सदन,आगरा।
71.	डॉ0 प्रेम भटनागर	हिन्दी उपन्यास शिल्प बदलते परिपेक्ष्य	अर्चना प्रकाशन,जयपुर।
72	प्रताप ठाकुर	भीष्म साहनी:व्यक्ति और रचना	वाणी प्रकाशन,दिल्ली ।
73.	प्रकाश चन्द्र मिश्र	यशपाल का कथा साहित्य	दिमैकमिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया लिमिटेड,नईदिल्ली।
74.	डॉ0 प्रभुलाल डी वैश्य	डॉ0 रांगेय राघव के उपन्यासों में युग चेतना	तारामण्डल,अलीगढ़ ।
75.	प्रताप नारायण टण्डन	प्रेमचन्द	सामयिक प्रकाशन दिल्ली।
76.	बसंती पंत	हिन्दी उपन्यास:रचना विधान और युगबोध	पंचशील प्रकाशन,जयपुर।
77	ब्रजरत्नदास	हिन्दी उपन्यास साहित्य	हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस ।
78.	डॉ0 बद्री दास	हिन्दी उपन्यास:पृष्ठभूमि और परम्परा	ग्रन्थम, कानपुर ।
79.	डॉ0 बैजनाथ प्रसाद शुक्ल	भगवती चरण वर्मा के उपन्यासों में युगचेतना	प्रेम प्रकाशन मन्दिर,दिल्ली।

80.	बाँकेबिहारी भटनागर	जैनेन्द्र:व्यक्तिकथाकार और चिन्तक	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
81.	ब्रजभूषण सिंह 'आदर्श'	हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों का अनुशीलन (1900-1963)	रचना प्रकाशन,इलाहाबाद।
82.	डॉ0 बलराज सिंह राणा	उपन्यासकार जैनेन्द्र के पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन	
83	ब्रजनारायण सिंह	उपन्यासकार भगवतीचरण वर्मा।	
84.	बादाम सिंह रावत	उपन्यासकार - हजारी प्रसाद द्विवेदी	
85.	बेचन	आधुनिक हिन्दी उपन्यास : उद्भव और विकास	
86.	भूप सिंह भूपेन्द्र	मध्यवर्गीय चेतना और हिन्दी उपन्यास	श्याम प्रकाशन, जयपुर।
87.	महेन्द्र चतुर्वेदी	हिन्दी उपन्यास:एक सर्वेक्षण	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ।
88.	मन्मथ नाथ गुप्त	प्रेमचन्द-व्यक्ति और साहित्यकार	सरस्वती प्रेस,इलाहाबाद।
89.	मन्मथ नाम गुप्त	शरत्चन्द्र-व्यक्ति और साहित्यकार	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
90.	डॉ0 मधू जैन	यशपाल के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण	अभिलाषा प्रकाशन,कानपुर।
91.	डॉ0 मनमोहन सहगल	उपन्यासकार जैनेन्द्र-मूल्यांकन और मूल्यांकन	साहित्य भारती,दिल्ली

92.	डॉ0 मोहिनी सहाय	वृन्दावन लाल वर्मा का उपन्यास साहित्य	अनुपम प्रकाशन,पटना।
93.	डॉ0 मनमोहन सहगल	अमिता-कृति और कृतिकार	सूर्य प्रकाशन,दिल्ली।
94.	महावीरमल लोढ़ा	हिन्दी उपन्यासों का शास्त्रीय विवेचन	रोशनलाल जैन एण्ड सन्स, जयपुर ।
95.	मनमोहन सहगल	हिन्दी उपन्यास के पदचिन्ह	सूर्य प्रकाशन,दिल्ली।
96.	डॉ0 मन्जुला गुप्ता	हिन्दी उपन्यास:समाज और व्यक्ति का द्वन्द्व	सूर्य प्रकाशन,दिल्ली।
97.	माधुरी खोसला	हिन्दी के लघु उपन्यासों का शिल्प	विजयन्त प्रकाशन,दिल्ली।
98.	महेन्द्र भटनागर	समस्यामूलक उपन्यासकार-प्रेमचन्द	हिन्दी प्रचार प्रतिष्ठान, वाराणसी।
99.	यज्ञदत्त शर्मा	हिन्दी के उपन्यासकार	भारती (भाषा) भवन,दिल्ली।
100.	डॉ0 रमाकान्त श्रीवास्तव	व्यक्तिवादी एवं नियतिवादी चेतना सन्दर्भ में उपन्यासकार भगवती चरण वर्मा	वाणी प्रकाशन,दिल्ली।
101.	रामप्रकाश कपूर	हिन्दी के सात युगान्तकारी उपन्यास	नन्दकिशोर एण्ड बदर्स, वाराणसी ।
102.	रघुवर दयाल वार्ष्णेय	प्रेमचन्द और उनकी उपन्यासकला	प्रतापचन्द्र जायसवाल,आगरा।
103.	डॉ0 खेलचन्द आनन्द	हिन्दी के श्रेष्ठ उपन्यासकार	सूर्य प्रकाशन,दिल्ली।
104.	डॉ0 राधेश्याम कौशिक	स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास का शिल्प विकास	मंगल प्रकाशन, जयपुर ।

105. राम विलास शर्मा	कथा विवेचना और गद्यशिल्प	वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
106. रजनीकान्त जैन	प्रेमचन्द्र के उपन्यासों में समकालीनता	लोकभारती प्रकाशन,इला0
107. डॉ0 राजकमल बोरा	हिन्दी उपन्यास प्रयोग के चरण	नमिता प्रकाशन,महाराष्ट्र।
108. डॉ0 रामगोपाल शर्मा 'दिनेश'	गोदान समीक्षा	अशोक प्रकाशन,दिल्ली।
109. रत्नाकर पाण्डेय	यशपाल की दिव्या	उदय प्रकाशन,वाराणसी।
110. राम अवध शास्त्री	शतरंज के मोहरे-एक दृष्टि (अमृतलाल नागर)	प्रमोद ट्रेडिंग कारपोरेशन, वाराणसी ।
111. डॉ0 रामसुन्दर लाल	प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में नारी मनोविज्ञान	दीपक प्रकाशन,वाराणसी।
112. डॉ0 रामलखन शुक्ल	हिन्दी उपन्यास कला	सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली।
113. डॉ0 रामनारायण सिंह 'मधुर'	हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यास	ग्रन्थम, कानपुर ।
114. डॉ0 रामविनोद सिंह	हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में नारी-चित्रण	शोध साहित्य प्रकाशन, शाहगंज,इलाहाबाद।
115. राजेन्द्र जैन	पं0 इलाचन्द्र जोशी के औपन्यासिक नायक का अन्तर्द्वन्द्व (प्रमुख उपन्यासों के सन्दर्भ में)	सूर्य प्रकाशन, दिल्ली।
116. डॉ0 रवीन्द्र कुमार जैन	उपन्यास सिद्धान्त और संरचना	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ।
117. राजेन्द्र यादव	अठारह उपन्यास	अक्षर प्रकाशन,दिल्ली।
118. राजकुमार गुगलानी	उपन्यासकार प्रेमचन्द:समाज शास्त्रीय अध्ययन	

119. रामदरश मिश्र	हिन्दी उपन्यास:एक अन्तर्यात्रा	राजकमल प्रकाशन,दिल्ली।
120. डॉ0 रणवीर रांग्रा	हिन्दी उपन्यास में चरित्र चित्रण का विकास	भारती साहित्य मन्दिर, दिल्ली ।
121. डॉ0 लक्ष्मीकान्त सिन्हा	हिन्दी उपन्यास साहित्य का उद्भव और विकास	ग्रन्थ भारती, देवनगर,कानपुर ।
122. डॉ0 लक्ष्मण सिंह	प्रेमचन्द पूर्व के कथाकार और उनका युग	रचना प्रकाशन,इलाहाबाद ।
123. डॉ0 लाल साहब सिंह	डॉ0 रांगेय राघव और उनके उपन्यास	अनुपमा प्रकाशन,बम्बई ।
124. ललित कुमार शर्मा 'ललित'	समकालीन हिन्दी उपन्यास	प्रभा प्रकाशन,इलाहाबाद।
125. डॉ0 ललित शुक्ल	उपन्यासकार भगवती प्रसाद बाजपेयी शिल्प और चिन्तन,	
126. डॉ0 लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय	द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास	राजपाल एण्ड सन्स,दिल्ली।
127. डॉ0 विमल सहस्त्र बुद्धे	हिन्दी उपन्यासों में नारी का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण	पुस्तक संस्थान, कानपुर ।
128. डॉ0 विद्याशंकर राय	आधुनिक हिन्दी उपन्यास और अजनबीपन	सरस्वती प्रकाशन मन्दिर, इलाहाबाद ।
129. विश्वम्भर 'मानव'	उन्नीसवीं शताब्दी के उपन्यासकार	स्मृति प्रकाशन,इलाहाबाद।
130. डॉ0 विजय कुलश्रेष्ठ	जैनेन्द्र:उपन्यास और कला	पंचशील प्रकाशन,जयपुर।
131. डॉ0 विजय मोहन सिंह	आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में प्रेम की परिकल्पना	रचना प्रकाशन,इलाहाबाद।

132. विमला कुमारी पण्डिता	उपन्यासकार मोहन राकेश (अन्तराल के विशेष सन्दर्भ में)	पंचशील प्रकाशन,जयपुर ।
133. डॉ0 विमल शंकर नागर	हिन्दी के आँचलिक उपन्यास सामाजिक एवं सांस्कृतिक संदर्भ	प्रेरणा प्रकाशन,मुरादाबाद।
134. डॉ0 विवेकी राय	हिन्दी उपन्यास उत्तरशती की उपलब्धियाँ	राजीव प्रकाशन,इलाहाबाद।
135. विद्याधर शुक्ल	भैरव प्रसाद गुप्त-व्यक्ति और रचनाकार	प्रभा प्रकाशन,इलाहाबाद।
136. वीणा गौतम	उपन्यासकार रामेश्वर शुक्ल 'अचंल'	राजेश प्रकाशन,दिल्ली।
137. विनोद शंकर व्यास	प्रसाद और उनका साहित्य	हिन्दी साहित्यकुटीर,वाराणसी
138. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी	अज्ञेय	
139. डॉ0 शशिभूषण सिंहल	उपन्यासकार वृन्दावन लाल वर्मा	विनोद पुस्तक मन्दिर,आगरा
140. डॉ0 शशिभूषण सिंहल	उपन्यास का स्वरूप	कैलाश पुस्तक सदन, ग्वालियर।
141. शमशेर सिंह नरूला	उपन्यास सृजन की समस्याएं	लोकभारती प्रकाशन,इला0।
142. डॉ0 शिवबहादुर सिंह भदौरिया	हिन्दी उपन्यास:सृजन और प्रक्रिया	शैलजा प्रकाशन,कानपुर।
143. डॉ0 कुमारी शैलबाला	हिन्दी उपन्यास का प्रारम्भिक विकास	सत्यसदन,बाराबंकी।
144. डॉ0 शीलकुमारी अग्रवाल	हिन्दी उपन्यासों में कल्पना के बदलते हुए प्रतिरूप	अभिव्यक्ति प्रकाशन,
145. डॉ0 श्रीमती शीला गुप्त	प्रेमचन्द और उनका साहित्य	साहित्य भवन,इलाहाबाद।

146. डॉ0 शान्ति स्वरूप गुप्त	हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यास और मृगनयनी	एस.ई.एस.एण्ड कम्पनी दिल्ली ।
147. शन्नो देवी अग्रवाल	स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में समकालीन राजनीति	ग्रन्थायन,अलीगढ़ ।
148. डॉ0 शंकर प्रसाद	सामाजिक उपन्यास और नारी मनोविज्ञान	अनुपम प्रकाशन पटना।
149. श्याम सुन्दर घोष	उपन्यासकर प्रेमचन्द	
150 शंकर नाथ सुकुल	उपन्यासकार प्रेमचन्द उनकी कला और जीवन दर्शन	
151. शिवनारायण श्रीवास्तव	हिन्दी उपन्यास (ऐतिहासिक अध्ययन)	सरस्वती मन्दिर,वाराणसी।
152. डॉ0 सत्य पाल चुघ	ऐतिहासिक उपन्यास	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ।
153. डॉ0 सुरेश सिन्हा	हिन्दी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना	अशोक प्रकाशन,दिल्ली।
154. डॉ0 सूतदेव 'हंस'	उपन्यासकार चतुरसेन के नारीपात्र	भारती ग्रन्थ निकेतन,दिल्ली।
155. सुरेश चन्द्र तिवारी	यशपाल और हिन्दी कथा साहित्य	सरस्वती प्रेस,इलाहाबाद।
156. डॉ0 सुशीलकान्त सिन्हा	हिन्दी के प्रगतिवादी उपन्यास: एक अध्ययन	चित्रलेखा प्रकाशन, सोहबतियाबाग,इलाहाबाद।
157. डॉ0 सुरेश सिन्हा	उपन्यास शिल्प और प्रवृत्तियाँ	शमा प्रकाशन,लखनऊ।
158. डॉ0 सुशील शर्मा	हिन्दी उपन्यास में प्रतीकात्मक शिल्प	सिद्धराम पब्लिकेशन्स, शाहदरा,दिल्ली ।

	लेखक	पुस्तक	प्रकाशक
159.	डॉ0 सुजाता	हिन्दी उपन्यासों के असामान्य चरित्र	मंगल प्रकाशन,जयपुर।
160.	डॉ0 श्रीमती सरोज अग्रवाल	हिन्दी उपन्यास में खलपात्र	एम0दास एण्ड कम्पनी, इलाहाबाद।
161.	डॉ0सुरेश सिन्हा	हिन्दी उपन्यास	लोकभारती प्रकाशन,इला0।
162.	डॉ0 सुरेश बत्रा	अमृतलाल नागर-व्यक्तित्व,कृतित्व एवं सिद्धान्त	पंचशील प्रकाशन,जयपुर ।
163.	डॉ0 सरदार सिंह सूर्यवंशी	हिन्दी उपन्यास का विकास	संचयन गोविन्दनगर,कानपुर।
164.	डॉ0 सत्येन्द्र	सुखदा उपन्यास की विवेचना	पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली।
165.	सर्वजीत राय	हिन्दी उपन्यास साहित्य में आदर्शवाद	लोकभारती प्रकाशन,इला0।
166.	डॉ0 सुभद्रा	हिन्दी उपन्यास परम्परा और प्रयोग	अलंकार प्रकाशन,दिल्ली।
167.	डॉ0 सरोज प्रसाद	प्रेमचन्द्र के उपन्यासों में समसामयिक परिस्थितियों का प्रतिफलन	रचना प्रकाशन,इलाहाबाद।
168.	डॉ0 सरोजनी त्रिपाठी	आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में वस्तु विन्यास	आराधना प्रेस,कानपुर।
169.	सुषमा शर्मा	उपन्यास और राजनीति	स्मृति प्रकाशन,इलाहाबाद।
170.	संजीवन भावनावत	आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में सांस्कृतिक बोध	पंचशील प्रकाशन,जयपुर ।
171.	डॉ0 सीताराम झा 'श्याम'	भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम और हिन्दी उपन्यास	हिन्दी प्रचारक प्रकाशन,
172.	सुभाषिनी शर्मा	उपन्यासकार प्रेमचन्द	नन्दन प्रकाशन,लखनऊ ।

173. डॉ0 सुरेश चन्द्र गुप्त, रमेशचन्द्र गुप्त — उपन्यासकार प्रेमचन्द

174. डॉ0 सुरेन्द्र नाथ तिवारी — प्रेमचन्द और शरत्चन्द्र के उपन्यास मनुष्य का बिम्ब — सुषमा पुस्तकालय, दिल्ली ।

175. सुषमा प्रियदर्शिनी — हिन्दी उपन्यास — राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली।

176. हंसराज रहवर — प्रेमचन्द-जीवनकला और कृतित्व — आत्माराम एण्ड संस ।

177. डॉ0 हेमराज निर्मम — हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग (1936-1975) — विभु प्रकाशन, साहिबाबाद।

178. डॉ0 त्रिभुवन सिंह — हिन्दी उपन्यास शिल्प और प्रयोग — हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी।

179. डॉ0 ज्ञान चन्द्र गुप्त — स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्राम चेतना — अभिनव प्रकाशन, दिल्ली।

180. डॉ0 ज्ञान चन्द्र गुप्त — आँचलिक उपन्यास संवेदना और शिल्प — अभिनव प्रकाशन, दिल्ली।

181. श्री नारायण भरद्वाज — ऐतिहासिक उपन्यास तुलनात्मक अध्ययन — कोणार्क प्रकाशन, दिल्ली।

बंगला

1. बंगाला साहित्येर इतिहास — डॉ0 सुकुमार सेन

2. बंगला साहित्येर इतिवृत्त — डॉ0 असित कुमार वन्द्यो पाध्याय

3. बंगला साहित्येर इतिहास — डा0 भूदेव चौधरी

4. बंगला साहित्ये उपन्यासेर धारा — श्रीकुमार वन्द्योपाध्याय

5. बंगला गद्य साहित्येर इतिहास डा0 सुकुमार सेन

6. बंगला साहित्य का इतिहास कल्याणी दास गुप्ता

7. बंकिम रत्नावली भाग-1 -- आनन्द पब्लिशर्स

8. बंकिम रत्नावली भाग-2 --

9. शरत संग्रह भाग-1 --

10. शरत संग्रह भाग-2 --

11. रवीन्द्र रत्नावली विश्वभारती प्रकाशन